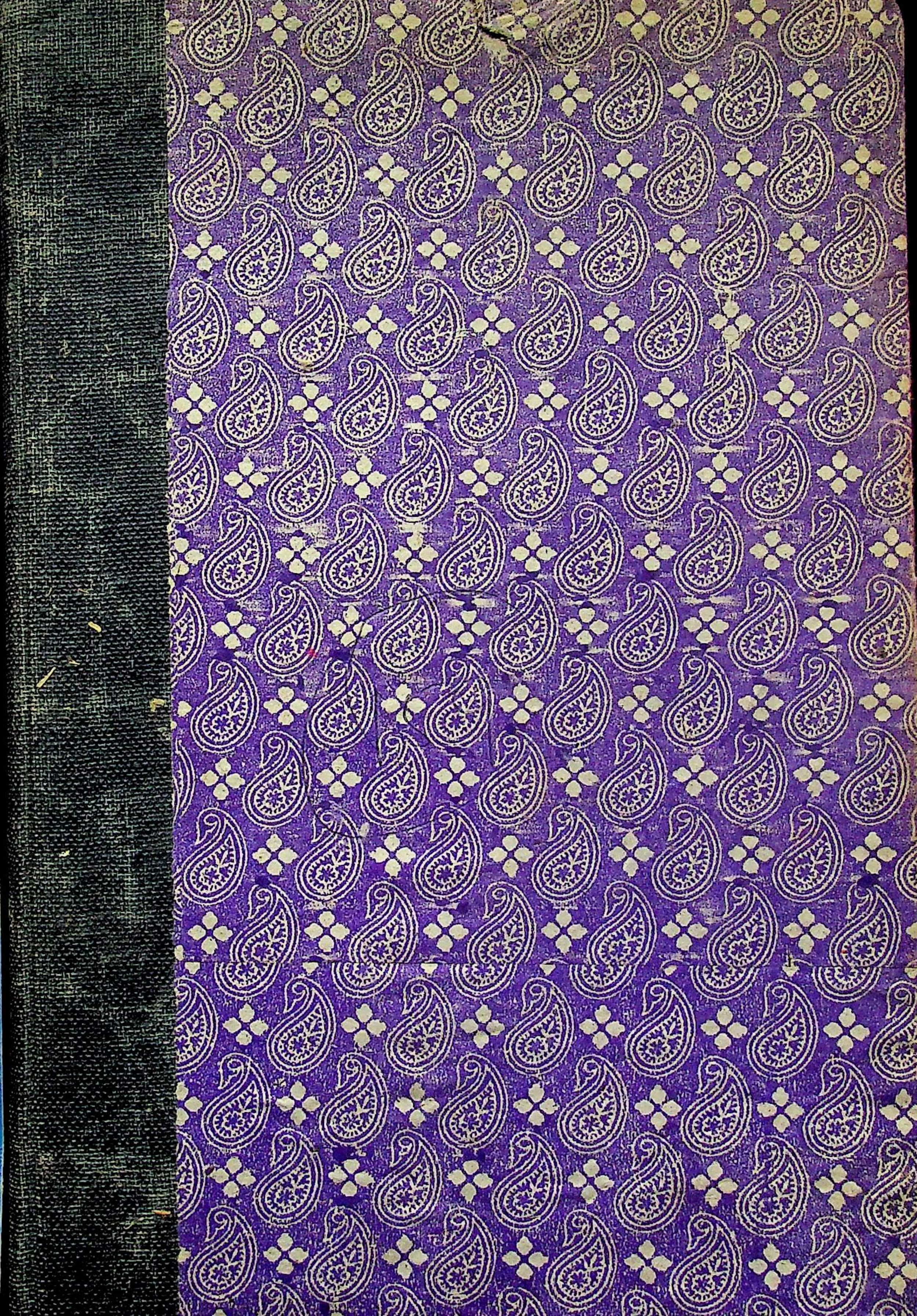




अक्टूबर 1991

अश्विन 2048

जिनवाणी



With best compliments from :

जैन जगत् की शान बाल ब्रह्मचारी महामहिम
अध्यात्म प्रेरक पूज्य आचार्य प्रवर
श्री १००८ श्री हस्तीमलजी म. सा. के संथारामरण
पर श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं

YOUR SATISFACTION IS OUR
REMUNERATION





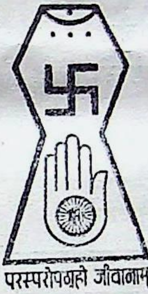
Phone { 531313, 552400, 552501

एम. अन्नराज कांकरिया	**M. ANRAJ KANKARIA**
महेन्द्रा ज्वैलर्स (वातानुकूलित)	**MAHENDRA JEWELLERS** (A. C.)
ए. आर. गोल्ड हाउस (वातानुकूलित)	**A. R. GOLD HOUSE** (A. C.)
1000-1001, टी. एच. रोड **कालादी पेठ,** **मद्रास–600 019**	**1000-1001, T. H. Road** **Kaladipet** **MADRAS-600 019**

आपका सन्तोष ही हमारा व्यापार है

जिनवाणी

मंगल-मूल, धर्म की जननी, शाश्वत सुखदा, कल्याणी ।
द्रोह, मोह, छल, मान-मर्दिनी, फिर प्रगटी यह 'जिनवाणी' ।।



पंचिन्दियाणि कोहं,
माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं,
सव्वं अप्पे जिए जियं ।।

—उत्तराध्ययन ६/३६

पाँच इन्द्रियाँ, क्रोध, मान, माया, लोभ और मन—ये दुर्जेय हैं, लेकिन एक आत्मा पर विजय पा लेने के बाद इन सब पर विजय पा ली जाती है ।

अक्टूबर, १९९१
वीर निर्वाण सं० २५१७
आश्विन, २०४८

वर्ष : ४८ अंक : १०

मानद सम्पादक :
डॉ० नरेन्द्र भानावत, एम.ए.,पी-एच.डी.

सम्पादन :
डॉ० (श्रीमती) शान्ता भानावत
एम.ए., पी-एच.डी.

संस्थापक :
श्री जैनरत्न विद्यालय, भोपालगढ़

प्रकाशक :
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार दुकान नं० १८२-१८३ के ऊपर
जयपुर—३०२००३ (राजस्थान)
फोन : ५६५९९७

सम्पादकीय सम्पर्क सूत्र :
सी-२३५ ए, दयानन्द मार्ग, तिलक नगर
जयपुर—३०२००४ (राजस्थान)
फोन : ४७४४४

भारत सरकार द्वारा प्रदत्त
रजिस्ट्रेशन नं० ३६५३/५७

स्तम्भ सदस्यता : १००१ रु०
संरक्षक सदस्यता : ५०१ रु०
आजीवन सदस्यता : देश में २५१ रु०
आजीवन सदस्यता : विदेश में ७५१ रु०
त्रिवर्षीय सदस्यता : ५५ रु०
वार्षिक सदस्यता : २० रु०

मुद्रक :
फ्रैण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
जयपुर—३०२००३

नोट : यह आवश्यक नहीं कि लेखकों के विचारों से सम्पादक या मण्डल की सहमति हो ।

अनुक्रमणिका

अपनी बात



बिखराव नहीं, भराव

☐ डॉ. नरेन्द्र भानावत

आज जीवन, समाज और हमारे राष्ट्र में बिखराव और विघटन की विकट स्थितियाँ बन रही हैं, जो सम्पूर्ण मानवता के लिए अनिष्टकारी हैं। बिखराव मृत्यु है। प्रकृति के अलग-अलग तत्त्व जब परस्पर समन्वित–संगठित होते हैं, तब जीवन का निर्माण होता है। जीवन की सार्थकता परिपूर्णता में है। अलग-अलग अंग मिलकर अंगी का निर्माण करते हैं, अलग-अलग अंश मिलकर अंशी को रूप देते हैं, अलग-अलग कण मिलकर तरंग में प्रवाहित होते हैं। यह प्रवाह और समष्टि रूप ही जीवन का वास्तविक आनन्द है। पंच तत्त्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश जब एक विशेष अनुपात में मिलते हैं तब विलक्षण शक्ति का आविर्भाव होता है। शक्ति का स्रोत बिखराव नहीं, जुड़ाव है, भराव है। अलग-अलग अंगुलियाँ जब तक बिखराव लिये रहती हैं तब तक वे कोई निर्माण नहीं कर पातीं। जब अंगूठे के साथ वे मिलती हैं, जुड़ती हैं, तब नियामत शक्ति बन जाती हैं। बिखराव विकृति है और भराव संस्कृति है, बिखराव विभाव है और भराव स्वभाव है।

वर्तमान जीवन विभावग्रस्त है। वह अपने स्वभाव में नहीं है। विभाव का कारण है विसंगति, छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति, जड़ पदार्थों के प्रति मोह-मूर्च्छा, दूसरों की बढ़त के प्रति ईर्ष्या-द्वेष, संशय, संदेह। आंतरिक स्तर पर शक्तियों का जुड़ाव न होने से व्यक्ति का मन अस्थिर है, चंचल है। वह गति तो करता है पर दिशाहीन होकर। लक्ष्यहीन गतिशीलता उसमें थकान पैदा करती है। भय और असुरक्षा का भाव उसे निराश और हताश बना देता है, जीवन के प्रति उसकी दृष्टि नकारात्मक बन जाती है, वह दूसरों को ही नहीं, स्वयं अपने को भी नकारने लगता है, दूसरों को नहीं, स्वयं अपने को भी पीड़ित करने लगता है। उसकी यह पीड़ा और नकारात्मक दृष्टि उसे अन्दर ही अन्दर तोड़ती है, बिखेरती है।

यह बिखराव एक सीमा के बाद व्यक्ति को हताश और निराश बना देता है। इस स्थिति से निपटने के लिए वह नाना प्रकार के नशीले पदार्थों का सेवन करने लगता है, जिससे उसकी किंचित रही हुई चेतना भी जड़ बनने लगती है,

शरीर को ही नहीं पूरी मानसिक चेतना को जैसे लकवा-सा मार जाता है । अपनी हीनता को छिपाने के लिए वह महत्त्वाकांक्षा के असीम छोर को छूना चाहता है, पूरी न होने वाली बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ करता है, अपने बड़प्पन की डींग हांकता है, पर यह बड़प्पन का महल बिना नींव का होता है । उसकी जमीन खिसकी हुई होती है । ऐसे हताश व्यक्ति के पैर कांपते रहते हैं । ऊपर से वह स्वस्थ लगता है पर भीतर अनेक असाध्य रोग छिपाये रहता है । आज व्यक्तित्व का यह बिखराव चरम सीमा पर है ।

जब व्यक्तित्व बिखरता है, विघटित होता है, तब परिवार कैसे मिलकर रह सकते हैं ? समाज कैसे संगठित बना रह सकता है ? राष्ट्र की एकता कैसे सुरक्षित रह सकती है ? प्रत्येक स्तर पर यह बिखराव अस्थिरता, अनास्था और अराजकता की स्थिति अपने साथ लिये रहता है । इस स्थिति में व्यक्ति अपने क्षुद्र स्वार्थ से ऊपर उठकर सोच ही नहीं सकता, उसकी संवेदना इतनी जड़ और कुंठित हो जाती है कि वह दूसरों के लिए बह नहीं सकता, पिघल नहीं सकता । व्यक्ति वस्तु बन जाता है, हृदय यंत्र बन जाता है ।

जीवन का आनन्द उसका भराव है । यह भराव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ की सम्यक् साधना पर निर्भर है । यह पुरुषार्थ-क्रम जीवन की परिपूर्णता के लिए, सन्तुलित विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है । बीच के पुरुषार्थ 'अर्थ' और 'काम' जीवन के अस्तित्व के लिए, मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं । उनसे ही जीवन की सृष्टि होती है, जीवन की रक्षा होती है, पर जीवन की परिपूर्णता में 'धर्म' और 'मोक्ष' पुरुषार्थ अपरिहार्य हैं । अर्थ हो, पर धर्म से नियंत्रित हो । अर्थ का उपयोग धर्म प्रेरित हो, धर्मोन्मुखी हो । जिस अर्थ के साथ 'धर्म' का प्रहरी नहीं है, वह अर्थ अनर्थकारी बन जाता है । 'धर्म' का प्रहरी ही 'अर्थ' को अर्थवत्ता प्रदान करता है । 'काम' हो, पर उसका लक्ष्य 'मोक्ष' हो । काम में जबरदस्त शक्ति होती है पर यदि वह शक्ति अधोमुखी होकर आसक्ति का रूप ले लेती है तो पतन होता है । यही काम शक्ति जब निष्काम बन जाती है, स्वार्थ-भोग से ऊपर उठ जाती है तब वह मोक्ष का, मंगल का विधान करती है । महाकवि जयशंकर प्रसाद के शब्दों में—"काम, मंगल से मण्डित श्रेय । सर्ग इच्छा का है परिणाम ।"

आज ज्ञान के नाम पर तर्क-शक्ति का बड़ी तेजी से विकास हुआ है और हो रहा है । तर्क यदि अन्धविश्वास को मिटाता है, परम्परा के फल के साथ रहे हुए कीड़ों को नष्ट करता है, सड़ी-गली रूढ़ियों का उन्मूलन करता है, प्रतिक्रिया-वादी शक्तियों को छिन्न-भिन्न करता है तो वह श्रेयस्कर है । पर यदि तर्क अपने मूल के लिए कुठार बनता है । अपने अस्तित्व के तने को ही काटता है तो वह

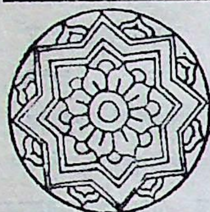
अनिष्टकारी है। आज तथाकथित तर्क-शक्ति जाति के नाम पर, वर्ण के नाम पर, धर्म के नाम पर, मजहब के नाम पर, पद और कुर्सी के नाम पर, मानवता के कल्याण के नाम पर मतभेद ही नहीं मनभेद का दायरा भी बढ़ाती जा रही है। इसके दुष्परिणामस्वरूप जानने, अनुभव करने और क्रिया करने की ज्ञान, दर्शन और चारित्र की जो समन्वित शक्ति है, वह विघटन के किनारे पर है। जब मन, वचन और कर्म की शक्ति बिखरी हुई है, विघटित है, तब कोई भी हितकारी कार्य नहीं हो सकता। हड्डियों के ऊपरी बनावट पर शरीर तनकर खड़ा रह सकता है पर मन की मजबूती अन्दर की बनावट पर निर्भर है। उसके लिए आवश्यक है—स्व-सम्मुखता, आत्म-निरीक्षण। आज का तथाकथित ज्ञान अपने को नहीं, दूसरे को देखता है। जब तक अन्तर्मुखी होने की कला का विकास नहीं होता, तब तक भीतर में भराव का सिलसिला शुरू नहीं होता। उसके लिए आस्था के केन्द्र का मजबूत होना जरूरी है और यह बिना ध्यान, एकाग्रता, स्वाध्याय, तप और मौन के सम्भव नहीं। जब तक व्यक्ति बाहरी संयोगों से हटकर भीतरी शक्तियों से नहीं जुड़ता, बिखराव की प्रक्रिया चालू रहती है।

आज की यह सबसे बड़ी विडम्बना है कि अधिकांश व्यक्ति योग और ध्यान को भी, स्वाध्याय और तप को भी, मौन और प्रार्थना को भी फैशन के रूप में लेते हैं। केवल भूखा रहना, नेत्रेन्द्रिय के माध्यम से किसी ग्रन्थ का पढ़ना, मुख से नहीं बोलना तप, स्वाध्याय और मौन नहीं है। तप है सहनशीलता का अभ्यास, स्वाध्याय है आत्म-निरीक्षण और मौन है मन का गांभीर्य। इन सबका तेज जीवन-व्यवहार में, जीवन-शैली में, आचार-विचार में प्रकट होना चाहिये। यदि साधना का यह तेज प्रकट नहीं होता, अपना प्रभाव नहीं बिखेरता तो कहीं न कहीं तनाव है, टकराव है, बिखराव है। ऐसी साधना का विशेष लाभ नहीं। अनुभवियों ने कहा—"बंधी बुहारी लाख की, बिखर्‌याँ पछै खाक की"। हमारी शक्तियाँ बंधी रहें, परस्पर जुड़ी रहें, अभेद और अद्वैतमय बनी रहें, तभी जिन्दगी की सार्थकता है, मानवता की विजय है। महाकवि प्रसाद के शब्दों में—

"शक्ति के विद्युत कण जो व्यस्त,
विकल, बिखरे हैं, हो निरुपाय।।
समन्वय उनका करें समस्त,
विजयिनी मानवता हो जाय।।'

□ □ □

काव्य–श्रद्धांजलि



मरुधरा के लाल, भूधरजी महाराज !

☐ श्री रिखबराज कर्णावट

क्षत्रिय कुल में जात थी, कहलायी सिरमौड़,
वीर धीर गम्भीर थे, रणबंका राठौड़ ।
रणबंका राठौड़, मिले कुछ को गुरु ज्ञानी,
दे जीवन को मोड़, सुनी जब गुरु की बानी ।
मांस, मद्य, आखेट, चोरी अरु वैश्या गमन,
खेल जूवा का मेट, पर नारी माता नमन ।।१।।

जैन धर्म पालन किया, ओसवंश कहलाय,
खांप मुणोयत बन गई, जग में आदर पाय ।
जग में आदर पाय, हुए प्रशासक नामवर,
इनमें भूधर राय, नागीणा में जन्म धर ।
थे माणकचन्द तात, सम्वत् सत्तरह सौ बारा,
रूपादेवी मात, विजया दशमी दिन सारा ।।२।।

आला अफसर बन गये, मरुधरा की फौज,
सोजत में तैनात थे, कीरति बढ़ती रोज ।
कीरति बढ़ती रोज, डंका भूधर नाम का,
जग जाहिर था ओज, बुद्धि, बल दोनों मिले ।
छिप गये डाकू चोर, उचक्के भी सब भागे,
हुई शान्ति सब ओर, प्रजा आनन्दित हुई ।।३।।

एक दिवस की बात है, पड़ा गाँव में डाका,
कंटालिया वह गाँव था, गाँव–गाँव में हाका ।
गाँव–गाँव में हाका, भूधरजी ने भी सुना,
रोक लिया था नाका, कुछ सिपाही साथ ले ।
सुन भूधर का नाम, डाकू भागे सारे,
वहाँ पड़ गई शाम, एक डाकू छिपा रहा ।।४।।

जय गुरु हस्ती

लोगों में जब धीरज आया, लौट चले तब भूधर राया,
छिपा हुआ डाकू भी भागा, आगे भूधरजी तंह लागा ।
भूधर पर कर दीना वार, गर्दन कटी सांडनी खार,
डाकू भाग गया तत्काल, समझा भूधरजी को काल ।।५।।

देख सांडनी की दशा, आ गया मन में मोड़,
यह संसार असार है, दिया इसे अब छोड़ ।
दिया इसे अब छोड़, पोतिया बन्ध साधु बने,
जंचा नहीं कुछ जोड़, गुरु को शोधन में लगे ।
आखिर मिले धन्ना मुनिराय, धन्य हुए ज्ञानी गुरु पाय,
गुरु से ज्ञान मिला अति भारी, मिट गई मन की शंका सारी ।।६।।

ज्ञानी थे ध्यानी थे, तपसी थे महाराज,
रोज लेवे आतापना, जैसा मिलता साज ।
घटना एक ऐसी घटी, कालू गाँव के पास,
नदी की जलती रेत में, तपते थे गुरु खास ।
तपते देख बाबा भरमाया, वर्षा बाँधन को यह आया,
सिर पर डण्डा यों दे मारा, बेहोशी व लहू की धारा ।।७।।

एक पथिक ने जब यह देखा, गया गाँव में दे दिया लेखा,
कई नागरिक वहाँ पर आये, गुरुजी का उपचार कराये ।
बाबा को भी पकड़ मंगाया, मार-पीटकर दण्ड सुनाया,
जब आया गुरुजी को होश, करो मती बाबा पर रोष ।।८।।

यह भरमाया जीव था, इसे नहीं था ज्ञान,
माफ करो अरु छोड़ दो, इसमें सब की शान ।
अद्भुत क्षमा देखकर, बाबा रोने लगा,
श्रद्धासिक्त होकर, गीत भक्ति के गाने लगा ।
भूधरजी के ज्ञान की, अरु क्रिया की शैली,
चर्चा सारे देश में दूर-दूर तक फैली ।।६।।

बादशाह की शहजादी थी, प्रतिबन्धित आजादी थी,
फिर भी हुआ हादसा ऐसा, नहीं समझ में आवे जैसा ।
शहजादी का पग था भारी, बेगम कही बात यह सारी,
सुनी बादशाह क्रोधित भया, शहजादी को तलबी किया ।
बोली दोष नहीं है मेरा, केवल कुदरत का यह घेरा,
विश्वास नहीं किसी को आया, धर्म धुरंधरों ने यह पाया ।
बिना सम्भोग होय नहीं ऐसा, फिर इसमें है संशय कैसा,
मृत्यु दण्ड देने की सोची, जिससे बात लगे नहीं पोची ।।१०।।

खीवसी भण्डारी थे, सरदारों में खास,
शहजादी से मिलन की, कर दीनी अरदास ।
आज्ञा पाकर वे गये, शहजादी के पास,
तसल्ली पूरी करली, कहीं नहीं था ह्रास ।।११।।

बादशाह से जाकर बोले, इस बात को फिर से तोलें,
तीन माह का समय दिरावें, फिर अपना यह हुकम बजावें ।
भूधरजी की महिमा भारी, कहते यही सभी नरनारी,
भण्डारी भूधर पँह आये, सारी बातें उन्हें सुनाये ।।१२।।

सुनो भण्डारी बात, भूधरजी बोले,
ठाणांग सूत्र उल्लेख, ठाणा पहला खोले ।
पाँच मुख्य गर्भ के कारण, वहाँ पर बतलाये,
बिन सम्भोग गर्भ रहे, अस्थि हीन वह आवे ।
भण्डारी बादशाह से, सारी बात बताई,
विश्वास थोड़ा था, पर बात समझ में आई ।
बच्चा बिन अस्थि हुआ, आया मन सन्तोष,
ऐसे गुरु के दर्शन से, मिट जावे सब दोष ।।१३।।

बादशाह ने दर्शन कीन्हें, लोगों ने भी सत्गुरु चीन्हें,
भूधरजी सोजत में आये, सूनी हवेली उन्हें पठाये ।
जिन्न वहाँ आता था भारी, डरते थे सब नर अरु नारी,
कहते जिन्न भूधर पँह आया, देख उन्हें अतीव हर्षाया ।
प्रातः सब सन्तों को देखा, फैला स्थान-स्थान पर लेखा,
सहस्र-सहस्र दर्शन को आते, दर्शन करके नहीं अघाते ।
हवेली स्थानक बन गया, लोगों को सुख आनन्द भया ।।१४।।

चातुर्मास मेड़ता कीना, साल चार अठरह सौ लीना,
पंचोले की तपस्या ठाई, विजया दशमी की पुल आई ।
पूर्व पारणा आप पधारे, उसी समय परलोक सिधारे,
विजया दशमी को जन्म लिया, विजया दशमी प्रयाण किया ।।१५।।

सन्त-सध्वी बने अनेक, इनमें तीन विचक्षण पेख,
रघुनाथ जयमल कुशलेश, मरुधरा में थे अखिलेश ।
शिष्य परम्परा चली आई, चहुँ दिशि जिनकी महिमा छाई,
हम परम पुरुष को याद करें, लेकर गुण निज कल्याण करें ।।१६।।

□

प्रवचनामृत—



जैन मुनियों की उपकार-परम्परा*

□ आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा०

भौतिकवाद के इस युग में आध्यात्मिक अनास्था वाले कुछ लोग यह प्रश्न उठाने लग गये हैं कि हमारे देश में साधु समुदाय बेकार बैठकर समय गँवाते और समाज तथा राष्ट्र का हित नहीं करते। वे खुल्लम-खुल्ला यह भी कहने लग गये हैं कि इन सबसे कोई न कोई देश-हितकारी काम लिया जाये। राष्ट्र के लिए काम न आने वाले लोगों को मुफ्त की भिक्षा कानूनन बन्द कराई जाये। इसके लिए वे लोक-सभा और विधान-सभाओं की बगलें भी झांकने लग गए हैं।

समझ में नहीं आता है कि उनकी देश-हित की परिभाषा क्या है ? जब तक हित का विश्लेषण और स्पष्टीकरण नहीं हो जाता, तब तक निर्णय पर पहुँचना कठिन ही रहेगा। क्या केवल भूखे को अन्न, प्यासे को पानी, वस्त्र-हीन को वस्त्र, गृह-हीन को गृह और बीमारों के लिए दवाओं की व्यवस्था का काम ही देश-हित के अन्तर्गत आता है, अन्य कार्य नहीं ?

जहाँ तक अन्नादि की व्यवस्था का प्रश्न है, वह हितकारी है, इसमें दो मत नहीं। मगर देश हित के लिए इतना पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। इनसे भी अधिक कुछ महत्त्वपूर्ण हित-कार्य हैं, जिनके बिना मानव-जीवन का कुछ मूल्य नहीं, महत्त्व नहीं और वास्तविक संरक्षण भी नहीं समझा जा सकता। जीवन का निर्वाह तो पशु-पक्षी भी कर लेते हैं। कोई भी नहीं कह सकता कि उनका समाज भूखा और प्यासा रहकर प्राण गँवता है, रोग से पीड़ित होकर दम तोड़ता है।

मानव-जीवन मात्र खाने-पीने और दवा का आसेवन करने भर के लिए नहीं होता। वह चौरासी लाख जीवों में उत्कृष्ट और शिरोमणि जीव है। इसका दायित्व और कर्तव्य सबसे बड़ा-चढ़ा होता है और इसके द्वारा

---

*आचार्य श्री के प्रवचन से डॉ० मञ्जुला बम्ब द्वारा संकलित अंश।

भली-भाँति दायित्व निभाने पर ही देश का भला और परम उपकार हो सकता है।

जैन संतों की एक जीती-जागती तस्वीर और कहानी है। मनुष्यों को सन्मार्ग पर चलाने के लिए जैन संतों का अकथ प्रयास सर्वथा स्तुत्य और प्रशंसनीय है। जन-जीवन के भीतर घुसी मलिनता, भ्रष्टाचार, दुराचार, अनाचार एवं स्वार्थ-परता को हटाना, दण्ड-बल से नहीं, मनोबल को ऊँचा उठाकर, सत् शिक्षा देकर व्यसनों को दूर करना, हिंसकों की हिंसा भावना को जड़-मूल से मिटाने का प्रयास करना, अखाद्य-भक्षी जनों को मांसाहार का दोष दिखाकर, शुद्ध सात्विक आहार में सन्तुष्ट करना, बड़े से बड़े दुराचारी को सदाचारी और ब्रह्मनिष्ठ बनाना, अहंकारी को विनयशील बनाना, लोभी को सन्तोषी और भोगी को संयमी बनाना, स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरों को सन्मार्ग बताना, जीवन-शुद्धि के लिए सतत जागरूक रहकर, मानव को भौतिक स्वार्थ से दूर रहने की शिक्षा देने की बात क्या कुछ कम महत्त्वपूर्ण है ?

यह सच है कि जैन संत, गृहस्थ एवं इन तथाकथित देशोपकारियों की तरह कोई लौकिक या व्यावहारिक कार्य नहीं करते, फिर भी वे जो कुछ भी करते हैं वह शरीर और आत्मा, देश और समाज, सबके लिए हितपूर्ण होता है, जग जीवों के दुःख दूर करने के लिए गाँव-गाँव पैदल घूमकर, भूख-प्यास के कष्ट को सहन कर, अहिंसा और सत्य का अलख जगाते फिरते हैं। उनका आचार ही बतलाता है कि किसी भी प्राणी को मत मारो, मत सताओ, किसी को भी कष्ट मत दो। सब तेरे ही समान दुःख से घबराने वाले और सुख के अभिलाषी हैं।

जैन संतों की विचारधारा अहिंसा और सत्य इन दो तटों के बीच में से होकर बहने वाली, जीव जगत् को परम हित प्रदान करने वाली भागीरथी से भी बढ़कर दुरितनिवारणी एक परमोत्कृष्ट धारा है। जल धारायें तो अधिक से अधिक भूमि को सरस, शस्य सम्पन्न एवं फलदायिनी बनाती हैं, जिससे जीवन यापन करने में सहायता मिलती है। किन्तु संतों की इस विचारधारा के प्रभाव से हिंसा, द्वेष, वैर, विरोध मिटकर सर्वत्र शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित होती है। मानव न सिर्फ मानवों के प्रति ही बन्धुत्व का भाव रखता, अपितु प्राणी मात्र के प्रति करुणापूर्ण हृदय वाला बन जाता है। मनुष्य जन्म पाकर हिंसा का त्याग नहीं करना, पर पीड़ा का आचरण नहीं छोड़ना तथा सत्य से विमुख बनना, भला इससे बढ़कर दूसरा अधर्म और क्या होगा ? जैन-संत जन जीवन में जागृति की यह लहर फैलाते रहते तथा सबको मानवता की शिक्षा देते हैं।

इस प्रकार विचार करने के बाद पता चल सकता है कि समाज और राष्ट्र के लिए जैन संत का जीवन कितना उपकारी, उपादेय और सार्थक है। अन्नदान, वस्त्रदान आदि भौतिक उपकार भी तभी सफल समझे जायेंगे जबकि दाता और गृहीता दोनों का जीवन सर्वथा शान्त और खतरे से रहित हो। समाज जब तक असंयत, हिंसक, असत्यवादी, व्यसनी, ईर्ष्यालु, द्वेषी और परस्पर विरोधी बना रहेगा, जीवन में कभी भी सच्ची शान्ति नहीं आ सकती और न सुख ही मिल सकता है।

जैन-श्रमण बाह्य साधनों की पूर्ति से संतुष्ट नहीं हो, मानव-जीवन के दुःख का मूल ही मिटाना चाहते हैं। वे रोगों की दवा करने की अपेक्षा रोग पैदा होने जैसी स्थिति ही नहीं आने देना चाहते। जैन-श्रमण संस्कृति भौतिक-दुःख द्वन्द्वों को ही दूर करना नहीं चाहती, वरन् उससे भी बहुत ऊँचे उठकर आत्म-कल्याण का पथ प्रशस्त करती है। जैन-श्रमण वास्तव में दैहिक और आत्मिक युगल पीड़ाओं से दूर रहने की शिक्षा देकर समाज का ऐसा महान् उपकार करते हैं, जिसके आगे अन्य सभी उपकार महत्त्वहीन और प्रभाहीन बन जाते हैं।

आध्यात्मिक क्षेत्र में भारत जगत् में अग्रणी और महान् माना जाता रहा है। भौतिक दृष्टि से चाहे जितना भी पिछड़ा रहा हो मगर आध्यात्मिक दृष्ट्या दुनिया का कोई भी देश इस देश से बढ़कर नहीं रहा, यह निर्विवाद सत्य है। यह महिमा और गरिमा इसको श्रमणों खास कर जैन श्रमणों के द्वारा उपलब्ध हुई है।

जीवन-यात्रा में सहायक होने के नाते कृषि, उद्योग, व्यवसाय और कलाएँ आवश्यक हैं और मानव को इनमें अपेक्षाकृत सहयोग से जी नहीं चुराना चाहिए किन्तु इन सबसे राष्ट्र को समृद्ध और सफल बनाकर भी हमारी मानवता अगर दलित और पीड़ित बनी रही, नैतिकता कुण्ठित और सदाशयता म्रियमाण बनी रही तो हमारी राष्ट्रीय प्रगति नगण्य समझी जायेगी। हमारा राष्ट्र हित का नारा और परोपकार की पुकार का कुछ मानी नहीं होगा।

किसी भी देश या राष्ट्र का तब तक सच्चा हित नहीं हो सकता जब तक कि वहाँ के निवासियों के मानस में सद्भाव, सौमनस्य और मानव-मानव के प्रति प्रीति न जमी हो। प्रामाणिकता, नैतिकता तथा परोपकारी भावना के बिना मानव जीवन का कुछ भी मोल नहीं है, स्वार्थ का पाठ तो बिना पढ़ाये भी लोग पढ़ जाते हैं, किन्तु परमार्थ का पाठ पढ़ाने पर, सिखाने पर भी पढ़ना और सीखना बहुत कठिन पड़ता है। इसके लिए मन को नियन्त्रित

करना पड़ता है, इच्छाओं और तृष्णाओं पर पूर्ण संयम और काबू पाना पड़ता है।

मानव कहाना तो कठिन नहीं, कठिन है मानव बनना। और मानव बनकर भी साधुता की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। कहना तो नहीं चाहिये मगर कहे बिना नहीं रहा जाता कि उन साधुओं में भी जैन साधु का जीवन एक अद्भुत जीवन है। इसकी दुष्करता को लक्ष्य में रखकर ही जैन संतों को असिधारा-यात्री कहा गया है। संसार के समस्त सुखोपभोगों से मन को मोड़कर पर हित में निरत बना रहना कोई सरल और सहज कार्य नहीं है। जैन संतों की परम्परा कमोवेश उपकार संलग्न ही बनी आ रही है मानस से निकली गंग-धारा की तरह श्रमण-धारा अपने उसी रूप में जन-मानस को सरसाती और हर्षाती हुई अध्यात्म लक्ष्य की ओर बढ़ी जा रही है। विराम और विश्राम की आवश्यकता नहीं, रुकने का काम नहीं। सद्भावों के संग सतत चलते ही रहना और रुक कर भी सद् विचारों का प्रचार-प्रसार करते रहना भगवान ऋषभ से लेकर वीर प्रभु तक जो भी तीर्थंकर तथा उनके शिष्य-प्रशिष्य हुए, उन सबने एक स्वर से भौतिक विभवों को बन्धन का, भव-प्रपंच का कारण माना। इतना ही नहीं, वे उन्हें दुःख-हेतु समझ कर, सर्वथा अलग हो गये।

संसार में यह देखा जाता है कि भौतिक सम्पदा के लिए लोग क्या से क्या अनर्थ नहीं करते ? एक दूसरे की हिंसा करने, झूठ बोलने, छल और कपट करने आदि से यदि धन मिले तो लोग इससे बाज नहीं आते। किन्तु इन तीर्थंकरों ने उपलब्ध राज्य-वैभव को ठुकराया, सुखोपभोग से मुँह मोड़ा और आत्म-कल्याण के पथ पर आरूढ़ होकर औरों को भी आरूढ़ किया। वे केवल वाणी-बल मण्डित-पण्डित ही नहीं थे, किन्तु उनका आचरण स्वयं जागरण और शिक्षण का मूर्तिमान स्वरूप था।

इतिहास साक्षी है कि उन जैन-श्रमणों के प्रभाव से प्रदेशी राजा जैसा नास्तिक और अधर्मी राजा भी धर्मी, व्रती और दयालु बन गया। दृढ़प्रहारी जैसा पक्का चोर भी परम अहिंसक संत बन गया। अर्जुनमाली जैसा क्रूर हिंसक भी हिंसाविरत भक्त बन गया। इस तरह हजारों और लाखों उदाहरण मौजूद हैं जो इसके साक्षी हैं कि मनुष्य लोक में श्रमणों से बड़ा उपकारी कोई नहीं हुआ।

यह कितना बड़ा उपकार है कि समाज की सभ्यता, संस्कृति और धर्म के मर्म को ठुकराने-झुठलाने वाले कट्टर अधर्मीजन श्रमण-संगति से संस्कृत और पुनीत बन गये। श्रमणों ने उनकी दिशा बदल दी, काया पलट दी और पलट दिया उनके कुसंस्कारों और कुविचारों को भी। क्या कोई धन कुबेर या

पूंजीपति अपना सर्वस्व देकर भी इस तरह का उपकार कर सकता है ? क्या कोई नकली नाम कमाने वाला नेता इस तरह के परिवर्तन लाने में सक्षम बन सकता है ?

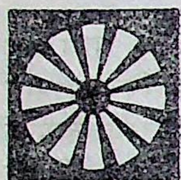
जिन्हें अतीत की घटनाओं के प्रति विश्वास नहीं हो, वे आज भी भारतीय श्रमण के आचरण के प्रभाव का परिचय आचार्य विनोबा भावे पवनार के संत से पा सकते हैं । जिन्होंने चम्बल के दुर्दान्त दस्यु नायकों को वचन-प्रभाव से समाजोपयोगी और शान्ति-प्रेमी बना दिया । संतों के ऐसे-ऐसे चमत्कारी आचरणों और वचनों की प्रत्यक्षता के बाद भी संतों को समाज के लिए भारभूत बताना, खाली बैठै खाने वाला कहना, देश-निर्माण के कार्यों में हाथ बंटाने की शिक्षा और सलाह देना तथा इस हेतु उनकी भिक्षा रुकवाने का प्रयत्न करना आदि अज्ञानता नहीं तो और क्या है ? क्या देश का निर्माण मात्र स्कूल, कॉलेज, अस्पताल आदि कार्यों से ही होता है ? नैतिकता, ईमानदारी, अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि सदा-चरणों की वृद्धि के द्वारा नहीं ? समझ में नहीं आता कि आज की तथाकथित पीढ़ी की सोच-समझ उल्टी कैसे हो चली ?

कोई भी समाज या राष्ट्र धन के अभाव में कभी अधोगामी नहीं हो सकता, मगर जब उसमें बुद्धि-विपर्यय होगा तो फिर उसकी अधोगति को कोई भी रोकने वाला नहीं है । मनुष्य जब विवेक खो बैठता है तो उसका सैकड़ों मुँह से विनाश हो जाता है । हम किसी बात को अच्छी तरह नहीं समझते उससे जितना हर्ज नहीं, उससे अधिक हर्ज अपनी नासमझी को क्रियान्वित करने में है ।

विश्व के अन्य देशों को जहाँ उनकी अपार भौतिक सम्पदाओं तथा ऐश्वर्यपतियों पर गर्व है, हमारे देश को और हम सबको अपने उन अपरिग्रही संतों पर गर्व है, जिनके द्वारा हमारा देश आज तक गुरुता और गौरव के उत्तुंग शिखर पर आसीन रहा है, जहाँ परिव्राजकों को विश्व के सम्राट सदा शीश झुकाते आये हैं, जिनकी आज्ञा शिरोधार्य करने में वे अपना सौभाग्य समझते हैं ।

हमको अपनी परम्परा के परिप्रेक्ष्य में ही किसी विषय पर विवेचन एवं विचार करना चाहिए । जो मिट्टी जैसे गुण वाली होती है, वहाँ वैसे ही पौधे पनपते और प्रचार-प्रसार पाते हैं । भारत आध्यात्मिक देश रहा है और रहेगा । यहाँ का जन-जीवन साधु-संतों के आशीर्वाद और उपदेशों से ही प्रभावित होता रहेगा । अतः किसी श्रमण-परम्परा को अनुपयोगी और व्यर्थ कहना अपनी अयोग्यता का इजहार करने के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता ।

उद्‌बोधन :



सम्यक्‌दर्शन : स्वरूप-विश्लेषण*

☐ आचार्य श्री हीराचन्द्र जी म० सा०

उपस्थित धर्मप्रेमी बंधुओ ! शीलवती माताओ-बहनो ! !

शरीर और आत्मा दो अलग-अलग चीजें हैं। शरीर मात्र साधन है, जबकि आत्मा साध्य है। शरीर के माध्यम से ही आत्मा की साधना की जाती है। शरीर जिन-जिन तत्त्वों से पोषित होता है, उन तत्त्वों की प्राप्ति में विघ्न डालने वाले जो भी कारण हैं, वे शरीर के शत्रु हैं और इसी तरह आत्मा जिन-जिन तत्त्वों से पोषित होती है, शुद्ध बनती है उन तत्त्वों की प्राप्ति में रुकावट पैदा करने वाले कारण आत्मा के शत्रु हैं। जगत् कल्याणकारी तीर्थंकर महावीर ने शरीर के शत्रुओं की अपेक्षा आत्मा के शत्रुओं से सचेत बनकर उनसे आत्मा की रक्षा करने पर विशेष सन्देश दिया है।

आप में से अधिकांश जन शरीर के विघातक तत्त्वों से सदैव भयभीत रहते हैं और उनसे शरीर को बचाने में प्रतिपल सजग भी रहते हैं। आप सामायिक व्रत लेकर बैठे हैं। आपके पास ही आपके शरीर पर धारण किए जाने वाले वस्त्रादि रखे हैं। सामायिक-व्रत की अवधि पूर्ण हुई। आपने विधि-वत् सामायिक पालकर, मुँहपत्ति उतारकर, दुपट्टा नीचे रख, अपने वस्त्रों की तरफ हाथ बढ़ाया, तभी पास बैठे भाई ने कहा—"साहब ! इसमें एक टांटिया है।" सुनते ही आपका आगे बढ़ा हाथ रुक जाएगा, पीछे हट जाएगा। टांटिया की जगह बिच्छू की बात हो तो भय में और अधिक वृद्धि होगी। सर्प यदि बैठा हो कपड़ों के आस-पास, दूर ही क्यों न हो पर तब तो आप आसन छोड़ विपरीत दिशा में दौड़ लगाने लगेंगे। शरीर को कष्ट देने वाले, विषैले इन जन्तुओं से कितना भय है आपको ?

बंधुओ ! इन विषैले जन्तुओं का जहर तो प्रयत्न करने पर फिर भी

*२१-८-९१ को जोधपुर में दिया गया प्रवचन। आशुलेखन—नौरतन मेहता। सम्पादन—पुखराज मोहनोत।

नष्ट किया जा सकता है और शरीर को पूर्ववत् उनके प्रभाव से मुक्त बनाया जा सकता है पर एक जहर ऐसा भी है जो अनादिकाल से जीवों में फैला हुआ है, फैल रहा है और अनन्त-अनन्त काल तक शायद जीव को न छोड़े। क्या उस जहर को जानने, पहचानने और पुरुषार्थपूर्वक उसे नष्ट करने की भी कभी इच्छा होती है आपकी ? व्यवहार में आप शत्रुओं को हराने, उन्हें नष्ट करने, उनसे किसी तरह बचने की बात करते हैं और उपाय ढूंढ़कर ऐसा कर भी लेते हैं परन्तु निश्चय में जो शत्रु है, जो आत्मा का विघातक है उसे नहीं जानेंगे तो उससे छुटकारा कैसे प्राप्त करेंगे ? इस आत्मा का सबसे बड़ा शत्रु है—'मिथ्यात्व'। जब तक मिथ्यात्व रूप शत्रु का नाश नहीं होगा तब तक साधना के मार्ग में चरण बढ़ाकर आत्मोन्नत करना भी संभव नहीं होगा। यही कारण है कि तीर्थंकर भगवन्तों ने मानव को बोध कराते हुए कहा—यदि तू आत्मजयी बनना चाहता है, साधना के मार्ग की बाधाएँ दूर करना चाहता है तो सबसे पहले अपने आपको समझ, विषय और कषायों को अनर्थकारी मान तथा धर्माचरण में कदम बढ़ा। इसके लिए आत्मा के शत्रु नम्बर एक अर्थात् मिथ्यात्व को सबसे पहले दूर कर। मिथ्यात्व अंधकार है, अंधकार में केवल भटकना ही भटकना है। जिस दिन अंधकार हट गया, तेरा लक्ष्य, तेरा पथ, तेरी मंजिल तेरे सामने स्पष्ट होगी।

अंधकार दूर होता है प्रकाश से, मिथ्यात्व दूर होता है सम्यक्दर्शन से। सम्यक्दर्शन है तो आपकी यह सामायिक, सही सामायिक है अन्यथा कोई भी व्रत-नियम सफल नहीं, यथारूप नहीं। आप यदि ज्ञानवन्त हैं तो सही समझिए, आपका ज्ञान, सम्यक्दर्शन के अभाव में ज्ञान नहीं। मोक्षमार्ग के प्रतिपादन में भगवान् महावीर ने सम्यक्दर्शन को प्रमुखता दी है। 'तत्त्वार्थसूत्र' में आया है—"सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः।"

सम्यक्दर्शन क्या है ? कब होता है जीव को सम्यक्दर्शन ? कौन जीव इसका अधिकारी है ? और क्या फल है सम्यक्दर्शन प्राप्त करने का ? आज हमें इन सभी प्रश्नों पर विचार करना है।

तत्त्व को यथावत् अर्थात् जैसा है, वैसा जानना और उस पर श्रद्धा (विश्वास) करना सम्यक्दर्शन है। जीव को जीव तथा अजीव को अजीव समझकर श्रद्धा रखना। इसी तरह आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष आदि तत्त्वों की जानकारी प्राप्त करना, समझना और उन पर श्रद्धा रखना सम्यक् दर्शन है।

अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व

मोहनीय एवं मिश्र मोहनीय—इन सात प्रकृतियों का क्षय, उपशम, क्षयोपशम भी सम्यक्‌दर्शन है।

व्यवहार में जिस जीव को तत्त्व की जिज्ञासा है और जो तत्त्व जानने वालों की सेवा-भक्ति के लिए तत्पर है—उन्हे भी व्यवहार दृष्टि में सम्यक्‌दर्शन (सम्यक्त्वी) कहा जाता है।

देव, गुरु, धर्म का सही श्रद्धान भी सम्यक्‌दर्शन है। वीतराग देव, निर्ग्रन्थ-गुरु और केवली भगवान् द्वारा प्ररूपित दयामय धर्म में श्रद्धा रखना सम्यक्‌दर्शन है।

सम्यक्‌दर्शन कब होता है? शास्त्र की भाषा में जीव के सात कर्मों की स्थितियां (अन्तर) कोटा कोटि सागरोपम के भीतर आती हैं, उस समय जीव को सम्यक्‌दर्शन प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता है। यहाँ अधिकार प्राप्त करने का अर्थ योग्यता धारण करने, योग्य बनने से है। जब तक योग्यता प्राप्त नहीं होती, उपादान शुद्ध नहीं होता तब तक उसे चाहे सद्‌शास्त्र श्रवण या पठन का, सद्‌गुरु के उपदेशों का और तीर्थंकर भगवान् तक की वाणी का संयोग भी प्राप्त हो जाय, सम्यक्‌दर्शन की प्राप्ति संभव नहीं। अन्तरंग-शुद्धि की प्रमुखता के साथ ही साथ व्यवहार-शुद्धि भी आवश्यक मानी गई है।

कुछ विज्ञजन मानते हैं कि निश्चय सर्वत्र प्रधान है और व्यवहार का स्थान गौण ही नहीं अपितु नगण्य-सा है। इसी प्रकार कुछ भले मानस व्यवहार को प्रमुखता देकर निश्चय को गौण मान लेते हैं। बंधुओ! शास्त्रकार कहते हैं कि निश्चय और व्यवहार दोनों ही अपनी-अपनी जगह हैं, दोनों का समान महत्त्व है, कोई प्रधान या गौण नहीं अपितु दोनों ही प्रधान है। उपादान यदि सही है और निमित्त नहीं है तब भी कार्य सिद्ध नहीं होता और निमित्त सही है किन्तु उपादान में योग्यता नहीं है तब भी काम बनने का नहीं। घड़े का मूल कारण चिकनी मिट्टी है पर कुम्भकार, चक्र दंड (डंडा) रूप निमित्त नहीं हो तो घड़ा नहीं बन सकेगा और यदि ये सारे साधन विद्यमान हों पर मिट्टी चिकनी न हो, घट-निर्माण के योग्य न हो तो भी कुम्भकार घट का निर्माण नहीं कर सकेगा।

जीव के साथ भी ऐसा घटित होता है। कभी वह संयोगवश अकाम निर्जरा से दया, दान, क्षमा, विनय, सरलता आदि शुभ-भाव पूर्वक अपने सातों कर्मों की स्थितियों को घटाते-घटाते अंत:कोटाकोटि सागरोपम तक पहुँचा देता है और अपने आपको सम्यक्‌दर्शन के योग्य बना लेता है। अर्द्ध पुद्‌गल परावर्तन

काल बाकी रहने पर वह कृष्णपक्षी से शुक्लपक्षी भी बन जाता है पर यदि बाहरी योग्य निमित्त नहीं मिले तो उसे सम्यक्दर्शन की प्राप्ति की संभावना कम रहती है। यहाँ तक कि कभी-कभी कई भव्य आत्माएँ मोक्ष जाने के तीन भव पहले अथवा उसी भव में सम्यक्दर्शन प्राप्त करती हैं और तब तक मिथ्या-दर्शनी ही बनी रहती हैं। अनादि काल से, जन्म-जन्मांतर से, अनन्त-अनन्त काल तक वह मिथ्यादर्शनी रहा और इस भव में भी मिथ्यादर्शनी था, इसी भव में सम्यक्त्वी बना और मोक्ष को प्राप्त कर लिया—यह शास्त्रानुसार संभव है। इसमें निमित्त को भी महत्त्वपूर्ण माना गया है।

'तिन्नाणं तारियाणं' के विशेषण से युक्त तीर्थंकर भगवन्त जो स्वयं संसार सागर को तैर कर पार हो गए हैं और विश्व के अन्य प्राणियों के लिए जिन्होंने तिरने का पंथ बताया है, उनकी भी यही स्थिति है। वर्तमान तीर्थंकर भगवन्तों की चौबीसी में भगवान् नेमिनाथ का जीव नौ भव पूर्व, भगवान् पार्श्वनाथ का जीव दस भव पूर्व, भगवान् आदिनाथ का जीव तेरह भव पूर्व और भगवान् महावीर का जीव सत्ताइस भव पहले मिथ्यात्वी था। स्पष्ट है कि जिस जीव का अर्द्ध पुद्गल परावर्तन संसार-भ्रमण शेष रहता हो वह शुक्लपक्षी तो बन जाता है पर सम्यक्दर्शन की प्राप्ति योग होने पर, निमित्त होने पर ही होती है।

अब हम यह भी विचार करलें कि सम्यक्दर्शन कैसे प्राप्त हो सकता है ? क्या समकित दी जा सकती है या ली जा सकती है ?

'तत्त्वार्थ सूत्र' कहता है—"तन्निसर्गादधिगमाद्वा" सम्यक्दर्शन कभी जीवों को नैसर्गिक रूप से, स्वान्तःकरण से एक प्रकार का क्षयोपशम होने पर प्राप्त होता है। ध्यान रहे, यह क्षयोपशम व्यक्ति के उपादान को शुद्ध बना देता है। इसी तरह कभी सम्यक्दर्शन अधिगम से अर्थात् योग्य गुरु के योग्य शिष्य को योग निमित्त मिलने पर भी प्राप्त होता है। यह है व्यवहार रूप में समकित देना व समकित लेना। शास्त्र के अनुसार निमित्त से, सद्गुरु के उपदेश से, करुणाभाव से, हृदय की अनुकम्पा से एवं ऐसे ही अनेक अन्य बाहरी संयोग से भी सम्यक्दर्शन प्राप्त होता है।

नाव पानी में रहती है, पानी नाव में नहीं रहता।

दूध में घी रमा हुआ रहता है, घी में दूध नहीं रहता।

तिलों में तेल होता है, तेल में तिल नहीं होते।

शरीर में जीव रहता है, जीव में शरीर नहीं रहता।

ठीक ऐसे ही सम्यक्दर्शी व्यक्ति संसार में रहता है पर संसार उसके भीतर नहीं रहना चाहिये। संसार में रहकर भी वह संसार से परे रहे। पर-पदार्थों के बीच रहकर भी स्व के चिन्तन में लगा रहे। जल में कमलवत् वह सांसारिक पदार्थों, नाते-रिश्तों से निर्लिप्त रहे। राग-द्वेष, हर्ष-शोक, सुख-दुःख से परे रहने के लिए प्रतिक्षण प्रयत्न करने वाला ही सम्यक्दर्शी है। लाखों-करोड़ों का लाभ हो या घाटा लगे, उसे न लक्ष्मी आने पर प्रसन्नता होती है और न उसके जाने पर विषाद। वह तो समता के प्रांगण में खेलता है, समत्व के झूले में झूलता है, अपने ही समान सभी जीवों को जानता है। व्यवहार में सम्यक्दर्शी की पहचान उसके जीवन-व्यवहार को देखकर अनुमानपूर्वक की जा सकती है पर निश्चय से हम नहीं कह सकते कि अमुक व्यक्ति सम्यक्दर्शी है ही। वह अन्दर में कैसा है, उसकी अन्तरात्मा कैसी है—यह तो केवलज्ञानी ही जान सकते हैं। हम तो केवल यह कह सकते हैं कि जो व्यक्ति आत्मलक्षी बनकर जीवन-व्यवहार करता है, वह सम्यक्दर्शी है।

सम्यक्दर्शी व्यक्ति घर-परिवार में रहे या सभी नाते-रिश्ते तोड़कर मोह-माया के बंधनों को छोड़कर त्यागी, बैरागी बन जाए, उसका तो एक ही चिन्तन रहता है—सुख और दुःख मेरे ही कर्मों का फल है। शुभ और अशुभ कर्म जो मैंने इससे पूर्व किए हैं, उनसे जो कर्मबन्धन हुए हैं, उनके उदय से ही यह उतार-चढ़ाव, आनन्द-शोक, साता-असाता मेरे जीवन में धूप-छांह की तरह आते-जाते हैं। वह न सुख में हर्षित होता है और न दुःख में घबराता है। वह तो आत्मा को बन्धन से मुक्त करने की चिन्ता में लगा रहता है। उसका प्रत्येक कार्य, प्रत्येक व्यवहार कर्म बन्धन को काटने को उद्यत होता है। उसका जीवन मधुमक्खी की तरह शहद में रहते हुए भी उसमें लेपायमान नहीं होता। एक पोस्टमैन जिस तरह जन्म या मरण के पत्र, हर्ष और शोक के समाचार घर-घर बांटता है किन्तु स्वयं उन समाचारों को जानकर, सुनकर या पढ़कर भी न प्रसन्न होता है, न उदासीन। उसे कोई खुशी, कोई गम नहीं होता। वैसे ही सम्यक्दर्शी अनुकूल या प्रतिकूल सभी तरह की परिस्थितियों में समभाव रखता है, समता में मगन रहता है।

एक बार सम्यक्दर्शन हो जाए फिर उसका कर्म-बन्धन से मुक्त होना निश्चित है। देर हो सकती है पर मोक्ष तो वह प्राप्त करेगा ही। कभी कर्मों के गाढ़ उदय से कभी अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से अथवा पूर्व में नरक का बन्ध पड़ जाने से लाखों-करोड़ों सम्यक्दर्शी जीवों में कोई एक आगे नहीं बढ़ सके, वह एक अन्य बात है। वासुदेव मानव होते हैं, व्रताराधन को जानते-समझते हैं पर कर नहीं सकते। कदाचित् व्रत ग्रहण कर भी लें तब भी आरा-धक नहीं रहकर विराधक बन जाते हैं। उनके लिए नरक गति का बंध निश्चित

है। इसी प्रकार सामान्यतः सम्यक्दर्शन प्राप्त जीव का देर-सवेर मोक्ष जाना निश्चित है। कम से कम उसी भव में और अधिक से अधिक अर्थ पुद्गल परावर्तन काल में।

मोक्ष में जाने के लिए केवल सम्यक्दर्शन का प्रमाण-पत्र (सर्टिफिकेट) ही पर्याप्त नहीं है। सम्यक्दर्शन प्राप्त करने के बाद उसे सम्यक्चारित्र की आराधना करनी होगी, कषाय-विजयी बनना होगा, मोह का त्याग करना होगा, पाप-कार्यों से पूर्ण निवृत्ति लेनी होगी।

मुझे सम्यक्दर्शन है या नहीं है और आपको भी सम्यक्दर्शन है या नहीं है, स्थिति चाहे जो हो—हमें पापों से निवृत्ति पर ध्यान देना है, वही मार्ग ग्रहण करना है जिस पर चलकर हम कषायों को कृश बना सकें। क्षमा और नम्रता धारण कर, सहनशील बन समतापूर्वक जीवन बिताना निश्चय ही हमारे लिए श्रेयस्कर है। हमारा ऐसा जीवन-व्यवहार कभी व्यर्थ नहीं जाएगा।

हमारा लक्ष्य है कषाय-मुक्ति। हमारा व्यवहार है—पाप-निवृत्ति। निश्चय-लक्ष्य और व्यवहार-कार्य दोनों पर ध्यान देकर चलना ही प्रगति का सार्थक कदम है।

आपको और हमको चिन्तन करना है कि हमारे विषय-कषाय, राग-द्वेष में कितनी कमी आई है? इस प्रकार का चिन्तन-मनन करते रहें, सम्यक् श्रद्धान को धारण करने के लिए प्रयत्नशील बनते रहें, कर्म-बन्धन हटाने में पुरुषार्थ लगाते रहें तो शाश्वत आनन्द की प्राप्ति में देर नहीं लगेगी। आनन्द ही आनन्द।

जीवन क्या है?

□ श्री कैलाश देशलहरा

- जीवन अनेक सम्भावनाओं का छिपा खजाना है।
- बांसुरी है जिसे जितना बजाया जाता है, उतना ही संगीत मिलता है।
- सूर्यमुखी का फूल है जो प्रकाश की ओर अभिमुख है।
- कोरा कागज है जिस पर कुछ भी लिखा जा सकता है।
- परम उपलब्धि का प्रवेश द्वार है।
- जागृति का संदेश / अध्याय है।

—२२-५७/२, राजा भवन बिल्डिंग, पान बाजार,
सिकन्दराबाद-५०० ००३



नयवाद—एक विश्लेषण

□ श्री रमेश मुनि शास्त्री
[उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी के विद्वान् शिष्य]
[अप्रैल, १९९१ के अंक से आगे]

निश्चय और व्यवहार इन दोनों के सम्बन्ध में जितना भी विचार-चिन्तन होगा, उतना ही विषय का हार्द भी स्पष्ट रूप से समझ में आ सकता है। ज्ञान स्वयं आत्मा है, यह जो कथन है, वह निश्चय नय की भाषा है। ज्ञान आत्मा का विशिष्ट और मौलिक गुण है। यह व्यवहार नय की भाषा है, निश्चय नय की नहीं है।

आत्मा गुणी है और ज्ञान उसका गुण है। गुण और गुणी एक दूसरे से कभी भी विलग नहीं हो सकते, गुण और गुणी इन दोनों में अखण्डता है, अभेद सम्बन्ध भी है। व्यवहार नय की दृष्टि से आत्मा को गुणी माना जाता है और ज्ञान को आत्मा का गुण माना गया है। यह कथन भेद दृष्टि से हुआ है।

जैन दर्शन के अभिमतानुसार गुणी और गुण इन दोनों में तादात्म्य-सम्बन्ध है। इस सन्दर्भ में यह तथ्य ज्ञातव्य है कि गुण और गुणी के सम्बन्ध को आधार-आधेय भाव सम्बन्ध नहीं कहा जा सकता। घृत और पात्र इन दोनों में आधार-आधेय का सम्बन्ध रहा है। घृत आधेय है और उसका पात्र-आधार है। पात्र में घृत संयोग सम्बन्ध से रहता है, परन्तु इस सन्दर्भ में यह अवश्य ज्ञातव्य है कि घृत और पात्र इन दोनों की स्वतन्त्र सत्ता है। इसलिये दोनों का सम्बन्ध तादात्म्य नहीं है। जब कि आत्मा और ज्ञान इन दोनों का तादात्म्य सम्बन्ध है।

जैन दर्शन के मन्तव्यानुसार गुणी और गुण इन दोनों में न एकान्ततः भेद है, और न एकान्ततः अभेद है। पर कथंचित् भेद भी है और कथंचित् अभेद भी है। ज्ञान गुण आत्म-द्रव्य के अतिरिक्त अन्य किसी भी द्रव्य में विद्यमान नहीं है। यह सद्भूत व्यवहार नय है।

जैन-साहित्य का गहराई से अनुशीलन-परिशीलन करने पर स्पष्ट रूप से परिज्ञात होता है कि निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयों के विषय में गम्भीर

चिन्तन और विशद-विश्लेषण हुआ है। ये दोनों नय दो आंखों के समान हैं। यदि कोई व्यक्ति केवल व्यवहार नय की दृष्टि से अथवा केवल निश्चय नय की अपेक्षा से पदार्थ के स्वरूप को जानना-समझना चाहे तो वह निश्चित रूप से समीचीन बोध से अनभिज्ञ रहेगा। दोनों नयों में से किसी एक नय का अभाव रहेगा तो उसके चिन्तन में अपूर्णता आ जायेगी, एकाक्षोपन आ जायेगा अतएव पदार्थ के स्वरूप को यथार्थ रूप से जानने के लिये, समझने के लिये दोनों नयों का सम्यग् बोध होना अत्यन्त आवश्यक है। इन दोनों नयों की अपनी-अपनी भूमिका पर पूरा-पूरा वर्चस्व रहा है।

प्रमाणज्ञान इन्द्रिय, मन और आत्मा से होता है। किन्तु नय मन से होता है, इसका कारण यह है कि अंशों का ग्रहण मानसिक अभिप्रायों से हो सकता है। जब हम अंशों की परिकल्पना करने लग जाते हैं तब वह ज्ञान नय कहलाता है। ज्ञाता का अभिप्राय विशेष नय है। नय ज्ञान में पदार्थ के अन्य अंशों अर्थात् गुणों की ओर अपेक्षा, या गौणता रहती है, परन्तु खण्डन नहीं होता। जो ज्ञान शब्दों में उतारा जाता है, जिसमें पदार्थ को उद्देश्य और विधेय रूप में कहा जाता है उसको नय कहा जाता है। अपनी विवक्षा से पदार्थगत किसी भी धर्म को मुख्य मानकर कथन करना नय है। जिस प्रकार प्रदीप में नित्य धर्म भी विद्यमान है और अनित्य धर्म भी है। यहाँ पर अनित्यधर्म का अपलाप न करते हुए अपेक्षा दृष्टि से दीपक को नित्य कहना भी 'नय' है। प्रदीप सर्वथा रूप से नित्य नहीं है, और प्रदीप सर्वथा रूप से अर्थात् एकान्ततः—अनित्य नहीं है। वस्तुतः कोई भी वस्तु सर्वथा नित्य और सर्वथा—अनित्य नहीं हो सकती। जो नित्य है वह कथंचित् नित्य है और जो अनित्य है, वह भी किसी अपेक्षा से अनित्य है।

नय का वर्गीकरण दो प्रकार से हुआ है ज्ञाननय और क्रियानय। विचार-सारणियों से पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को जानना ज्ञाननय है और उसको अपने जीवन में उतारना क्रियानय है। केवल संकेत मात्र से अर्थ का परिज्ञान नहीं हो सकता। क्योंकि शब्दों में ही अर्थों को जानने की शक्ति निहित है।

जो प्रमाण के द्वारा जानी गई वस्तु के एक अंश अर्थात् धर्म को ग्रहण करता है, उसको जानता है। प्रमाणवाद में अंश का विभाजन नहीं होता। वह तो पदार्थगत धर्मों को समग्र भाव से ग्रहण करता है। उदाहरण के लिये यह एक घड़ा है। घट में अनन्त-अनन्त धर्म हैं। वह रूप, रस, गन्ध, स्पर्श इत्यादि अनन्त-अनन्त गुणों से संयुक्त है। प्रत्येक पदार्थ अनन्त धर्मा है। उनका गुण धर्मों का विभाजन न करके समग्र रूप से जानना प्रमाण है। उनका विभाग कर के जानना "नय" है।

नय और प्रमाण ये दोनों ज्ञान की वृत्तियाँ हैं। जब जानने वाले की दृष्टि समग्र रूप से ग्रहण करने की होती है, तब उसका ज्ञान प्रमाण ज्ञान कहलाता है। जब उसका उसी प्रमाण के आधार से ज्ञात वस्तु को खण्ड-खण्ड रूप से ग्रहण करने का जो अभिप्राय होता है, तब वह अंशग्राही अभिप्राय कहलाता है और इसी को नय कहा जाता है। इस प्रकार प्रमाण और नय हैं। इन दोनों को ज्ञान-गुण की पर्याय कहना सर्वथा समुचित है।

प्रमाण सकलादेश है और नय विकलादेश है। सकलादेश में पदार्थ के अनन्त-अनन्त धर्मों की विवक्षा होती है किन्तु विकलादेश में एक धर्म के अतिरिक्त दूसरे धर्मों की विवक्षा नहीं होती। विकलादेश को सम्यक् माना गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि वह जिस धर्म का प्रतिपादन करता है, उसकी विवक्षा करता है, उस विवक्षित धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का एकान्त रूप से अपलाप नहीं करता है, उन धर्मों का निषेध नहीं करता।

सकलादेश और विकलादेश इन दोनों के प्रतिपादन की पद्धति पृथक्-पृथक् रही है। सकलादेश पदार्थ के अनन्त धर्मों को ग्रहण करता है और विकलादेश पदार्थ के एक धर्म तक ही परिसीमित है।

यहाँ पर एक सहज जिज्ञासा समुत्पन्न होती है कि नय प्रमाण है किंवा अप्रमाण? यदि वह प्रमाण है तो उसको प्रमाण से भिन्न क्यों कहा गया है और यदि वह अप्रमाण है तो मिथ्याज्ञान होगा। मिथ्याज्ञान का वैचारिक जगत् में कोई स्थान नहीं है।

प्रस्तुत प्रश्न अवश्य ही विचारणीय है और उसका समाधान यह है कि नय न प्रमाण है, और न अप्रमाण है। किन्तु वह प्रमाण का एक अंश है। जिस प्रकार समुद्र का एक बिन्दु न समुद्र है और न असमुद्र है। अपितु वह समुद्र का एक अंश है। नय के विषय में भी यह बात चरितार्थ होती है।

नय के सम्बन्ध में एक प्रश्न उपस्थित होता है। नय अनन्तधर्मा पदार्थ के किसी एक ही धर्म को ग्रहण करता है तो वह मिथ्या ज्ञान हो जायेगा, फिर उसके द्वारा पदार्थ-स्वरूप का यथार्थ बोध किस प्रकार हो सकेगा?

प्रस्तुत प्रश्न का समाधान यह है कि नय अनन्त धर्मात्मक पदार्थ के एक धर्म को ग्रहण करता है, यह सत्य है, किन्तु इतने मात्र से उसको मिथ्याज्ञान नहीं कहा जा सकता। एक धर्म का परिज्ञान यदि पदार्थ के दूसरे धर्मों का अपलाप करता है तो वह मिथ्याज्ञान होगा। इस सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य तथ्य है कि जो अंश ज्ञान अपने से अन्य धर्मों का अपलाप कर देता है, एकान्त रूप से

निषेध करता है और अपने धर्म का ही प्रतिपादन करता है, वह मिथ्या ज्ञान है। जो अंश-बोध अपने से अतिरिक्त धर्मों का निषेध नहीं करता है और अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करता है, वह सम्यग्ज्ञान है।

प्रमाण की कोटि में पदार्थगत समग्र धर्मों का अन्तर्भाव हो जाता है। किन्तु नय एक अंश को प्रमुखता प्रदान करके अन्य अंशों को गौण करता है, किन्तु उन धर्मों का तिरस्कार नहीं करता है, उनके प्रति उपेक्षा नहीं रहती है। किन्तु दुर्नय अन्य धर्मों से निरपेक्ष होकर अन्य का एकान्ततः निषेध करता है।

नैगम, संग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्र ये चार नय अर्थ नय हैं। क्योंकि वे शब्द के अनुकूल अर्थ को स्वीकार करते हैं। अर्थ का प्राधान्य मानते हैं। शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत इन तीनों नयों को शब्दनय कहते हैं। ये तीनों नय शब्द को अपना विषय बनाते हैं।

सारपूर्ण शब्दों में यह कथन भी समुचित होगा कि नयवाद स्याद्वाद का आधार स्तम्भ है। यह अनेक दृष्टिकोणों से पदार्थ के स्वरूप को निरखने-परखने की विशिष्ट कला सिखलाता है। दुराग्रह को दूर करके दृष्टि को व्यापकता और हृदय को उदारता प्रदान करता है। निश्चय और व्यवहार, ज्ञान और क्रिया आदि वादों का अतीव सुन्दर और समीचीन समन्वय करता है। [समाप्त]

कौन दुष्ट है ?

□ श्री मांगीलाल हिरण 'मुमुक्षु'

पुरुष स्नान करके ठण्डी हवा में बैठा था कि एक जोंक उसके पैर से चिपक कर खून चूसने लगी।

पुरुष ने जोंक को छुड़ाने के अनेक प्रयत्न किये, लेकिन पुरुष असफल रहा। जोंक बड़े आनन्द के साथ रक्त-पान कर रही थी। खीझते हुए पुरुष बोला—"कितनी दुष्ट है तू, खून चूसते शर्म नहीं आती ?"

जोंक ने शीघ्रतापूर्वक जवाब दिया—"अरे जा रे, मैं तो मनुष्य की तरह दुष्ट नहीं, जो स्वयं अपने ही भाइयों का खून चूसते हैं। क्या तूने कभी एक जोंक को दूसरी जोंक का खून पीते देखा है ?"

जोंक के तर्कात्मक उत्तर से पुरुष निरुत्तर हो गया।

—श्री डालचन्दजी हिरण

रणसी गाँव, वा. पिपाड़सिटी, जोधपुर (राज.)



गाँधीजी का सबक

□ श्री बलवन्तसिंह हाड़ा

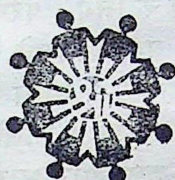
गाँधीजी एक दिन रेल गाड़ी में यात्रा कर रहे थे। तीसरी श्रेणी के डिब्बे में सब तरह के यात्री रहते हैं। उनमें से कोई यात्री गांधीजी को नहीं पहचानता था। गांधीजी को उन प्रारम्भिक दिनों में ज्यादा लोग जानते भी नहीं थे। एक सहयात्री ने डिब्बे के फर्श पर थूंक दिया, आसपास के यात्रियों को बुरा तो लगा लेकिन किसी ने कुछ नहीं कहा लेकिन गाँधीजी को बहुत बुरा लगा और उन्होंने एक अखबार के टुकड़े से उसे साफ कर फेंक दिया। यह बात उस थूँकने वाले यात्री को बुरी लगी। उसने इस व्यवहार को अपने को नीचा दिखाने वाला समझा। उसने पुन: डिब्बे के फर्श पर थूंक दिया। गाँधीजी ने बिना कुछ कहे पुन: कागज से साफ कर डिब्बे के बाहर फेंक दिया। वह यात्री ज्यादा चिढ़ गया और बार-बार फर्श पर थूंकने लगा, परन्तु गाँधीजी बिना क्रोध हर बार थूंक को साफ करते रहे।

जब अगला स्टेशन आया तो स्टेशन के प्लेटफार्म पर भारी भीड़ गाँधीजी की जय जयकार करती हुई उस तीसरी श्रेणी के डिब्बे के सामने आ गई। गाँधीजी ने फाटक खोला और हँसते-हँसते भीड़ का हाथ जोड़ कर स्वागत किया। थूंकनेवाला व्यक्ति भौचक्का सा होकर रह गया कि जिस व्यक्ति को उसने बार-बार थूंककर परेशान किया, वह कोई मामूली आदमी नहीं है। वह अपनी इस दुश्चेष्टा के लिए मन में बड़ा दु:ख अनुभव करने लगा। वह गाँधीजी के चरणों में पड़ गया, गाँधीजी भीड़ के लोगों के स्वागत में लीन थे। जब उनकी निगाह चरणों पर पड़े व्यक्ति पर गई तो उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। बोले—"भैया, क्षमा की कोई बात नहीं है। मैंने तो अपना सबक याद रखा, तुम भी अवसर आने पर ऐसा ही करना।" यह शिक्षा उस यात्री को तो लगी ही सही, लेकिन आज भी हमारे लिए प्रेरणास्पद बनी हुई है।

—खाल की हवेली, झालावाड़—३२६ ००१

विशेष लेख

मृत्यु से जीवन



☐ श्री रणजीतसिंह कूमट

सब जीना चाहते हैं परन्तु जीवन क्या है ? मृत्यु से प्रतिपल संघर्ष ! मृत्यु से संघर्ष करते रहना ही जीवन है। मृत्यु एक सतत तत्त्व है और उसको जितना दूर धकेला जा सकता है उतना ही जीवन है।

डार्विन ने "जीवन के उद्भव एवं विकास" (Evolution of Life) की कहानी को उजागर करते हुए प्राणियों में "योग्यतम के बचने" (Survival of the Fittest) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया, जो इस बात को दर्शाता है कि सभी प्राणियों में जीने, बढ़ने और अपने आपको फैलाने की होड़ होती है और इसमें प्रकृति व साथी प्राणियों से संघर्ष होता है—संघर्ष जीने के लिए अर्थात् मृत्यु से अपने आपको बचाने के लिये है। जो मरने से बच पाते हैं वे ही योग्यतम हैं और वे ही जातियाँ जीवित दिखाई देती हैं। शेष गायब हो गयीं—मर गयीं।

जीवन का क्रम इसी तरह प्रारम्भ होता है। मृत्यु को प्राप्त न हो जायें इस प्रयास में ही सारा जीवन बीतता है। पैदा होते ही बच्चा रोता है—माँगता है भोजन ताकि वह मृत्यु से बच सके। माँगता है गरमी व छाती से लगाव ताकि सर्दी और विषम वातावरण से बच सके। अंडे की स्थिति में भी माँगता है सैना (hatching) ताकि अंडों में से बच्चे निकल सकें। निकलते ही चाहते हैं भोजन। भोजन मिल गया तो बच गये नहीं तो थोड़ी देर में मृत्यु। और भोजन मिल भी गया तो क्या, यदि दूसरे प्राणी ने हमला कर दिया तो फिर जीवन-लीला समाप्त। तो मृत्यु तो पग-पग पर खड़ी है—मृत्यु स्थायी है—मृत्यु से जो बचा वही जीवित है—वही जीवन (Life) है।

मृत्यु का डर ही सबसे बड़ा डर है। उससे ही हम बचते फिरते हैं। सारा प्रपंच ही मृत्यु से बचने का है। जो बच जाते हैं वे योग्यतम हैं और जीवित हैं और जो नहीं बच पाते वे विलीन हो जाते हैं या रूपान्तरित हो जाते हैं।

मृत्यु से बचने के स्थूल उपायों में प्रथम उपाय तो है भोजन की प्राप्ति जिससे शरीर निर्बल न हो और विदीर्ण न हो। फिर वातावरण या जलवायु के

प्रहार से बचने के लिए आवास और कपड़े की प्राप्ति। पशु-पक्षी स्तर पर आवास ही काफी है परन्तु मनुष्य को आवास और वस्त्र दोनों चाहिये। ये मूल आवश्यकताएँ हैं शरीर को बचाये रखने के लिए—जीवित रहने के लिये। परन्तु क्या संघर्ष यहाँ समाप्त हो जाता है? भोजन, कपड़ा और मकान मिलने के बाद संघर्ष चलता है अच्छा और ज्यादा का। भोजन अधिक अच्छा व मात्रा में ज्यादा होना चाहिये। कपड़े और अच्छे होने चाहिये। मकान बड़ा व आलीशान होना चाहिये। तो यह संघर्ष अब शरीर बचाने का नहीं कुछ और भारी संघर्ष है। यह संघर्ष है प्रदर्शन का और दूसरों से अधिक उन्नत या बढ़िया दिखने का। श्रेष्ठ (Superior) होने का।

जब तक सामान्य प्राणी का स्तर था तब तक संघर्ष केवल शरीर बचाने का था परन्तु मानव ने जब शरीर बचा लिया और बचाने के साधन जुटा लिये तो संघर्ष पैदा किया विस्तार का या अपने आपको सबसे श्रेष्ठ सिद्ध करने का। यहाँ भी जीवन बना संघर्ष, साधनों के संग्रहण व संरक्षण का व अपनी श्रेष्ठता बनाये रखने का। मृत्यु को टालने में श्रेष्ठ और साधन-संग्रहण में भी श्रेष्ठ बन समाज में उच्च स्थान प्राप्त करने की चेष्टा स्वयं के अस्तित्व को स्थायी एवं विस्तृत बनाने का उपाय है। और यही संघर्ष उसका जीवन है।

परन्तु यह सब क्या है? यह भी परकोटा है बचाव का। प्रयास अपने आपको छुपाने का। कहीं पोल न खुल जाय। धनवान अपने आपको छुपाता है और बचाव का परकोटा डालता है। अन्य धनवानों या लूटने वालों से कहीं उसकी पोल न खुल जाय या उसका धन लूट न ले जाय। इसी बचाव के प्रयास में वह जीता है। इसी प्रयास में दूसरों को दबाता है, उन पर शासन करता है और उनका शोषण भी। भय है उसे कि जो दूसरों को न दबाया तो वे उसे लूट लेंगे या समाप्त कर देंगे। अल्प ज्ञानी परकोटा डालता है अपने अज्ञान को छुपाने का—कहीं पोल न खुल जाय। व्यवहार में दूसरों को दबाता है ताकि वह श्रेष्ठ स्थान बनाये रखे और उसको पदच्युत न कर दे।

बचा क्या रहा है? बचा रहा है अपने शरीर को या शरीर को बचाने के साधनों को या शरीर के प्रति मोह को। तो सबसे बड़ा प्रयास है शरीर को बचाना क्योंकि इस शरीर से मोह है। इससे बन्धन है। मृत्यु का भय है। उसी से संघर्ष है।

गहराई में इस शरीर से मोह है। फिर शरीर को बचाने के लिये जो साधन एकत्र किये उनसे मोह है और सबसे ज्यादा मोह है अहं या स्वयं की ईगो (ego) से। मोह और अहं एक ही सिक्के के दो पहलू हुए। अहं है तो अहं को बचाने का मोह। और अहं को बचाने के लिए कितने साधन हैं—क्रोध, हिंसा,

दबाव, तनाव, माया, कपट, संग्रहण आदि। लेकिन जिस दिन शरीर का विसर्जन हो जाता है तब यह सब स्वतः समाप्त हो जाता है। तब ये सब उपाय काम नहीं आते। शरीर बचता नहीं। मृत्यु आती अवश्य है और उसके साथ ही अहं या शरीर के मोह का विसर्जन हो जाता है। लेकिन प्राणी शरीर के मोह में और मृत्यु के भय में वह सब कुछ करता है जो नहीं करना चाहिए और फिर अन्त में वह उसे बचा भी नहीं पाता जिसके लिए जीवन भर प्रयत्न किया।

मृत्यु अवश्यम्भावी है और यह शरीर एक दिन जाना है तो फिर इससे इतना मोह क्यों? फिर मृत्यु से इतना भय क्यों? शरीर के लगाव को ही कम करना सीखें और शरीर का मोह छोड़ें तो मरना आसान हो जायगा। मरने का अभ्यास होने पर मरना भयावह नहीं लगेगा। बड़ा अजीब लगता है यह कहना कि मरने का अभ्यास करो परन्तु क्या कोई मौत के पहले मर सकता है?

परन्तु मृत्यु क्या है, जीवन की समाप्ति? और जीवन क्या है—मृत्यु से संघर्ष। ये परिभाषायें तो अन्योन्याश्रित होकर पहेली बन गईं। जीवन मृत्यु से संघर्ष हो सकता है लेकिन मृत्यु का अर्थ जीवन की समाप्ति नहीं है। मृत्यु से शरीर की समाप्ति है—उस शरीर की जिसमें कुछ समय पहले हलचल थी, प्रतिक्रिया थी, जीवन था। परन्तु वह जीवन और प्रतिक्रिया कहाँ से आई और वह कहाँ चला गया? वह जो चला गया वह जीव था और चेतना थी और जब तक वह था शरीर चेतन था, जीवित था। चला गया तो मृत्यु। तो मृत्यु जीवन का अन्त नहीं—केवल जीव का या चेतन का शरीर से विलग होना है। अतः मृत्यु सर्व व्यापक होते हुए भी मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। जीवन जरूर मृत्यु से संघर्ष है क्योंकि जिस जीव ने शरीर धारण किया वह जीवन पर्यन्त उस शरीर को बचाना चाहता है, प्रयास करता है वह उस शरीर से अलग न हो। लेकिन जब अलग हो जाता है तो कहीं और चला जाता है, नया शरीर धारण कर लेता है लेकिन मरता नहीं। जीव कभी समाप्त नहीं होता। चेतना कभी मरती नहीं। चेतना ढक सकती है, सिमट सकती है, छोटी हो सकती है या बड़ी बन सकती है लेकिन मर नहीं सकती। चेतना शक्ति मृत को जीवित कर सकती है लेकिन स्वयं नहीं मर सकती।

मरना शरीर को नहीं है, मरना है शरीर के प्रति मोह को और अहं को जो उसी का प्रतिरूप या प्रतिबिम्ब है। शरीर के प्रति मोह बहुत गहरे में बैठा है और उस मोह को या मौत के डर को निकालना बहुत कठिन कार्य है। यह डर ऊपरी तौर पर नहीं अवचेतन मन (Sub conscious) में गहरा बैठा है और उससे प्राणी अनजाने में ही प्रतिक्रिया करता है। शरीर को बचाने की प्रतिक्रिया अवचेतन मन से स्वाभाविक रूप से प्रकट होती है और उसका चेतन

मन (conscious mind) को पता भी नहीं लगता। वैसे भी जीवन की अधिकांश क्रिया-प्रतिक्रिया अवचेतन मन से स्वतः संचालित होती है जो संस्कारों पर आधारित है। जागृत मस्तिष्क को स्वतः संचालित प्रतिक्रियाओं का पता भी नहीं लगता। उन्हीं में शामिल होते हैं सभी बचाव के उपाय जिन्हें बचाव तन्त्र (Defence mechanism) कहते हैं। क्रोध भी एक बचाव का उपाय है जिससे वह अहं पर होने वाले आक्रमण को टाल सकता है। इस प्रक्रिया को चालू करने के लिए चेतन मन को कुछ आदेश नहीं देना पड़ता। यह प्रक्रिया स्वचालित है और जैसे ही आक्रमण के चिह्न दिखाई देते हैं, प्रक्रिया चालू हो जाती है।

अवचेतन मन में बैठे संस्कारों के आधार पर जीना भी कोई जीना है? प्रतिक्रिया में सारा जीवन बिताना और स्वचालित प्रतिक्रियाओं के आधार पर जीना मनुष्य जीवन का स्तर नहीं क्योंकि अन्य पशु-पक्षी भी इसी स्तर पर जी रहे हैं। मनुष्य के पास जागृत मानस या मस्तिष्क एक विशेष देन है जिससे वह अपने जीवन और प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण कर सकता है और प्रतिक्रिया के जीवन से ऊपर उठ सकता है। यह विश्लेषण ही हमें मोह और अहं पर आधारित प्रतिक्रिया के जीवन से ऊपर उठा सकता है।

प्रतिक्रिया किस आधार पर करते हैं? प्रतिक्रिया करने के लिए अवचेतन मन को सूचना कैसे पहुँचती है? प्रतिक्रिया करते हैं शरीर पर हुई संवेदना के आधार पर। शरीर की इन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, जीभ व त्वचा जो भी देखती, सुनती या महसूस करती है उससे शरीर पर संवेदना पैदा करती है। मस्तिष्क इस संवेदना को पहचानता है और विश्लेषण करता है कि यह संवेदना अच्छी है या बुरी है। संगृहीत संस्कार के आधार पर अच्छी या बुरी का विश्लेषण करते ही प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है—अच्छी को संगृहीत करने व बुरी को हटाने की। स्वतः ही आदेश मिलता है शरीर को कि अच्छी संवेदना है तो उसे प्राप्त करे और बुरी है तो हटा दे। नींद में मच्छर काटता है तो चेतन मन को कुछ पता नहीं है लेकिन मच्छर को हटाने की प्रक्रिया स्वतः चालू हो जाती है। बैठे-बैठे यदि शरीर के किसी भाग में दर्द होता है तो दर्द हटाने की प्रक्रिया स्वतः चालू हो जाती है। यही बात अन्य प्रतिक्रियाओं पर भी लागू होती है।

यह संवेदना कब पैदा हुई, कब विश्लेषण हुआ और कब हटाने या रखने का निर्णय होकर प्रतिक्रिया चालू हो गई, इसका चेतन मन को कुछ पता नहीं और इसमें समय कितना लगा यह भी पता नहीं। क्षणों में यह सब प्रक्रिया हो गई और सतत होती रहती है। वास्तव में चेतन मन को केवल स्थूल संवेदना और गहन दर्द का पता लगता है। सूक्ष्म संवेदना तो शरीर पर आकर चली जाती है और पता भी नहीं लगता।

अतः प्रतिक्रिया के जीवन से ऊपर उठना है और शरीर के प्रति मोह को भंग करना है तो चेतन मन को संवेदना के प्रति संवेदनशील बनना होगा। वह केवल स्थूल संवेदना न जाने वरन् प्रति क्षण होने वाली सूक्ष्म संवेदना भी जाने। यदि यह जानने का स्तर प्राप्त कर लिया तो स्वयं जान सकेगा कि यह संवेदना क्यों पैदा हुई, कैसे हुई और क्या प्रतिक्रिया होनी चाहिए। स्वतः होने वाली प्रतिक्रिया को रोक सकेगा। सवेदना की जानकारी में निहित है एक बहुत बड़ी कुंजी जिससे व्यक्ति प्रतिक्रिया के जीवन से बाहर हो सकता है और शरीर के प्रति मोह से ऊपर उठ कर मृत्यु के दर्शन कर सकता है। मृत्यु-दर्शन के लिये जीवन का दर्शन आवश्यक है। मृत्यु-दर्शन के बाद मृत्यु से भय कैसा? इसके बाद शरीर से मोह कैसा? मृत्यु का जिसने दर्शन कर लिया वह अमर हो गया। उसे कोई नहीं मार सकता।

वास्तव में मृत्यु कुछ नहीं है। हमें केवल मृत्यु का भय है। जरा समझें! मृत्यु क्या है? शरीर पर होने वाली संवेदना और उससे जनित प्रतिक्रिया की समाप्ति ही मृत्यु है। जब शरीर में संवेदना और प्रतिक्रिया समाप्त हो जाती है तो शरीर मृत कहलाता है। हमारी आदत चूंकि प्रतिक्रिया में जीने की बन गई इसलिए प्रतिक्रिया के समाप्त होने का डर लगता है। जीवन प्रतिक्रिया में रहने का दूसरा नाम हो गया इसलिए प्रतिक्रिया के समाप्त होने का नाम मृत्यु हो गया। यदि शरीर प्रतिक्रिया करता रहे तो जीवित है और प्रतिक्रिया बन्द कर दे तो मृत है।

हमें डर मौत का नहीं है वरन् शरीर के प्रतिक्रिया बन्द करने का है। प्रतिक्रिया चलती रहे तो हम खुश हैं क्योंकि जीवन की बंधी हुई परिचर्या चल रही है। भूख लगी, भोजन खा लिया; ठंड लगी, कपड़े पहन लिये। डर लगा तो क्रोध कर लिया या छुप गये। सब कुछ संस्कारित होकर नियमित जीवन चल रहा है। बड़े यत्न से संस्कार डाले, पाले, पोषे और उन पर प्रतिक्रियात्मक जीवन चल रहा था। अब मौत के बाद क्या होगा—फिर नया क्रम—नयी प्रक्रिया। इसलिए हम मौत नहीं चाहते। शरीर की प्रतिक्रिया बन्द नहीं होने देना चाहते। शरीर अपंग हो गया, बूढ़ा व जर्जरित हो गया, मुंह से कह रहे हैं मौत आ जाये तो अच्छा परन्तु वास्तविक मौत स्वागत योग्य नहीं। जीवन चलता रहे यही लालसा है, यही जीजिविषा है। यही मोह है। शरीर न मरे—मौत टल सके उतनी टल जाय।

मौत को टालने से काम नहीं चलेगा। मौत तो आयेगी तो फिर मौत आने से पहले ही उसका स्वागत क्यों न करें? उसका अभ्यास क्यों न करें? यदि मौत का अभ्यास हो गया तो वास्तविक मौत से कोई डर नहीं लगेगा। फिर मौत स्वागत योग्य होगी। परन्तु यह मरने का अभ्यास कैसे करें?

संवेदना और उसके प्रति प्रतिक्रिया ही यदि जीवन की निशानी है तो इनमें से एक को समाप्त करने से मौत परिभाषित हो जाती है। संवेदना तो तभी समाप्त होगी जब शरीर की वास्तविक मौत होगी या गहरी बेहोशी होगी। वास्तविक मृत्यु से पहले मृत्यु का अभ्यास करने के लिए संवेदना के प्रति प्रतिक्रिया न करना ही मौत का अभ्यास है। संवेदना तो हो परन्तु हम संवेदना को केवल देखें व प्रतिक्रिया न करें तो यह जीवन में मृत्यु का दर्शन है। शरीर ने प्रतिक्रिया न की यही तो मृत्यु है। जब व्यक्ति के शरीर को हिलाने, डुलाने या उस पर घात-प्रतिघात करने पर प्रतिक्रिया न हो तो यही कहते हैं कि मर गया। जो चीज वास्तविक मृत्यु के बाद हो वह जीते जी कर सकें तो मृत्यु का अभ्यास कर लिया। संवेदना के प्रति जागरूक होकर प्रतिक्रिया न करें यहीं मृत्यु का दर्शन है। यदि यह कर लिया तो वास्तविक मृत्यु होने पर कोई भय नहीं। क्योंकि यह तो हम पहले भी कर चुके हैं।

यह अभ्यास करने के लिए जागरूक बनना होगा। मस्तिष्क को न केवल संवेदना जानने व पहचानने के लिए जागरूक बनाना होगा वरन् संवेदनाजनित प्रतिक्रिया के प्रति भी जागरूक बनना होगा। जब तक हमें संवेदना की जानकारी नहीं होगी हम उससे जनित प्रतिक्रिया को भी न जान सकेंगे, न रोक सकेंगे। इसके लिए आवश्यक है कि हम जानें कि संवेदना-प्रतिक्रिया पैदा हो रही है। इसके लिए मस्तिष्क या मानस को काफी सजग और संवेदनशील बनाना होगा और अन्दर होने वाली प्रक्रियाओं को बारीकी से जानना होगा।

इस प्रक्रिया को अपनाने, अभ्यास करने और मस्तिष्क को प्रशिक्षित करने के लिए भारतीय साधना-पद्धति में ध्यान, कायोत्सर्ग और समाधि जैसे शब्द आये हैं, उनको अपनाना होगा। ये शब्द जैन, बौद्ध और वैदिक साहित्य में विभिन्न रूप से प्रयुक्त हुए हैं लेकिन इनका लक्ष्य एक ही है—मन के अन्दर झांकना और प्रतिक्रिया के जीवन से ऊपर उठ कर सतत जागरूकता का जीवन अपनाना। जागरूकता अर्थात् प्रमाद रहित जीवन या अप्रमत्त जीवन या विवेकपूर्ण जीवन।

सरल शब्दों में ध्यान का अर्थ मन की एकाग्रता है और इसके माध्यम से बिखरे मन को सशक्त एवं संवेदनशील बनाया जा सकता है। एकाग्र मन को शरीर की संवेदना व प्रतिक्रिया के प्रति सजग बनाकर शरीर के प्रति मोह से ऊपर उठने की प्रक्रिया को कायोत्सर्ग या काया को छोड़ना कहलाता है। शरीर को शिथिल कर शरीर के प्रति अनासक्त होना ही शरीर को छोड़ना या उत्सर्ग करना कहलाता है। कायोत्सर्ग से ही समाधि अर्थात् व्याधि का अन्त और समता में स्थिति उपलब्ध होती है। यही स्थिति अप्रमत्त या विवेकपूर्ण जीवन की है।

ध्यान भी कई तरह के होते हैं और उसकी प्रक्रिया भिन्न-भिन्न है। परन्तु "विपश्यना" पद्धति में जो प्रक्रिया दी है उससे गुजरने पर ध्यान, कायोत्सर्ग और समाधि सहज प्राप्त होती है। विपश्यना में सर्वप्रथम श्वास पर मन को प्रशिक्षित कर शरीर पर होने वाली संवेदना को देखना सिखाते हैं। दस दिन के प्रारम्भिक प्रशिक्षण शिविर में प्रथम तीन दिन श्वास को केवल आते और जाते देखना है। इसमें श्वास को न रोकना है और न तेज चलाना है। जैसा आ रहा है, या जा रहा है, उसी नैसर्गिक प्रक्रिया को देखना है। यही प्रथम अभ्यास है दर्शन का। जो हो रहा है उसको उसी रूप में देखो। अपनी ओर से कुछ न थोपो। प्रकृति के स्वभाव को देखो। देखो और केवल देखो। विपश्यना का अर्थ भी होता है—केवल देखो।

इस प्रक्रिया से गुजरने के बाद प्रशिक्षण दिया जाता है शरीर पर होने वाली संवेदना को देखना। चोटी से लेकर एड़ी तक एक अंग से मन को गुजारना है। वहाँ कुछ देर रुक कर होने वाली संवेदना को देखना है। यहां पर भी कोई विशेष संवेदना को खोजना या देखना नहीं है। जो भी उस अंग पर उस समय घटित हो रहा है, वही देखना है। गर्मी है, पसीना है, फड़कन है, खुजली है, सरसराहट है, दबाव है, तनाव है—जो भी है केवल देखना है। खुजली को भी देखना है और खुजलाना नहीं है। आँख बाहर के दृश्य के लिए बन्द है परन्तु अन्दर शरीर के प्रत्येक अंग पर क्या हो रहा है, उसको देख रहे हैं व उसके प्रति मन सजग है। सम्यक् रूप से केवल देखना है, प्रतिक्रिया नहीं करनी है। इस संवेदना का वर्गीकरण भी नहीं करना है कि अच्छी है या बुरी और न ही यह इच्छा करनी है कि यह रहे या हटे। जैसी है वह स्वीकार है क्योंकि यह संवेदना क्षणिक है। कुछ देर है फिर समाप्त हो जाती है। इसी से एक बहुत बड़ा सत्य उजागर होता है—कि हर वेदना चाहे सुखद हो या दुःखद क्षणिक है अर्थात् अनित्य है। यह शरीर भी अनित्य है और इस पर होने वाली संवेदना भी अनित्य है फिर इसे रोकने से क्या तात्पर्य और हटाने से क्या लाभ ? जैसे आ रही है वैसे ही जा रही है। जैसे श्वास आ रहा है वैसे ही जा रहा है। मन केवल साक्षी भाव से देख रहा है संवेदना का खेल। इसमें लिप्त नहीं और इससे विषाद भी नहीं।

शरीर पर होने वाली संवेदना को इस प्रकार निस्संग और निस्पृह भाव से देखने और प्रतिक्रिया न करने से शरीर के प्रति मोह की कड़ी टूटने लगती है। अवचेतन मन की पकड़ छूटने लगती है। संवेदना और प्रतिक्रिया का वर्तुल टूटने लगता है। शरीर को हम स्वयं बाहर के व्यक्ति की तरह देखने लगते हैं कि इस पर क्या हो रहा है। शरीर को एक तरफ रख कर देखते हैं जैसे यह किसी और का है या केवल कलेवर है। यही है काया का उत्सर्ग या कायोत्सर्ग।

काया पर हो रही सभी संवेदनाएँ स्वीकार हैं और उनके प्रति कोई अवचेतन मन की प्रतिक्रिया नहीं है। अब ऐसा करते एक घण्टा बीत गया और एक ही आसन पर आंख बन्द कर बैठे-बैठे थकान आने लगी, पाँव दुःखने लगे परन्तु उस पर भी प्रतिक्रिया नहीं। उस पर भी विचलित नहीं। दर्द भी देख रहे हैं और सुखद अनुभव भी। देखते-देखते दर्द से भी पार हो जाते हैं। इसी तरह शरीर के अनुभूत सुखद और दुःखद संवेदनाओं से भी।

मन जागरूक है। हर संवेदना को देख रहा है लेकिन उस पर प्रतिक्रिया नहीं कर रहा क्योंकि प्रतिक्रिया से संस्कार का निर्माण होता है और संस्कार पुनः प्रतिक्रिया को जन्म देता है। फिर संवेदना देखने का कार्य बन्द और मन प्रतिक्रिया के खेल में लग जाता है जो कि उसकी पुरानी आदत है। संवेदना—संस्कार—और प्रतिक्रिया का एक दुष्चक्र या वर्तुल है जिसमें हम जीते हैं। इस चक्र को तोड़ने के लिये प्रतिक्रिया की कड़ी यदि तोड़ देते हैं तो पूरा दुष्चक्र टूट जाता है। वर्तुल समाप्त हो जाता है। यह सम्भव है मन को जागरूक रख कर केवल संवेदना देखने से और अचेतन प्रतिक्रिया न करने से। मन जागरूक है तो विवेकशील व अप्रमत्त है। यदि जागरूक नहीं है तो प्रमाद में जीकर प्रतिक्रिया ही करता रहता है।

विपश्यना ध्यान व कायोत्सर्ग की प्रक्रिया से गुजरने पर स्वतः समाधि प्राप्त होगी। इससे मन स्वस्थ बनेगा। स्वयं को देखने से काया का शिथिलन होगा, उससे एक नया अनुभव होगा। तनाव व दबाव कम होंगे और एक नई शान्ति महसूस होगी। शरीर के तनाव जब टूटते हैं तो नई दृष्टि बनती है तनाव और उसके कारणों के प्रति। अब अपने तनाव को घनीभूत न होने देकर उसे स्वयं टुकड़े करके देख रहे हैं कि यह क्यों और कहाँ हुआ? उस तनाव को होते भी देख रहे हैं और टूटते भी। क्रोध तनाव का घनीभूत रूप ही है। इसी प्रकार अन्य कषाय यथा लोभ, अहं आदि हर चीज को हम स्थूल रूप में देखने के आदी हैं। हमें उसे सूक्ष्म रूप में विश्लेषणात्मक ढंग से देखना चाहिये। जब क्रोध के टुकड़े होने लगेंगे तो क्रोध भी तिरोहित होने लगेगा—दबाने से नहीं वरन् केवल देखने से। क्रोध और तनाव मात्र देखने से दूर होने लगेंगे। अतः जो चीज हो रही है उसको दबाने या पकड़ने की बजाय उसे उसी रूप में देखना श्रेयस्कर है। देखने से हम जान सकते हैं कि वास्तविकता क्या है? अन्यथा अन्धी प्रतिक्रिया होती है और उससे प्रतिक्रियाओं की शृंखला बन जाती है और इसी शृंखला में जीने की आदत भी।

प्रतिक्रिया के समापन से मृत्यु का दर्शन हुआ। स्वयं के शरीर को एक तरफ रख कर उसको बाहर से एक भिन्न व्यक्ति की तरह देखा। शरीर के प्रति मोह को छोड़ा। इस प्रक्रिया से गुजरने के बाद क्या होगा? गुजर के देखो स्वयं

जान लोगे। मर के देखो मरने का स्वाद जान जाओगे। यह स्वाद बयान के काबिल नहीं। इसे तो स्वयं को ही जानना होगा। मृत्यु से संघर्ष या डरने की बजाय उसका स्वागत करना सीखो। मृत्यु भयावह नहीं लगेगी। भय चीज ही दूर हो जायेगी। अभय जीवन मिलेगा, अमृत मिलेगा। जीवन को नया दर्शन मिलेगा।

जीवन जो अब तक मृत्यु से प्रतिपल संघर्ष की तरह जी रहे थे अब बिल्कुल नये तरीके से मृत्यु को चुनौती देकर जीने लगेंगे। अब केवल मृत्यु से बचना (Survival) ही जीवन नहीं है। अब वास्तविक जीवन के लिए जीवन है क्योंकि मृत्यु को ज्योंही चुनौती मिली, कोसों दूर भाग गई। अब किसी भी क्रिया में मृत्यु की छाया नहीं है। अब कोई कार्य मृत्यु के डर से या अपने शरीर को बचाने के मोह से नहीं किया जा रहा है। शरीर बचाना महत्त्वपूर्ण नहीं, शरीर के लिए जीना ही अब लक्ष्य नहीं। अब जीवन का लक्ष्य भी ऊँचा और भिन्न हो जायगा। शरीर के स्तर पर या इसके लिए जीना या इसे बचाने के लिए जीना और इसकी प्रतिक्रियाओं में जीना पशु स्तर का जीवन है। अब इससे काफी ऊपर उठ कर जीवन का नया लक्ष्य निर्धारित होगा, नया मकसद होगा और नया स्तर होगा। अब कोई यह न कह सकेगा कि जीवन का दूसरा नाम मृत्यु से प्रतिपल संघर्ष है। परिभाषा बदल गयी और जीवन के मूल्य भी बदल गये। यही असली जीवन है। जिसने ऐसा जीवन जी लिया उसने सब कुछ पा लिया। उसके लिए अब कुछ शेष नहीं। उसके लिए मृत्यु भी जीवन है, मृत्युंजय है।

—20-सी, हीरा बाग, जयपुर–302 004

'जिनवाणी' का विशेषांक : गागर में सागर

चार सौ से अधिक पृष्ठों का यह विशेषांक आचार्यश्री की गौरवगाथा को, उनके बहुआयामी जीवन व कृतित्व को बखूबी उजागर करता है। मनीषियों, कवियों, मुनि व साध्वीवृन्द के विचार, संस्मरण तथा आचार्यश्री के संदेश से इसका महत्त्व बढ़ गया है। आचार्यश्री का कवि के रूप में मैंने प्रथम बार दर्शन किया है। आचार्यश्री के विषय में ऐसे २, ३ विशेषांकों में भी उनका सम्पूर्ण जीवन दर्शन शक्य नहीं, फिर भी आपने गागर में सागर भरने का सफल प्रयास किया है।

समाधिमरण या संथारे को आज के युग में आत्महत्या के रूप में देखा जाता है। विभिन्न लेखों में इस भ्रांति का गम्भीरता से स्पष्टीकरण किया गया है। यह विशेषांक संग्रहणीय है। मेरी ओर से बधाई। साधुवाद।

—**केशरीचन्द सेठिया**, संयोजक, साहित्य समिति,
अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, ११, रंगनाथन एवेन्यू, मद्रास-१०



संयम-साधना

□ श्री सौभाग्यमल जैन

समस्त प्राणी जगत् में मानव को ही अत्यन्त श्रेष्ठ बताया गया है। उसी से संयमपूर्ण जीवन की आशा रखी जाती है। यही अंतर पशु-पक्षी आदि तथा मानव में है। संयम शब्द से तात्पर्य मेरी अल्प मति में जिस जीवन पद्धति में सम्यक् रूपेण "यम" का पालन होता है वह संयम है। "यम" से तात्पर्य मूल (शाश्वत) अपेक्षा से है कि जो मानव से की जाती है तथा उसकी पूर्ति के लिये जो नियम देशकाल, परिस्थिति को लक्ष्य कर बताये जाते हैं या जिनको समाज पालन करके स्वीकृति दे देता है। वे मूल उद्देश्य की पूर्ति के लिये नियम कहे जाते हैं। महर्षि पातंजलि के योग-सूत्र में भी यही तात्पर्य है। संयमपूर्ण जीवन ही सामान्य "जन" से उसे पृथक् करता है। संयम पालन करने वाला संयमी तथा साधक कहा जाता है। भगवान् महावीर ने तीर्थ स्थापना की तथा उसके चारों घटकों से संयमी जीवन की आशा रखी। यह सत्य है कि साधु, साध्वी पूर्ण रूप से संयम का पालन करते जबकि श्रावक और श्राविका आंशिक रूप से। किन्तु फिर भी श्रावक, श्राविका अनियंत्रित जीवन नहीं जीते, उनकी अपनी मर्यादा है। मर्यादाहीन जीवन संयमी जीवन नहीं कहा जा सकता। ऐसा लगता है कि वैदिक आर्यों के आगमन के पूर्व से ही इस देश के पूर्वीय भाग (अंग, बंग, कलिंग, मगध आदि) में जो समुदाय रहता था वह श्रमण परम्परा (आजीवक, जैन, बौद्ध) का पक्षधर था। यह श्रमण परम्परा वेदों को प्रामाण्य नहीं मानती और न हिंसक यज्ञों का औचित्य मानती थी, यज्ञोपवीत आदि तथाकथित संस्कारों से युक्त नहीं होती थी। "व्रात्य" शब्द में व्रत या व्रतपालन निहित है। तात्पर्य यह है कि यह समुदाय व्रत पालन (दूसरे शब्दों में संयम-पालन) करता था (अथर्ववेद का १५वां व्रात्य काण्ड महामहोपाध्याय श्रीपाद दामोदर सातवलेकर कृत सुबोध भाष्य) स्व-विद्वान् श्री सातवलेकरजी ने व्रात्य शब्द के कई अर्थों का जिक्र किया है। उन्होंने व्रात्य शब्द से तात्पर्य सुसंस्कृत अतिअहिंसक समाज से भी होना बताया है। यह सत्य है कि व्रात्य शब्द से क्या तात्पर्य था वह निश्चित रूप से अभी भी नहीं कहा जा सकता। इस सिलसिले में एक अन्य समीक्षात्मक पुस्तक Vratyas in Ancient India, का जिक्र समीचीन होगा। उक्त पुस्तक में भारतीय तथा विदेशी विद्वानों के मतों की समीक्षा की गई है और "व्रात्य" शब्द का तात्पर्य बताने का प्रयत्न किया गया है। उसमें कुछ विद्वानों के मत

में वह 'Non Brahamnical religion' से सम्बन्धित समुदाय था और उसकी अपनी स्वयं की सभ्यता तथा दर्शन था। जैसाकि ऊपर बताया गया है यह समुदाय जिन देशों में था वे अपवित्र माने जाते थे। (ब्राह्मण परम्परा में) मगध व्रात्य या राजन्य (Culture of the easts) था। यदि दूसरे विद्वानों के मत से वह समुदाय असंस्कृत था तो अथर्ववेद में उसकी इतनी प्रशंसा क्यों की गई? लेखक के नम्र मत में "व्रात्य" श्रमण परम्परा के पूर्वी भारत के वैदिक आर्यों के आगमन से भी पूर्व वहाँ के निवासी थे। अथर्ववेद के बाद के ब्राह्मण परम्परा के ग्रंथों में विद्वेष के कारण व्रात्यों के लिए निंदनीय, असंस्कृत आदि दुर्वचनों का जिक्र हुआ है। यहाँ तात्पर्य केवल इतना है कि व्रात्य समुदाय व्रत पालक (संयम पालक) था। संक्षेप में जैन परम्परा के चारों घटक न्यूनाधिक रूप से संयमी जीवन जीते थे और मोक्ष मार्ग के पथिक (साधक) थे। इसी कारण श्रावक को "जिनेश्वर के लघुनंदन" कहा गया है।

श्रमण संस्कृति (जिसमें आजीवक, जैन, बौद्ध तथा अन्य परम्पराओं का शुमार किया जाता है) अत्यंत प्राचीन है। यह सत्य है कि अन्य परम्परा तथा आजीवक आज नाम शेष हैं। आजकल श्रमण संस्कृति के केवल दो (जैन-बौद्ध) ही प्रबल घटक अस्तित्व में हैं। उसमें भी जैन परम्परा अत्यंत प्राचीन है। इस आरे में जो २४ तीर्थंकर हुए हैं उनमें श्री ऋषभदेव प्रथम हैं। कम-से-कम वहीं से उसका अस्तित्व है। ऋषभदेव कुलकर "नाभि" के पुत्र थे जिन्होंने मानव को मानवीय सभ्यता सिखाकर सच्चे अर्थ में मानव बनाने का प्रयत्न किया। उनकी आवश्यकता की पूर्ति के लिये, उदरपूर्ति के लिये, आत्म-रक्षा के लिये मार्ग प्रशस्त किया, तब से ही जैन परम्परा में अन्य २३ तीर्थंकर हुए जबकि बौद्ध परम्परा का प्रारम्भ तथागत बुद्ध से है। कहा जाता है कि तथागत बुद्ध ने भी अपने पूर्वभव में बुद्धत्व प्राप्त किया था और सम्भवतः २४वें स्वयं तथागत बुद्ध होकर निर्वाण प्राप्त किया था। ध्यान देने की बात है कि २४वें बुद्ध (तथागत बुद्ध) ही अपने पूर्वभव में थे। उनका पृथक् अस्तित्व नहीं था जबकि तीर्थंकर महावीर तथा उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरों का अस्तित्व स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में था। इसी कारण देश के कई ख्यात-नामी विद्वानों ने जैन धर्म को अत्यन्त प्राचीन निरूपित किया और बौद्ध धर्म अर्वाचीन (लगभग २५०० वर्ष पूर्व) बताया है। वास्तविकता यह है कि जैन धर्म के अनुसार सामान्यजन भी जब अपनी आत्मा को संयम-साधना के द्वारा अत्यन्त उच्च दशा (शुद्ध दशा) को प्राप्त हो जाता है तब वह मानव जीवन के पूर्ण लक्ष्य (मुक्ति) को प्राप्त हो जाता है। संयम साधना के द्वारा मानव गुणस्थान की १३वीं सीढ़ी पर पहुँच जाता है और उनमें भी वह महान्

आत्मा जिसने अपने पूर्व भव में तीर्थंकर गोत्र उपार्जन कर लिया है वह तीर्थंकर हो जाता है। वह संघ, तीर्थ का प्रवर्तन करता है। तात्पर्य यह है कि जैन धर्म में तीर्थंकर पृथक्-पृथक् महान् आत्मा होती है। उनका व्यक्तित्व स्वतंत्र होता है जबकि बौद्ध परम्परा के अनुसार तथागत बुद्ध की आत्मा ही अपने वर्तमान—भव के पूर्व बुद्धत्व प्राप्त करती है। ऐसा लगता है कि यह प्रक्रिया ब्राह्मण परम्परा के अनुसरण में अवतारवाद की कल्पना है।

जैन धर्मान्तर्गत संयम साधना का प्रारम्भ चौथे गुणस्थान से होता है तब तक उस आत्मा में सम्यक्त्व रूपी प्रारम्भिक अवस्था का अस्तित्व नहीं होता। महान् विद्वान् वाचक उमास्वाति ने अपनी महत्त्वपूर्ण कृति "तत्त्वार्थ सूत्र" में मोक्षमार्ग के पथिक को सम्यक्त्वी होना अनिवार्य निरूपित किया है। सम्यक्त्व से तात्पर्य "आत्मा को आत्म प्रतीति" या "भेदविज्ञानी" होता है। जब तक उसे आत्म प्रतीति या स्व-पर का बोध न हो तब तक वह सम्यक्त्वी नहीं कही जा सकती है। इस बोध के द्वारा ही आत्मा की अन्तर्वृत्ति होती है। यह एक मानसिक प्रक्रिया है अन्तर्वृत्ति सम्पन्न व्यक्ति (चाहे साधु हो या गृहस्थ) अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए भी अन्तर्मखी रहता है। इसी कारण आगम साहित्य में कहा गया है कि—

"सम्मत दंसी न करेई पावं।"

लाला रणजीतसिंह रचित 'आलोयणा' पाठ में—

"रे सम्यक्त्वी जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर्घट न्यारा रहे, ज्यूं धाय खिलावे बाल॥"

तात्पर्य यह है कि चतुर्थ गुणस्थान से आत्मा विकास करती हुई चौदहों गुणस्थान पर पहुँचती है। यह सत्य है कि कई बार वह अपने लक्ष्य से भटक कर पतित हो जाती है। जैसा कहा गया है—

"नीचे गच्छति उपरिच दशा चक्र नेमिक्रमेण।"

किन्तु अमुक स्थिति (गुणस्थान) पर पहुँचने के पश्चात् वह निरंतर विकास-पथ पर यात्रा करती रहती है। तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्वी होना एक अंतरंग प्रक्रिया है। उसका बाह्य रूप व्रत पालन (सम्यक् चारित्र) है जैसा कि ऊपर बताया है कि पूरा अर्हत् संघ या निर्ग्रंथ संघ व्रती होता था। यह पृथक् बात है कि अपनी क्षमता के अनुरूप पूर्ण संयमी या अल्प संयमों हो। कई महान् आत्माएँ ऐसी भी होती थीं कि जिनकी हृदयगत अत्यन्त उच्च कोटि की भावना होती थी कि जो क्षण भर में सारा विकास पथ पार कर चरम

लक्ष्य प्राप्त कर लेती थीं। जैन इतिहास के अनुसार तीर्थंकर ऋषभदेव की माता (मरु देवी) जब अपने पुत्र के दर्शन हेतु उनके समवसरण में गई तब वह हाथी के ऊपर बैठी थी, किन्तु उनकी भावनाएँ इतनी तीव्र तथा उच्च होती गई कि उन्होंने वहीं बैठे-बैठे लक्ष्य प्राप्त कर लिया। वह श्राविका थी। यह जैन इतिहास का अत्यन्त उच्चकोटि का उदाहरण है कि जिसने हृदयगत भावनाओं के महत्त्व को स्पष्ट रूप से उजागर किया है। तात्पर्य यह कि साधक को सदैव जागरूक रहना जरूरी है। जागरूकता से तात्पर्य केवल जाग्रत अवस्था (निद्रा के बिना) से नहीं है अपितु ऐसी जागरूकता (Alertness) से है जिसमें साधक प्रत्येक क्षण अपनी आत्म-प्रतीति स्व-पर भेद विज्ञानी रहकर विकास करता है। वह क्षण भर को भी प्रमाद नहीं करता। इस कारण आगम में ऐसे साधक को—

"भारण्ड पक्खवि जहाऽपमत्ते।"

कहा है कि वह भारण्ड पक्षी के मुताबिक अप्रमत्त भाव से रहे। सारे पापस्थानक का मूल प्रमाद तथा राग-द्वेष है, तब ही कर्म बंध होता है।

—एडवोकेट, शुजालपुर मंडी (राज०)

एक जनवरी से 'जिनवाणी' पत्रिका के शुल्क में वृद्धि

वर्तमान कागज की महंगाई और पोस्टेज दरों में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण "जिनवाणी" पत्रिका के शुल्क में बढ़ोतरी करने का निर्णय लिया गया। यह बढ़ोतरी (नया शुल्क) दिनांक १ जनवरी, १९९२ से प्रभावी होगी—

क्र.सं.	विवरण	वर्तमान शुल्क	संशोधित शुल्क
१.	स्तम्भ सदस्यता	रु. १,००१/-	रु. २,०००/-
२.	संरक्षक सदस्यता	रु. ५०१/-	रु. १,०००/-
३.	आजीवन सदस्यता (देश में)	रु. २५१/-	रु. ३५०/-
४.	आजीवन सदस्यता (विदेश में)	रु. ६५१/-	रु. १,५००/-
५.	त्रिवार्षिक सदस्यता	रु. ५५/-	रु. ८०/-
६.	वार्षिक सदस्यता	रु. २०/-	रु. ३०/-

चैतन्य ढढ्ढा
मंत्री

जवान जाग रे !

□ श्री अचूक

जवान जाग देश के, जवान जाग रे ।
लुट रहा है आज हिन्द का सुहाग रे ।।

मजहब नहीं हुआ है कभी शान देश की,
करता जो प्यार वतन से, पहचान देश की ।

इतिहास उसी का हुआ, जो करता त्याग रे,
जवान जाग देश के, जवान जाग रे ।।

अपना ही खून, अपने लिये काल हो रहा,
इस जिन्दगी के जीने का सवाल हो रहा ।

अब धैर्य एकता, अमन का, गूंजे राग रे,
जवान जाग देश के, जवान जाग रे ।।

अपना वतन है कहते हुए निकली टोलियाँ,
निज देश के लिए, सही सीने पे गोलियाँ ।

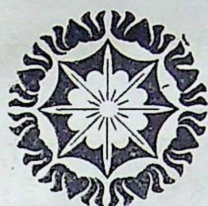
लगने नहीं दिया कभी, दामन पे दाग रे,
जवान जाग देश के, जवान जाग रे ।।

आजाद भगतसिंह की बहारों का चमन है,
माँ भारती के प्यारे सपूतों को नमन है ।

मिलकर के प्रेम रंग में, आज खेलें फाग रे,
जवान जाग देश के, जवान जाग रे ।।

—३८, विजय नगर, करतारपुरा
२२ गोदाम, जयपुर—३०२ ००६ (राज.)

□ □ □



गुणों का दाता

□ श्री देवीचन्द भण्डारी

अपनी आत्मा का विकास करने वाले सभी गुण सद्-साहित्य के अध्ययन-मनन में हैं। इसे स्वाध्याय भी कह सकते हैं। इसलिए आत्मा के यानी स्व के अध्ययन की चिन्ता सदैव करना, यह हमारा प्रथम कर्तव्य है। जो आतमा की भाषा को नहीं जानता, वह वास्तव में दीन और अज्ञानी है।

मानव के द्वारा आत्मा के गुणों का नाश करने वाले साहित्य को पढ़ना जब तक न छोड़ा जायगा तब तक सच्चा आत्म-ज्ञान का आनन्द उसे नहीं आवेगा। दुनिया में दो प्रकार के विचार हैं—अच्छे व बुरे। बुरे विचार रहने पर अच्छे विचार नहीं आ सकते। यह स्पष्ट है।

विश्व के देशों का जानकर, भ्रमणशील, बुद्धिशाली मानव अगर अपने आत्म-प्रदेशों को नहीं जान रहा है, आत्मा की अलौकिक शक्ति को नहीं पहचान रहा है तो वह वास्तव में बुद्धिशाली नहीं अपितु भ्रान्त है। बुद्धिहीन ही है।

यह आत्मा अनन्त शक्ति का स्वामी है। अन्तर की अनन्त जगमगाहट (रोशनी) ज्ञान-दर्शन-चारित्र के गुणों का स्वामी है। इस रहस्य को जाने बिना सारे संसार को जीतने का पुरुषार्थ करने वाला चक्रवर्ती शासक भी अन्त में पराजित हो जाता है। इस सत्य को भारत के चक्रवर्ती सम्राट् अशोक ने समझ कर युद्ध बन्द किया और महान् बना। सिकन्दर इस ज्ञान को न समझ पाया इसलिए वह अनेक प्रदेशों को जीत कर भी महान् नहीं बन सका।

वीतराग के वचनों को अनुचित रूप से ग्रहण करने वाला तत्त्वज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता।

अमरता-अहिंसा, ब्रह्मचर्य-प्रेम, मैत्री एवं मुक्ति के संदेश देने वाले प्रभु के वचन इस जीव को सन्मार्ग पर लाते हैं। सन्मार्ग बोधक स्तोत्रों से उसे एक दिव्य संगीत प्राप्त होता है, जो कि दीनता को दूर करता है। बंधन-अज्ञान-अश्रद्धा-दुःख आदि दूर कर श्रद्धा-परमविश्वास ज्ञान और अंत में मुक्ति को प्राप्त करा देता है।

आत्मा का सद्गुण रूप संगीत जीवन को सदा उज्ज्वल करेगा, पावन करेगा, प्रेरणात्मक बनायेगा, ऊर्ध्वगामी बनायेगा और हमेशा के लिये इस संगीत

के झरने आपके जीवन को प्रफुल्लित करके कलकल नाद करते हुए सद्गुणों के संस्कारों से परिपूर्ण करेंगे।

आज मानव के मन में केवल धन, सम्पत्ति, बंगला, मोटर-गाड़ी, नारी, बाड़ी आदि की तृष्णा का महारूप रमण करता है। इसी में वह सुख मानता है। जबकि सन्तजन आत्म-सम्पत्ति रूप ज्ञान-दर्शन-चारित्र-संतोष, क्षमा, निस्पृहता, उदारता आदि आत्मिक गुणों में महा सुख मानते हैं।

सद्-साहित्य अच्छे विचारों का दाता है। अच्छे विचारों के मन में रहने से प्रसन्नता का झरना मन में हर समय बहता रहता है।

—स्वाध्याय चिंतन केन्द्र
डी-४७, देव नगर, टोंक रोड, जयपुर–३०२ ०१८

दिव्य दाम्पत्य

□ श्री केशवदेव मिश्र 'कमल'

मनु और शतरूपा ने जब अपनी पुत्री देवहूति का हाथ कर्दम ऋषि के हाथ में देने की इच्छा प्रकट की तो कर्दम ने कहा—"मैं भोग-विलास के लिये नहीं, परन्तु पत्नी के साथ नित्य सत्संग करके आत्म-सुख प्राप्त करने के लिए ही विवाह करना चाहता हूँ। मुझे भोगपत्नी नहीं, धर्मपत्नी चाहिए।"

मनु-शतरूपा बड़ी उलझन में पड़े, किन्तु देवहूति ने तपस्वी की सेवा स्वीकार करली और वल्कल वस्त्र पहन लिये।

विवाह के बाद दम्पति ने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया और पत्नी ने पति-सेवा के व्रत का निर्वाह किया। सेवा से प्रसन्न होकर कर्दम ने पत्नी की इच्छा को पूर्ण करना चाहा तो पत्नी ने कहा—"और दूसरी वस्तु क्या माँगू ? हाथ पकड़कर लाए हो तो हाथ पकड़कर प्रभु के दरबार में भी पहुँचा दीजिए।"

ऐसे दिव्य दाम्पत्य के द्वार पर ही कपिल भगवान् पुत्र रूप में पधारे। विवाह के बारे में कैसी सुन्दर जीवन-दृष्टि है।

—हरिजन-निवास, किंग्सवे, दिल्ली–९



मौन*

प्रस्तोता—श्री पी० एम० चौरड़िया

[१]

(१) **प्रश्न**—मौन का वास्तविक अर्थ क्या है ?

उत्तर—(१) मौन का अर्थ है मन की शुद्धि। केवल मुँह से न बोलने का नाम ही मौन नहीं है। मौन कहते हैं चित्त के मौन हो जाने को।

(२) मौन का अर्थ खाली चुप होना ही नहीं है, बल्कि न सोचना भी है और न देखना भी है।

(३) केवल चुप रहने से मौन ऊपर है। असली मौन वहीं है जहाँ विचार का भी अभाव हो जाता है। अपने चित्त को भी भावों से शून्य कर लेना मौन है।

(४) बुराई रहित होना, धर्म के क्षेत्र में भूल रहित होना और आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारना यह आंतरिक मौन है।

(२) **प्रश्न**—मौन रहकर हम आत्म-दर्शन कब कर सकते हैं ?

उत्तर—जब हम मन को देखना शुरू कर देते हैं तो मन निर्बल पड़ जाता है। निर्बल पड़ा हुआ मन शान्त हो जाता है। शान्त हुआ मन मौन हो जाता है और मौन मन के अन्दर आत्मा चिन्तन प्रारम्भ कर देती है।

(३) **प्रश्न**—मौन को कब भंग करना चाहिए ?

उत्तर—हम सबको शान्त और मौन रहना चाहिए। अपनी मौन को तभी भंग करना चाहिए जब हमारे पास कहने को शान्ति से अधिक मूल्यवान विचार हों।

---

*श्री एस. एस. जैन युवक संघ, मद्रास द्वारा आयोजित कार्यक्रम जिसमें स्वाध्याय संघ, युवक संघ एवं बालिका मण्डल ने भाग लिया। —सम्पादक

[२]

(१) **प्रश्न**—वाणी पर नियन्त्रण न होने पर उसके क्या परिणाम होते हैं ?

उत्तर—वाणी व भाषा पर नियन्त्रण न होने से वाद-विवाद, घोर संघर्ष, लड़ाई, झगड़े और महाभारत ठन जाने की भी नौबत आ जाती है।

(२) **प्रश्न**—मौन अवस्था में हमारी प्रवृत्तियाँ किस प्रकार हो जाती हैं ?

उत्तर—मौन अवस्था में हमारी सब प्रवृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं। वे मरती नहीं बल्कि प्राण के स्रोत में जाकर नव-जीवन के घूंट पीने लगती हैं। मनोमुखी होकर वे पोषण पाकर शक्तिशाली बनती हैं।

(३) **प्रश्न**—मौन से क्या-क्या लाभ होते हैं ?

उत्तर—मौन शान्ति का मूल मन्त्र है और बोलना विवाद का कारण है। मौन के लिए पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता। मौन से अनेक विग्रहों से बच जाते हैं। मौन-साधना से वाणी स्वतः सिद्ध हो जाती है।

[३]

(१) **प्रश्न**—'वयगुत्तयाए णं णिव्वियारं जणयई'।

—उत्तराध्ययन सूत्र (२९/५५)

उपर्युक्त आगम की वाणी का अर्थ बताइये ?

उत्तर—वचन गुप्ति से निर्विकार स्थिति प्राप्त होती है।

(१) **प्रश्न**—'अनुवीइभासी से निग्गथे'।

—आचारांग २/३/१५/२

इन शब्दों का अर्थ बताइये ?

उत्तर—जो विचार पुरस्सर बोलता है, वही सच्चा निर्ग्रन्थ है।

(३) **प्रश्न**—'अणुचिंतीय वियागरे'।

—सूत्रकृतांग १/६/२५

इनका अर्थ बताइये ?

उत्तर—जो कुछ बोला जाय पहले विचार कर।

[४]

(१) **प्रश्न**—वाणी के मौन से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—चुप रहना, सावद्य वचन न बोलना।

(२) **प्रश्न**—मन के मौन से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—मन में असत् विकल्पों का न उठना, इधर-उधर मन का न भटकना।

(३) **प्रश्न**—शरीर के मौन से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—इन्द्रियों को विषयों से निवृत्त रखना, शान्त रखना।

[५]

(१) **प्रश्न**—जित बोलिये पति पाइए, सो बोल्या परवाण।
किक्का बोल विगुच्चणा, सुन मूर्ख मन अजान।।

—सिक्खों का धर्म ग्रन्थ (श्री राग म—१)

उपर्युक्त दोहे में क्या कहा गया है ?

उत्तर—ऐसी वाणी ही बोलने योग्य है, जिससे मनुष्य सम्मान पाये। हे मूर्ख और अज्ञानी मन ! कटु-वचन बोलकर अपमानित मत हो।

(२) **प्रश्न**—वाद विवादे विष घना, बोले बहुत उपाध।
मौन गहे सबकी सहै, सुमिरै नाम अगाध।।

सन्त कबीर ने इस दोहे में क्या कहा है ?

उत्तर—अधिक बोलने से नाना प्रकार की परेशानियाँ सामने आती हैं और विवाद अधिक बढ़ जाने पर कटुता रूपी विष उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। इसलिये सबसे उत्तम यही है कि अधिक से अधिक मौन रहकर ज्ञानाभ्यास किया जाय ताकि उसे सच्चे अर्थों में प्राप्त किया जा सके।

(३) **प्रश्न**—'रहिमन' यह मन की विथा, मन में राखो गोय।
लोक-हँसाई सब करें, बाँट न लैहे कोय ॥

रहीम कवि इस दोहे में क्या सन्देश दे रहे हैं ?

उत्तर—रहीम कवि कहते हैं कि मन में जो दुःख है, दर्द है, कष्ट है, उसको वाणी के द्वारा दूसरे के सामने प्रकट मत करो। इसका कारण यह है कि कोई भी दुःख व दर्द को बाँटने के लिए तैयार नहीं होगा, हाँ सुनकर अवश्य एक दूसरे पर हँसी-मजाक अवश्य करेंगे। सारांश यही है कि मौन रखा जाए।

[६]

(१) **प्रश्न**—Silence is more eloquent than words.

मौन में शब्दों की अपेक्षा अधिक वाक् शक्ति रहती है।

उक्त कथन किसका है ?

उत्तर—कार्लाइल का।

(२) **प्रश्न**—आओ हम मौन रहें, जिससे फरिश्तों की वाणी सुन सकें। फरिश्तों की वाणी ज्ञान की वाणी कही गई है।

उपर्युक्त विचार किसने प्रस्तुत किए ?

उत्तर—एमर्सन ने।

(३) **प्रश्न**—दिन में एक घण्टा मौन रहकर मैं चौबीस घण्टे काम कर सकता हूँ। कई दिन तक काम की अधिकता के कारण मैंने यह प्रयोग किया है। गणित के हिसाब से कहा जाए तो एक घण्टे का मौन ६ घण्टे की गाढ़ी नींद के बराबर है।

उपर्युक्त विचार किसने व्यक्त किए ?

उत्तर—आईन्स्टीन ने।

[७]

(१) **प्रश्न**—मौन का हमारे शरीर से क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर—मौन का हमारे शरीर से गहरा सम्बन्ध है । जो व्यक्ति कम बोलते हैं, उनके मस्तिष्क की शक्ति कम व्यय होती है और वह शक्ति ज्ञान-प्राप्ति में सहायक होती है । इसके अलावा अधिक बोलने पर या अधिक वाद-विवाद करने पर अधिकतर व्यक्ति चिढ़ने लगते हैं एवं आवेश में आकर क्रोधित हो जाते हैं ।

(२) **प्रश्न**—अप्रिय सत्य के उच्चारण से मौन को अच्छा क्यों कहा गया है ?

उत्तर—अप्रिय सत्य से पाप का आगमन होता है । इसका कारण यह है कि यह ईर्ष्या एवं द्वेष से अभिप्रेरित होकर कहा जाता है । उसमें अहिंसा की मूल भावना का परित्याग होता है ।

(३) **प्रश्न**—आत्मा के मौन से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—समस्त बाह्य भावों से पराङ्मुख रहकर आत्म-भाव में निमग्न होना ।

[८]

(१) **प्रश्न**—'बात अधिक और शब्द थोड़े' । इस युक्ति में क्या रहस्य छिपा हुआ है ?

उत्तर—शब्द मोती से भी अधिक कीमती होते हैं, अतः उनका प्रयोग जब ही किया जाना चाहिए, जब वे अत्यन्त आवश्यक हों और जब भी उनका उपयोग किया जाए, कम से कम शब्दों में सारभूत बात प्रकट की जाए ।

(२) **प्रश्न**—'थोथा चना बाजे घना' । इस उक्ति का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—अधिक बोलने वाले लोग कभी-कभी व्यर्थ की बात कहकर अनर्थ कर डालते हैं ।

(३) **प्रश्न**—'सबकी सुनो और अपने मन की करो' ।

—एक उक्ति

इस उक्ति का पालन कौन कर सकता है ?

उत्तर—लोक व्यवहार में इस उक्ति का पालन वही कर सकता है जो बोलने की अपेक्षा दूसरों की बात सुनने का अर्थात् मौन रहने का अभ्यस्त होता है।

[९]

(१) **प्रश्न**—व्यावहारिक दृष्टि से मौन रहने वाला हमेशा फायदे में किस प्रकार रहता है ?

उत्तर—बोलने वाला व्यक्ति अपनी बात कहता है यानी अपनी गाँठ से कुछ देता है और सुनने वाला व्यक्ति कुछ न कुछ प्राप्त करता है, अतः लोक व्यवहार की दृष्टि से भी मौन रहने वाला हमेशा फायदे में रहता है।

(२) **प्रश्न**—वाणी के द्वारा १८ पापों में कौन-कौन से पाप होते हैं ?

उत्तर—मृषावाद, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद एवं माया मृषावाद।

(३) **प्रश्न**—मौन शक्ति का स्रोत किस प्रकार है ?

उत्तर—मौन करने से विकेन्द्रिय शक्ति संचित होती है। वाणी में बल और तेज जाग्रत होता है। मनोबल प्रदीप्त होता है।

[१०]

(१) **प्रश्न**— **मौन**

बोलना एक रुचिर कला है, मगर मौन से ऊँची कौन ?
विवाद झगड़ा और कलह का, द्वार बन्द कर देता मौन ।।
भय से जन्मा मौन हमेशा, याद रखो है पशुतापूर्ण।
जिसने जन्म लिया है संयत से, वह है मौन साधुतापूर्ण ।।

उपर्युक्त कविता के रचनाकार कौन हैं ?

उत्तर—मुनि चन्द्रप्रभ सागर।

(२) **प्रश्न**— **।। यदि भला किसी का कर न सको ।।**

यदि सत्य मधुर न बोल सको तो झूठ कठिन भी मत बोलो।
यदि मौन रखो सबसे अच्छा, कम से कम विष तो मत घोलो ।।
बोलो तो पहले तुम तोलो, फिर मुख ताला खोला करना।

यदि भला किसी का कर न सको, तो बुरा किसी का मत करना ।।
अमृत न पिलाने को घर में, तो जहर पिलाते भी डरना ।

उपर्युक्त स्तवन के रचयिता कौन हैं ?

उत्तर—मुनि पुष्प ।

(३) **प्रश्न**— **मेरा मौन सकारण है**

(आगम वाणी)

जं मया दिस्सदे इव
तंण जाणदि सव्वहा ।
जाणवं दिस्सदे जंते,
तम्हा जंपेसि केण हं ।।

अर्थ—मैं किससे वार्त्तालाप करूँ ? रूप, देह जो मुझे समक्ष दिखाई देता है, वह जड़ होने से कुछ भी तो नहीं जानता और आत्मा, जो शरीर के भीतर रहती है, वह तो ज्ञायक चेतन है, पर अदृश्य है फिर भला मैं किससे वार्त्ता करूँ ?

उपर्युक्त उत्तम विचार कहाँ से लिए गए हैं ?

उत्तर—'मोक्ष पाहुड़' से ।

[११]

(१) **प्रश्न**—क्या नहीं बोलना मौन का गलत अर्थ है ?

उत्तर—गलत नहीं, किन्तु अपूर्ण अवश्य है, अधूरा है ।

(२) **प्रश्न**—जरूरत से ज्यादा बोलने की मानव को आवश्यकता क्यों नहीं है ?

उत्तर—जरूरत से ज्यादा बोलकर मानव अपराध का भागीदार होता है । अधिक बोलकर अपना एवं दूसरों का समय बर्बाद करता है । जो समय अधिक उपयोगी कार्यों में लग सकता था, वह व्यर्थ की बातें कहने एवं सुनने में चला जाता है । अतः मानव को जरूरत से ज्यादा बोलने की आवश्यकता नहीं है ।

(३) **प्रश्न**—मौन के सम्बन्ध में प्रचलित कोई दो कहावतें बताइये ?

उत्तर—(१) 'मौन में नौ गुण होते हैं' ।

(२) 'एक चुप सौ सुख' ।

[१२]

(१) **प्रश्न**—मूर्ख और समझदार व्यक्ति में क्या अन्तर है ?

उत्तर—मूर्ख बोलने के पश्चात् सोचता है, पर समझदार व्यक्ति वह है जो बोलने के पूर्व उसके परिणाम के सम्बन्ध में सोचता है एवं आवश्यकता हो तो बोलता है।

(२) **प्रश्न**—'जो अप्रिय एव दूसरे की हिंसा करने वाली भाषा नहीं बोलते, वे संसार में पूजनीय होते हैं'।

ये उत्तम विचार किसने प्रस्तुत किये ?

उत्तर—भगवान महावीर ने।

(३) **प्रश्न**—मौन को अपनाकर व्यक्ति अपने जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने में किस प्रकार सफल हो सकता है ?

उत्तर—मौन रहने से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह महाव्रतों का पूर्णरूपेण निरतिचार पालन हो सकता है, कर्मों की निर्जरा होती है तथा संवर होता है। इस तरह मौन रूपी रत्न को अपनाकर मोक्ष को प्राप्त करने में सफलता मिलती है।

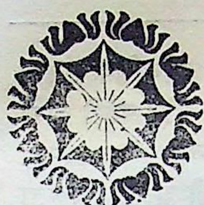
—89, Audiappa Naicken Street
Sowcarpet, Madras-600 079

ध्रौव्य त्रिकाली

□ श्री राजमल पवैया

ध्रौव्य त्रिकाली निज पदार्थ का, ज्ञान यही है सम्यक् ज्ञान।
सम्यक् दर्शन हो जाता है, जब होता है इसका भान॥
दृढ़ प्रतीति होते ही सम्यक् ज्ञान सहज मुसकाता है।
स्वतः स्वरूपाचरण केलि करता निज में रम जाता है॥
निज परिणति बलि-बलि जाती है, मोक्ष मार्ग मिल जाता है।
केवलज्ञान सूर्य को पा, निज कमल पूर्ण खिल जाता है॥
मोक्ष मार्ग पूरा हो जाते ही, हो जाता है निर्वाण।
ध्रौव्य त्रिकाली निज पदार्थ का, ज्ञान यही है सम्यक् ज्ञान॥

—४४, इब्राहीमपुरा, भोपाल



पति की कार्यक्षमता बढ़ाइये !

□ अनीता जैन

हमारे एक परिचित बहुत अच्छे लेखक हैं। अपनी शादी से पूर्व वह किसी न किसी पत्र-पत्रिका के लिए प्रतिदिन एक रचना जरूर लिखते थे। लेकिन शादी के बाद उनका लेखन बिलकुल ठप्प हो गया। पता चला कि वे दिन भर पारिवारिक कलह से त्रस्त रहने लगे थे। नतीजन मानसिक तनाव की वजह से वे चाहते हुए भी अब एक भी शब्द नहीं लिख पाते थे। उनकी कार्यक्षमता पर भी इस तनाव का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह पाता। निश्चय ही लेखन से होने वाली आय और अन्य आय में कमी आई, जो अंततः परिवार के हित में ही काम आती।

पति परिवार की शक्ति होता है। आज के आपाधापी भरे महँगाई के युग में जब हर मध्यवर्गीय परिवार को आये दिन आर्थिक समस्याओं से जूझना पड़ता है, पत्नी पति की क्षमताओं में वृद्धि कर इस शक्ति को परिवार की प्रगति में लगा सकती है।

पत्नी का यह नैतिक दायित्व होता है कि वह अपने पति की मानसिकता को समझे और उसके मुताबिक खुद को ढालने का प्रयास करे। पत्नियों की आमतौर पर धारणा होती है कि पति को खाना खिला देना ही उनकी एकमात्र जिम्मेदारी है। लेकिन यह धारणा काफी संकुचित है। पत्नी का यह भी दायित्व होता है कि वह पति की विशिष्ट रुचि, संवेदनशीलता और अन्य स्तरों पर पति की भावनाओं को समुचित सम्मान दे। हरेक पति या पुरुष की रुचियों में विभिन्नता होती है। एक अच्छी पत्नी को उस दिशा में पति को सहयोग देना होता है, ताकि पति प्रसन्न और तनावरहित रह सके। दाम्पत्य जीवन भी तभी सफल, मधुर व शांतिपूर्ण हो सकता है, जब पत्नी और पति में आपसी तालमेल हो और दोनों ही एक दूसरे की सुविधा-असुविधा का खयाल करें।

पत्नी की नैतिकता ऊँची और ईमानदार होनी चाहिए। उसके अपने मापदंड हैं। सबसे प्रमुख चीज यह देखना है कि वह अपने पति को कितना सुख पहुँचाती है। पति की उपेक्षा, उसके साथ कटु और असहयोगपूर्ण व्यवहार, बात-बेबात झगड़े करना आदि बातें कमोबेश पति की कार्यक्षमता में कमी ही करेंगी। पति की संवेदनशीलता को इन चीजों से आघात पहुँचना स्वाभाविक ही है। पति को मानसिक तनाव की यातना से गुजरना होगा। इन सबसे होने वाली क्षति को अंततः परिवार ही वहन करेगा।

हाल ही के चिकित्सीय अनुसंधानों से एक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आया है। वह यह है कि हृदय रोग, अति रक्तचाप, मधुमेह, पक्षाघात, एलर्जी, अलसर

आदि घातक बीमारियों के मूल में एक प्रमुख कारण लगातार मानसिक तनाव व शारीरिक तनाव होता है। पारिवारिक जीवन में अशांति और पत्नी द्वारा पति की भावनाओं का अनादर पति के लिए बड़े मानसिक तनाव का कारण बनता है। निरंतर तनाव की स्थिति के फैलने से पति भीतर ही भीतर घुलता रहता है और शारीरिक और मानसिक रूप से टूटता रहता है। ऐसे में उसे हृदय रोग और ऐसी ही अन्य बीमारियाँ बहुत जल्द पकड़ लेती हैं।

जाहिर है, ऐसी अवस्था में पति की जो शक्ति और क्षमता पारिवारिक समस्याओं के हल और परिवार के आर्थिक आय के स्रोतों को बढ़ाने में खर्च होनी चाहिए थी, वह बीमारी से लड़ने और मानसिक तनाव से जूझने में खर्च होगी। यह सारी प्रक्रिया निश्चित तौर पर पति की आयु को भी घटाती ही है।

पति को परिवार में मनोनुकूल माहौल नहीं मिल पाने की दशा में एक खतरा और भी है। यदि वह अपने दुःखों को भुलाने के लिए शराब या ऐसे ही किसी अन्य नशे की लत के आदी हो जाए, तो भी आश्चर्य नहीं। नशे की लत के दुष्परिणामों की चर्चा करना व्यर्थ है। वह तो जग जाहिर है ही। व्यसन चाहे वह शराब हो या सिगरेट, आर्थिक व शारीरिक दृष्टि से हानि ही पहुँचाता है। लाभ तो किसी भी सूरत में नहीं।

ये सारी स्थितियाँ पति ही नहीं, आप और पूरे परिवार के लिए परेशानी व समस्याएँ ही पैदा करेंगी। स्पष्टतः इन स्थितियों के लिए पत्नी ही दोषी होती है।

बेहतर होगा, पत्नी अपनी ओर से हर संभव प्रयास करे कि पति की कार्य-क्षमताओं में अभिवृद्धि हो और वह अपनी क्षमता और प्रतिभा का उपयोग परिवार के विकास में करे। पति की हर छोटी-बड़ी समस्या को समझने और उसे अपने स्तर पर हल करने का ईमानदार प्रयास करे। कभी भी ऐसा कोई कार्य न करे, जो पति के मानसिक तनाव में बढ़ोतरी करने वाला हो। पति के हर ऐसे प्रयास का स्वागत करे, जो परिवार की प्रगति के उद्देश्य से किया जाए। अपनी ओर से भी इस प्रयास की सफलता के लिए हार्दिक सहयोग करे। मत भूलिये कि पारस्परिक सहयोग, सहानुभूति, एकनिष्ठ भावना व एक दूसरे की भावनाओं को समझकर ही दाम्पत्य जीवन को सुमधुर बनाया जा सकता है। हमारे देश का सामाजिक ढांचा पुरुष प्रधान है और पति परिवार के आर्थिक संतुलन का केन्द्र बिन्दु है। परिवार का आर्थिक चक्र यदि अपनी धुरी से तनिक भी डगमगाया तो सारा परिवार ही एक बड़े संकट से घिर जाएगा।

ऐसी सूरत में पति की शक्ति को बढ़ाना परोक्षतः परिवार की शक्ति को बढ़ाना ही है।

—भवानीमंडी (राजस्थान)

दुरुपयोग–सदुपयोग

□ श्री जितेन्द्रकुमार गौड़

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद के पास एक बार एक बाबू ने अपने एक अधिकारी के खिलाफ दरख्वास्त लिखकर भेजी। दरख्वास्त एक फुल स्केप के कागज पर गिनी-चुनी चार लाइनों में थी।

राजेन्द्रप्रसाद ने पहले उसे देखा, फिर ध्यानपूर्वक पढ़ा। दरख्वास्त भेजने वाले ने अपने अधिकारी के खिलाफ केवल दुरुपयोग का आरोप लगाया था।

राजेन्द्रप्रसाद ने दोनों को बुलवा भेजा। उन दोनों के आने पर उन्होंने बाबू से पूछा—"क्या तुम दुरुपयोग का अर्थ जानते हो ? तुम्हारा आरोप भी तो यही है न !"

बाबू ने झट से उत्तर दिया—"हाँ, लालाजी।"

राजेन्द्रप्रसाद ने कहा—"जो आदमी दुरुपयोग का अर्थ समझता हो, क्या वह इतना बुजदिल हो सकता है कि जो आरोप वह दूसरों पर लगाता है, खुद भी उसी का शिकार हो ?"

बाबू ने डरते हुए कहा—"जी नहीं। पर मेरा मत........।"

राजेन्द्रजी ने उसकी बात काटते हुए कहा—"तो फिर यह क्या है ?" और उसकी लिखी हुई दरख्वास्त उन्होंने उसके सामने रख दी। बाबू चुप था और अधिकारी को तो काटो तो खून नहीं। परन्तु बात अभी भी दोनों के समझ के बाहर थी।

फिर लालाजी ने उसे समझाते हुए कहा—"तुम दूसरों पर तो नजर रखते हो, परन्तु खुद एक चार लाइन की दरख्वास्त के लिए एक पूरा कागज खराब करते हो ? औरों को नसीहत और खुद मियां फजीहत। खुद अपने गिरेबां में तो झांक कर देखा होता तुमने।" इतना कहकर राजेन्द्रजी चुप हो गए। फिर कहा—"जाओ इस बार तो तुम्हें माफ कर दिया जाता है परन्तु आगे से ऐसी गलती नहीं होनी चाहिये।"

—पाटनपोल बाजार, होली का खूंट, कोटा—३२४ ००६

संस्मरण–सामायिक के [१]

□ श्री माणकचन्द बोहरा

वर्षों से मैं प्रतिदिन सामायिक साधना करता चला आ रहा था पर मन को वांछित शांति नहीं मिल पा रही थी, जीवन को नई दिशा नहीं मिल रही थी कि सहसा एक दिन सामायिक साधना काल में, करुणामूर्ति महाराज कुमारपाल की घटना पढ़ी कि वे सामायिक-साधनारत थे कि उनके पैर में एक मकोड़ा चिपट गया। काफी प्रयत्न करने पर भी वह नहीं छूटा तो कुमारपाल ने चाकू से आस-पास की चमड़ी काट कर उसको अलग किया। चिंतन ने दिशा बदली—ओह, एक इतर प्राणी को किंचित् पीड़ा नहीं देते हुए स्वयं ने यह पीड़ा भोगी। चिंतन आगे बढ़ा—तू तो अपनी वाणी से कई व्यक्तियों को सरे राह चलते पीड़ा पहुँचाता रहता है और साधना-काल में उसी समय संकल्प ले लिया कि यथा सम्भव ऐसा अब नहीं होने दूंगा। इस संकल्प को साकार करने में, प्रारम्भ में कुछ कठिनाई आई—कारण आदत पुरानी थी पर प्रयास जारी रक्खा। सफलता मिली, शांति मिली। जीवन को एक नई अनुभूति मिली। साधना को जहां कुछ सार्थकता मिली वहीं कुछ तथाकथित चतुर व्यक्तियों ने जीवन में आई आंशिक समता को सीधापन मानकर लाभ उठाने का, मुझे पीड़ित करने का प्रयास भी किया, उन्हें संकल्प की अग्नि-परीक्षा मान समभाव से सहन किया तो असीम शांति का अनुभव हुआ। वस्तुतः आज जीवन में जो कुछ भी शांति का अहसास कर रहा हूँ, उसका सम्पूर्ण श्रेय सामायिक-साधना को जाता है।

—अध्यक्ष, वर्धमान स्थानकवासी जैन संघ
पचपहाड़ (झालावाड़) राजस्थान

• समाधि अवस्था को प्राप्त करने के लिए सामायिक व्रत का अभ्यास आवश्यक है।

• अणुव्रतों और गुणव्रतों की साधना को जो सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लेते हैं, वे सामायिक की साधना के पात्र बन जाते हैं।

—आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा.

बाल कथामृत* (९२)

☐ १८ वर्ष तक के बच्चे इस कहानी को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर १५ दिन में "जिनवाणी" कार्यालय को भेजें। उत्तरदाताओं के नाम पत्रिका में छापे जायेंगे। प्रथम, द्वितीय व तृतीय आने वालों को क्रमशः २५, २० व १५ रुपयों की उपहार राशि मण्डल द्वारा प्रदान की जायेगी। इसके अलावा वर्ष भर के लिए निम्न १३ प्रोत्साहन पुरस्कार भी प्रदान किये जायेंगे। १. श्री राजेन्द्रप्रसादजी जैन एडवोकेट, भवानीमंडी की ओर से उनकी माताजी श्रीमती बसन्तीबाई की पुण्य स्मृति में ११ रुपये का एक पुरस्कार। २. श्री रिखबराजजी कर्णावट, जोधपुर की ओर से उनके पिता श्री पन-राजजी कर्णावट की पुण्यस्मृति में १० रुपये का एक पुरस्कार। ३. श्री कैलाशजी बोहरा, भवानीमण्डी की ओर से उनके पिता श्री शान्ति-लालजी की स्मृति में ११ रुपये का एक पुरस्कार। ४. जे० एल० जैन ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा ११ रुपये का एक पुरस्कार। ५. ६. ७. ८. श्री रिखबचन्दजी कांकरिया, मद्रास की ओर से उनके पिता श्री मोहनलालजी कांकरिया, माता श्रीमती झणकारबाई कांकरिया की पुण्य स्मृति में तथा पूज्य महासती श्री सरलाजी एवं विमलाजी की दीक्षा स्मृति एवं धर्मपत्नी श्रीमती पिस्ता-देवी के दो वर्षी तप करने के उपलक्ष्य में १०–१० रुपये के चार पुरस्कार। ९. श्री रघुदासजी जैन, सवाई माधोपुर की ओर से उनके पिता श्री रामजसजी जैन एवं माता श्रीमती मोत्यादेवी जैन की पुण्यस्मृति में १० रुपये का एक पुरस्कार। १०. ११. श्री विनयचन्दजी जैन, दिल्ली की ओर से ११–११ रुपये के दो पुरस्कार उनके पिता श्री प्रेमचन्दजी जैन एवं माता श्रीमती इन्द्राकुमारी जैन की पुण्यस्मृति में। १२. श्री सुरेश राजेन्द्र-कुमारजी मेहता, बम्बई की ओर से ११ रुपये का एक पुरस्कार अपने दादाजी श्री घेवरचन्दजी मेहता की पुण्यस्मृति में। १३. श्री प्रकाशचन्दजी शिशोदिया, रामपुरा की ओर से ११ रुपये का एक पुरस्कार अपनी मातुश्री श्रीमती भँवर बाईजी की स्मृति में।

—सम्पादक



कीमती पत्थर

☐ श्री बलवन्तसिंह हाड़ा

एक राजा को हीरे-जवाहरात इकट्ठे करने का शौक था। उसने दूर-दूर से हीरे, माणिक, पन्ने, पुखराज नामक कीमती पत्थरों को मंगवाकर उन्हें काँच

*श्री राजीव भानावत द्वारा सम्पादित—परीक्षित स्तम्भ।

की आलमारियों में सजा रखा था। प्रत्येक अतिथि को वह कीमती पत्थरों से भरी आलमारी दिखाता और प्रशंसा के शब्द सुनकर गर्व से मुस्कराता था।

एक दिन एक महात्मा उसके महल में आये तो राजा ने वही आलमारी उन्हें भी दिखाई और प्रत्येक पत्थर की कीमत भी बताई जिसे सुनकर महात्मा ने राजा से कहा कि "इनसे कितना लाभ तुम्हें मिल जाता है।" राजा यह सुनकर हँसते हुए बोला—"भला, इनसे आमदनी ! अरे ! मुझे तो इनकी सुरक्षा हेतु विश्वासपात्र चौकीदार रखने पर हजारों रुपया खर्च करना पड़ रहा है।" महात्मा ने कहा कि "तब तो इनका रखना व्यर्थ है।" राजा यह सुनकर खिन्न हो गया और बोला—"महात्मा, भला तुम क्या जानो इन कीमती पत्थरों का महत्त्व ! ऐसे पत्थर स्वप्न में भी न देखे होंगे।"

महात्मा सीधे, सरल शब्दों में बोले "राजन् ! मैंने इनसे भी मूल्यवान उपयोगी पत्थरों को देखा है।" राजा ने उन्हें देखने की उत्सुकता प्रकट की तो महात्मा उनको एक पास की झोंपड़ी में ले गये और एक विधवा की आटा पीसने की चक्की की ओर उंगली का इशारा कर कहा—"महाराज ! देखिये असली कीमती पत्थर।" राजा क्रुद्ध हो गया। "भला यह पत्थर कैसे इतना कीमती है ?" महात्मा ने कहा—"तुम्हारे हीरे-मोती किसी का पेट नहीं भर सकते। यह विधवा आटा पीसकर अपना व बच्चों का पेट पालन करती है। वे बेकार पड़े हीरे किसका पेट भरते हैं, उन्हें मूल्यवान कैसे कहूँ ?" राजा का भ्रम और घमण्ड जाता रहा। उसने प्रजा के लिए उपयोगी कार्य प्रारम्भ करवाये। पाठशालाएँ, चिकित्सालय और उद्योग केन्द्र बनवाये जिससे प्रजा को ज्ञान और पेट भरने के साधन मिल पाये। सच कहा है—उपयोग में आवे वही धन है, अन्यथा पत्थर है।

•

—सी-३७, जवाहर कॉलोनी, झालावाड़

अभ्यास के लिए प्रश्न

उपर्युक्त कहानी को पढ़कर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए—

१. राजा ने किस उद्देश्य से कीमती पत्थर मंगवाकर आलमारियों में सजाकर रखे ?

२. क्या आपकी दृष्टि में राजा का यह कार्य उचित था ? यदि नहीं तो क्यों ?

३. 'राजन् ! मैंने इनसे भी मूल्यवान उपयोगी पत्थरों को देखा है ।' महात्मा का संकेत किन उपयोगी पत्थरों की ओर था ?

४. महात्मा ने आटे की चक्की को असली कीमती पत्थर क्यों बताया ?

५. कबीर ने इस सम्बन्ध में एक दोहा कहा है, उसे ज्ञात कर लिखिए ।

६. महात्मा के कथन का राजा पर क्या असर पड़ा ?

७. इस कहानी से क्या शिक्षा मिलती है ?

८. 'उपयोग में आवे वही धन है, अन्यथा पत्थर है ।' इस कथन की पुष्टि में कोई घटना-प्रसंग लिखिए ।

फिलिप सिडनी का अनोखा तरीका

☐ श्री मनोज आंचलिया

इंग्लैण्ड की रानी एलिजाबेथ के समय इंग्लैण्ड की लड़ाई में विख्यात लेखक और वीर सर फिलिप सिडनी युद्ध स्थल पर घायल हो गए थे और प्यास के मारे छटपटा रहे थे । कुछ सिपाहियों ने बहुत दूर से थोड़ा सा जल लाकर उन्हें दिया । उन्होंने जल का प्याला मुँह के सामने किया ही था कि उनकी निगाह उसी सैनिक पर गई जिसने उन पर तलवार का वार किया था । वह भी आतुर दृष्टि से जल के प्याले की ओर एकटक देख रहा था । सर फिलिप ने रेंगकर वह प्याला उसके होठों पर लगा दिया था । शत्रु सिपाही शर्म से पानी-पानी हो चला ।

कुछ देर में यह वृत्तांत शत्रु खेमे में कप्तान के पास पहुँचा तो वह भी दौड़ा-दौड़ा सर फिलिप से मिलने आया ।

फिलिप बोले—"युद्ध करते वक्त तलवार से वार करना उचित था या नहीं, मैं तो इतना जानता हूँ कि हिंसा को अहिंसा से, अहिंसक तरीके से आसानी-पूर्वक शीघ्र जीता जा सकता है । विपक्षी, विरोधी सैनिक कमाण्डर भी सर फिलिप के इस निःस्वार्थपूर्ण कार्य पर पहले से ही नतमस्तक हो गया, फिर अहिंसा के लेक्चर ने तो उसे अपने देश जाने पर ही मजबूर कर दिया ।

—सुंदर स्पोर्ट्स, चेतक सिनेमा के पास, उदयपुर



दीर्घ तपस्वी श्री बलभद्र मुनि

भारतीय साधना-पद्धति में तप का बड़ा महत्त्व है । जो जीवन जितना तपता है उतना ही परिपक्व, पवित्र और पूर्ण बनता है। तप जीवन का ओज और प्रकाश है। मक्खन से घी निकालने के लिए उसे बर्तन में रखकर आँच पर तपाना होता है ताकि मैल या छाछ का अंश उससे अलग हो जाय। इसी तरह आत्मा रूपी मक्खन में रहे क्रोध, मान, माया, लोभ, काम, मोह, वासना और तज्जनित कर्मों का मैल निकालने के लिए उपवास आदि तप रूप अग्नि की आँच से शरीर, इन्द्रियाँ व मन रूपी बर्तन को तपाया जाता है । इनको तपाने से कर्मों का मैल/कचरा अलग हो जाता है और आत्मा शुद्ध, तेजस्वी व बलवान बन जाती है।

भगवान् महावीर ने तप के बारह भेद बताये हैं उनमें अनशन (उपवास) तप को प्रथम स्थान दिया है । अनशन में सब प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है ताकि शरीर से मोह छूटे और मन व इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी बनकर जप, ध्यान में लीन हों । जैन परम्परा में एक दिन से लेकर एक माह तक (मासखमण) तपस्या करने वाले अनेक सद्गृहस्थ व साधु-साध्वी मिलेंगे। कई साधकों ने एक माह से अधिक तपस्या भी की है। जयपुर की इचरज-कँवर लूणावत ने १६५ दिन की व बंगलौर की धापूबाई ने १५१ दिन की तपस्या कर वर्तमान युग में अनूठा आदर्श प्रस्तुत किया है। "अन्तगड सूत्र" में भगवान अरिष्टनेमी व भगवान महावीर के समय के अनेक तप-साधकों की उग्र तपस्या का प्रेरणादायी वर्णन मिलता है।

भगवान महावीर की जिन-शासन परम्परा के ही दीर्घ तपस्वी सन्त हैं **श्री बलभद्र मुनि** । आपका जन्म आज से ६५ वर्ष पूर्व पीपल्या मण्डी (म. प्र.) में हुआ । आपको अपने पिता वरदीचन्दजी पामेचा व माता टाँकूबाई से धार्मिक संस्कार मिले।

आपका पूरा परिवार धर्मनिष्ठ है और ७ आत्माएँ श्री नानेश की निश्रा में दीक्षित हुई हैं। आपके पिताश्री ने ७० वर्ष की आयु में जैन दीक्षा अंगीकृत कर उग्र तपस्या की। आपके संसार पक्षीय भाई अमरचन्द ने सपत्नीक दीक्षा ली । वर्तमान में वे अमरचन्दजी म० व साध्वी कस्तूरकँवरजी के रूप में आचार्य नानेश के शिष्य हैं, दोनों ही उग्र तपस्वी हैं। अमर मुनि ने ६३ तक की व साध्वी कस्तूरकँवर ने ८१ तक की तपस्या की है।

बलभद्र मुनि ने अपनी पत्नी व तीन पुत्रों सहित सम्पन्न समृद्ध परिवार को छोड़कर सं० २०३१ में सरदारशहर में आचार्य श्री नानेश के चरणों में दीक्षा ग्रहण की। आपकी पुत्री प्रियलक्षणा व दोनों भाइयों की पुत्रियों विचक्षणा व चन्दनबाला ने भी दीक्षा धारण की। भुआ के लड़के रणजीत सपत्नीक, भानजी कुसुम व प्रेमलता तथा साले की लड़कियाँ किरण श्री व सुमंगला श्री भी संयम-पथ पर अग्रसर हुए। यों कुल मिलाकर आपके परिवार के १३ सदस्य संयम-पथ पर आरूढ़ हैं और आत्म-कल्याण के साथ-साथ लोक-कल्याण में निष्काम-भाव से सेवारत हैं, तपनिरत हैं।

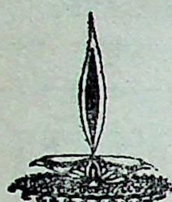
बलभद्र मुनि बड़े शान्त, सरल-स्वभावी व मितभाषी हैं। तपस्या आपकी सहचरी सी है। प्रत्येक चातुर्मास में आप लम्बी तपस्या करते हैं। इस समय आप जयपुर में चौड़ा रास्ता स्थित लाल भवन में वर्षावास कर रहे हैं। आपकी ६१ की तपस्या २३ सितम्बर, ९१ को पूर्ण हुई है। इस सुदीर्घ तपस्या-काल में आप प्रशान्त-भाव से अपने जप-तप में लीन रहे। पूरी जागरूकता, अप्रमत्तता, नियमित धर्मचर्या में कोई बाधा नहीं, किसी प्रकार की व्याकुलता नहीं। दिन में सोते नहीं—सतत स्वाध्याय-ध्यान में लीन। जो भी दर्शनार्थी आता उसे तप-त्याग की प्रेरणा देते और फिर जप-तप में निरत।

तपस्या के प्रभाव से आप में आत्म-बल का, संकल्प-शक्ति का विकास हुआ है। विनम्रता व सहन-शक्ति ने आपको स्वावलम्बी, स्वाश्रयी बनाया है। ६१ दिन तक लगातार किसी भी रूप में आहार, फल आदि न ग्रहण कर पूर्ण निराहार रहने पर भी आप कमजोरी महसूस नहीं करते। शरीर की मालिश आदि नहीं करते, न वस्त्रों की सार-सम्भाल आदि में दूसरों से सहायता लेते हैं। प्रवचन-सभा में घण्टों बिना सहारा लिए पालथी मारकर बैठे रहते हैं।

विगत १८ वर्षों में आप राजस्थान, मध्य-प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र व उड़ीसा के क्षेत्रों में पैदल नंगे पाँव विचरण करते रहे हैं। तपस्या का क्रम बराबर बना रहता है। रतलाम वर्षावास में आपने ३० व ५० की, इन्दौर में ५९ व ३० की, कालियास में ५३ व २५ की, कानोड़ में ५२ व २५ की, हथियाना में ५२ व २९ की, चित्तौड़ में ५२ व १९ की निराहार तपस्या कर आपने क्षमा, सहिष्णुता, इन्द्रिय-जय व मनोनिग्रह का अनूठा आदर्श उपस्थित किया है। वर्तमान में बढ़ती हुई भोगलिप्सा और उपभोक्तावादी संस्कृति के खिलाफ आपका आदर्श तप:पूत जीवन, आत्म-जागृति व त्याग-मार्ग का दिशा-निर्देश करता है। ऐसे महान् तपस्वी सन्त को सादर नमन।

□

समीक्षार्थ पुस्तक की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है ।



साहित्य-समीक्षा

☐ डॉ० नरेन्द्र भानावत

१. **भारतीय श्रमण संस्कृति :**—जवाहिरलाल जैन, प्र० ग्रन्थभारती २३२३, घी वालों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर, पृष्ठ १२०, मू० ११०.०० रु० ।

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद् की शोध-योजना के अन्तर्गत प्रकाशित इस पुस्तक के १७ अध्यायों में सुप्रसिद्ध चिन्तक एवं श्रमण संस्कृति के मर्मज्ञ विद्वान् श्री जवाहिरलाल जैन ने श्रमण संस्कृति के स्वरूप एवं विस्तार पर अपना मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया है । श्री जैन की मान्यता है कि श्रमण संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है और भारत में ही नहीं, एशिया, यूरोप, अफ्रीका, अमेरिका आदि देशों में भी इसका व्यापक प्रचार-प्रसार रहा है जिसके संकेत इन देशों की जन-जातियों में आज भी देखने को मिलते हैं । श्री जैन ने पाँच प्रकार के श्रमणों—निर्ग्रन्थ, शाक्य, आजीवक, तापस और गैरिक का उल्लेख कर यह मत व्यक्त किया है कि अन्तिम दो प्रकार के श्रमण वैदिक श्रमण संस्कृति में समाहित हो गये हैं । श्री जैन ने इस अध्ययन में जैन, बौद्ध, आजीवक एवं वैदिक परम्परा के प्रमुख श्रमणों का परिचय देते हुए श्रमण जैन धर्म के आचार-विचार, साहित्य व कला पर संक्षेप में प्रकाश डाला है । जैन परम्परा में मान्य काल-गणना का उल्लेख करते हुए उसकी बुद्धि-संगत विचारणा कर यह निरूपित किया है कि प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का समय ई० पूर्व छः हजार वर्ष माना जा सकता है । कई स्थलों पर श्री जैन के अपने निजी निष्कर्ष हैं जिनमें विचार-वैभिन्य हो सकता है । यह पुस्तक श्रमण संस्कृति के व्यापक और गहन अध्ययन-अनुसंधान की नई सम्भावनाओं के द्वार खोलती है और शोधार्थियों को दिशा-निर्देश देती है ।

२. **खरतरगच्छ दीक्षा नन्दी सूची :** –सं० भँवरलाल नाहटा, म० विनय-सागर, प्र० प्राकृत भारती अकादमी, ३८२६ यती श्यामलालजी का उपासरा,

मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जयपुर एवं श्री जैन श्वे० पंचायती मन्दिर, बड़ा बाजार, कलकत्ता–७, पृ० २५०, मू० ५०.०० रु० ।

जैन आचार्यों, मुनियों और साध्वियों की मानव-संस्कृति को सर्वजन-हितकारी विशिष्ट देन रही है । भगवान महावीर के बाद भी जिन-शासन की यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से आज तक चली आ रही है । काल-प्रवाह के साथ जैन श्रमण-परम्परा में कई सम्प्रदाय, गण, गच्छ, अस्तित्व में आये जिनका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है । इतिहास-लेखन की हमारे यहां व्यवस्थित परम्परा न होने से तथा विदेशी आक्रान्ताओं, महामारी व दुर्भिक्ष के कारण भी श्रमण-श्रमणियों का पूरा लेखा-जोखा आज उपलब्ध नहीं है । जैन परम्परा में खरतरगच्छ का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है । इस गच्छ के आचार्यों और मुनियों द्वारा अन्य लोक-कल्याणकारी कार्यों के साथ-साथ विपुल साहित्य रचा गया है । इस कृति में विद्वान् सम्पादकों ने सम्वत् १७०७ से खरतरगच्छ की दो शाखाओं की दीक्षा नन्दी सूची प्रकाशित की है, जिसके अध्ययन से दीक्षार्थी के मूल नाम, दीक्ष-गुरु, दीक्षा-काल, दीक्षा-स्थल, गच्छ-शाखा आदि की प्रामाणिक जानकारी मिलती है । नामान्त पद को नन्दी कहा जाता है, यथा विमल, विजय सागर सेन, चन्द्र, लाल, मल्ल आदि । श्री नाहटाजी ने अपनी विद्वतापूर्ण भूमिका में इस पर अच्छा प्रकाश डाला है । यह पुस्तक एक प्रकार का ऐतिहासिक दस्तावेज है और है मध्यकालीन इतिहास-लेखन में एक उपयोगी और प्रामाणिक स्रोत । अन्य गण, गच्छों और सम्प्रदायों की भी ऐसी सूचियाँ प्रकाशित की जानी चाहिए ।

३. **जीवन विज्ञान (शिक्षा का नया आयाम)** :—युवाचार्य महाप्रज्ञ, प्र० तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं, पृ० ११६ मू० १३.०० रु० ।

आचार्य श्री तुलसी के मार्ग-दर्शन में शिक्षा के क्षेत्र में जीवन विज्ञान का एक नया प्रयोग किया जा रहा है । वर्तमान शिक्षा आजीविका प्रधान है और इसी परिप्रेक्ष्य में जीव-जगत् का अध्ययन-अध्यापन किया जाता है । पर जिस मानव-जीवन को दुर्लभ कहा गया है, उस जीवन को समझने और उसको सार्थक बनाने की विधि का आज की तथाकथित शिक्षा-पद्धति में अभाव है । इस पुस्तक में धर्म-दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् और मौलिक चिन्तक युवाचार्य महाप्रज्ञ ने यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य में विकास की तीन मूल वृत्तियाँ उपलब्ध हैं—जिज्ञासा, बुभूषा और चिकीर्षा अर्थात् मनुष्य बनना चाहता है, कुछ होना चाहता है और कुछ करना चाहता है । शिक्षा के चार आयाम

हैं—शारीरिक विकास, मानसिक विकास, बौद्धिक विकास और भावनात्मक विकास। आज की शिक्षा में शारीरिक और बौद्धिक विकास पर तो बल है पर मानसिक और भावात्मक विकास उपेक्षित है। परिणामस्वरूप जीवन और समाज में असन्तुलन बना हुआ है। सन्तुलित एवं सम्यक् जीवन विकास के लिए शरीर, श्वास, वाणी और मन के प्रति सजगता जरूरी है। इसके लिए प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा, कायोत्सर्ग और जागरूकता की प्रक्रिया को शिक्षा में समाविष्ट करना आवश्यक है। इस पुस्तक में शिक्षा की विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए स्वतन्त्र व्यक्तित्व एवं स्वस्थ समाज-रचना में नियामक जीवन-विज्ञान के स्वरूप और उसकी प्रक्रिया पर मौलिक विचार प्रस्तुत किए गए हैं जो बड़े उपयोगी, प्रेरणादायक और मार्ग-दर्शक हैं।

सूचना

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक संघ का प्रथम अधिवेशन

आपको सूचित करते हुए अतीव प्रसन्नता है कि अ० भा० श्री जैन रत्न युवक संघ का प्रथम अधिवेशन दि० २१ नवम्बर, १९९१ को मध्याह्न १ बजे से ५ बजे तक टाउन हॉल, जोधपुर में आयोजन करने का निश्चय किया गया है।

अधिवेशन में आगामी तीन वर्ष के लिए भावी कार्यक्रम की रूपरेखा तय की जायेगी एवं प्रतिनिधिगण द्वारा तीन वर्ष के लिए अ० भा० युवा अध्यक्ष एवं अन्य पदाधिकारियों का चयन किया जायेगा। आप स्थानीय युवकों की बैठक आयोजित कर आपकी शाखा द्वारा अनुमोदित कार्य योजना भिजवावें ताकि प्रतिनिधि सभा के समक्ष इसे प्रस्तुत किया जा सके। पदाधिकारीगण के बावत आप जो भी नाम प्रस्तुत करना चाहें, भिजवावें।

नोट :—संघ के विधान के अनुसार १५ वर्ष से ४० वर्ष तक की आयु वाले युवक संघ के सदस्य बन सकते हैं।

निवेदक :

ज्ञानेन्द्र बाफणा
परामर्शदाता

गोपाल अबाणी
परामर्शदाता

चंचल सिंघवी
सहमंत्री अ भा. जै. रत्न हि. श्रावक संघ

अखिलेश जैन
कार्यकारी सचिव

चन्द्रेश भण्डारी
शाखा संयोजक

राजेश बोहरा
शाखा संयोजक

समाज-दर्शन

अभिनन्दन और बधाई

बेंगलोर—यहाँ युवाचार्य डॉ. शिवमुनिजी के सान्निध्य में श्रीमती विमला देवी कांकरिया ने ३३ दिन के निर्जल उपवास सहित ७१ दिन की उग्र तपस्या सम्पन्न कर विश्व कीर्तिमान स्थापित किया। संघ की ओर से ३६ उपवास एवं ३१ उपवास की बोली लेकर श्री नेमीचन्दजी गादिया एवं श्रीमती पानकंवर बाई ने तपस्विनी बहिन के प्रति बहुमान व्यक्त किया। श्रमण संघ के प्रथम पट्टधर आचार्य श्री आत्मारामजी म. की ११०वीं जन्म जयन्ती एवं पंजाब प्रवर्तक पूज्य श्री शुक्लचन्द्रजी म. के ९७वें जन्म-दिवस पर पाँच हजार सामूहिक आयम्बिल किये गये व श्रीमती भाग्यवती बाई पगारिया ने ६१ उपवास के प्रत्याख्यान भी ग्रहण किये। २० से अधिक मासखमण भी हुए। तपस्वी भाई-बहिनों को हार्दिक बधाई।

कोटा—यहाँ विराजित श्री नवरत्नमुनिजी, ऋषभमुनिजी, राजेन्द्रमुनिजी की सत्प्रेरणा से १५-९-९१ को श्री घनश्यामजी जैन की ५५ उपवास की तपस्या का पूर महोत्सव तप-त्यागपूर्वक सम्पन्न हुआ। विभिन्न संस्थाओं की ओर से तपस्वी श्री जैन का अभिनन्दन किया गया। गत वर्ष भी श्री जैन ने ४१ की तपस्या की थी। हार्दिक बधाई !

उदयपुर—श्रीमती स्नेहलता सहलोत को सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर ने "नरेन्द्र प्रभसूरिकृत 'अलंकार महोदधि' का अध्ययन" शोध प्रबन्ध पर पी-एच. डी. की उपाधि प्रदान की है। श्रीमती सहलोत ने यह कार्य संस्कृत प्रोफेसर डॉ. मूलचन्द पाठक के निर्देशन में पूर्ण किया था। हार्दिक बधाई !

खैरोदा—स्थानीय जैन संघ ने इन्दौर के श्री शांतिलालजी सुराणा का नैतिक शिक्षा और स्वाध्याय के क्षेत्र में विशिष्ट सेवाओं के उपलक्ष्य में 'समाज रत्न' पद से विभूषित किया है। श्री सुराणा ने नैतिक जीवन ग्रंथमाला की बोध कथाओं से सम्बन्धित लगभग ४० पुस्तकों का सम्पादन किया है।

रायपुर (म. प्र.)—यहाँ विदुषी महासती श्री इन्द्रकंवरजी म. आदि ठाणा १५ के सान्निध्य में छत्तीसगढ़ स्तरोय स्वाध्यायी अभिनन्दन समारोह आयोजित किया गया। इसमें छत्तीसगढ़ क्षेत्र में स्वाध्याय संघ, जोधपुर,

सुधर्म प्रचार मण्डल एवं समता प्रचार संघ आदि की ओर से छत्तीसगढ़ व उड़ीसा क्षेत्र में पर्युषण पर्वाराधना के लिए सेवा देने गये स्वाध्यायियों का अभिनन्दन किया गया।

बम्बई—श्री पंजाब जैन भ्रातृ सभा, खार द्वारा पं. र. श्री प्रकाशमुनिजी के सान्निध्य में प्रमुख समाजसेवी एवं कर्मठ कार्यकर्ता श्री जोगिन्दरलाल अमरनाथ जैन गदिया (अम्बाला वालों का) उनकी धार्मिक, सामाजिक सेवाओं के लिए बहुमान किया गया।

मद्रास—भारतीय जीव-जन्तु कल्याण बोर्ड (पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय) भारत सरकार के अध्यक्ष श्री पन्नालालजी मून्धड़ा ने "जिनवाणी" के सम्पादक डॉ. नरेन्द्र भानावत, जयपुर को बोर्ड का ऑनरेरी जीव-जन्तु कल्याण अधिकारी नियुक्त किया है।

जोधपुर में विशेष धर्म-जागृति

जोधपुर—आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के सुशिष्य आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म. सा., उपाध्याय श्री मानचन्द्रजी म. सा. आदि ठाणा १० तथा साध्वी प्रमुखा प्रवर्तिनी महासती श्री बदनकंवरजी म. सा., उपप्रवर्तिनी महासती श्री लाडकंवरजी म. सा. आदि ठाणा ९ जैन स्थानक घोड़ों का चौक में सुख शांतिपूर्वक विराजमान हैं। जोधपुर संघ की अत्यधिक विनती पर इस बार पर्वाधिराज पर्युषण पर्व की मंगल आराधना घोड़ों के चौक स्थानक में आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म. सा. के, महावीर भवन, सरदारपुरा में उपाध्याय श्री मानचन्द्रजी म. सा. के तथा पावटा स्थित स्थानक में महासती श्री सौभाग्यवती म. सा. आदि ठाणा के सान्निध्य में तप-त्यागपूर्वक सम्पन्न हुई। तीनों ही स्थानों पर प्रार्थना, प्रवचन, प्रतिक्रमण आदि कार्यक्रमों के साथ दया, संवर, पौषध में अच्छी उपस्थिति बनी रही। दो नवरंगी तथा एक ग्यारह रंगी, पाँच मासखमण के अलावा २१, १७, १६, ११ आदि की अनेक तपस्याएँ हुईं। २०० से अधिक अठाई तप हुए।

संघ एवं मण्डल की कार्यकारिणी की बैठक

जोधपुर—१९ सितम्बर को अ. भा. जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ एवं सम्यक्ज्ञान प्रचारक मण्डल की कार्यकारिणी समिति की बैठक संघ-अध्यक्ष श्री मोफतराजजी मुणोत एवं मण्डल-अध्यक्ष डॉ. सम्पतसिंहजी भाण्डावत की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई, जिसमें स्वाध्याय, साहित्य, शिक्षा-दीक्षा, संगठन,

जीव-दया, स्वधर्मी वात्सल्य जैसी प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में उपयोगी विचार-विमर्श हुआ। २८ अक्टूबर से जैन स्थानक, घोड़ों का चौक, जोधपुर में स्वाध्यायी शिविर आयोजित किया जा रहा है।

संक्षिप्त समाचार

दिल्ली—श्री कमल मुनि 'कमलेश' के सान्निध्य में श्री मेहताबरायजी जैन के ३१ उपवास एवं तपस्वी श्री गोपीराजजी जैन के निरन्तर तपाराधना के उपलक्ष्य में एक सितम्बर को तपोत्सव अहिंसा दिवस के रूप में मनाया गया।

अहमदाबाद—आचार्य श्री नानेश के विद्वान् शिष्य श्री प्रेमचन्दजी म., जितेशकुमारजी म. सा. आदि के सान्निध्य में पंचरंगियों, नवरंगियों के साथ विविध तप-त्याग एवं प्रत्याख्यान अष्ट दिवसीय जाप के साथ सम्पन्न हुए। मुनि श्री के प्रवचन से जैन-जैनेतर समाज में विशेष प्रेरणा जगी है।

लुधियाना—विदुषी साध्वी डॉ. मुक्तिप्रभाजी, डॉ. दिव्यप्रभाजी, डॉ. अनुपभा श्रीजी आदि के सान्निध्य में आत्म जन्म-जयन्ती महोत्सव विशेष आत्म-जागरण एवं तप-त्याग के साथ मनाया गया। पंच-परमेष्ठि मंत्र की संगीतमय प्रस्तुति प्रतियोगिता प्रभावक रही।

पीपल्याकलां—आचार्य श्री नानेश के सान्निध्य में श्री समता जैन शिक्षण संस्थान के तत्त्वावधान में ८, ९ व १० नवम्बर, ९१ को जैन स्नातक शिक्षण शिविर का आयोजन किया जा रहा है, जिसमें बी. ए., बी, कॉम., बी. एस-सी. व उससे अधिक पढ़े-लिखे, युवक-युवती भाग ले सकेंगे। चयनित शिविरार्थियों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में जैन तत्त्वज्ञान का विशेष प्रशिक्षण दिया जायेगा। इच्छुक स्नातक सम्पर्क करें—श्री पंकज शाह, पी. जी. फोइल्स, पीपल्याकलां–३०६ ३०७ (पाली–राजस्थान)।

जयपुर—मोहनोत भाईपा, जयपुर शाखा की ओर से क्षमापना दिवस समारोह २२ सितम्बर को संरक्षक श्री नारायणदासजी मोहनोत (मेहता) के आतिथेय में सम्पन्न हुआ। इसकी अध्यक्षता डॉ. नरेन्द्र भानावत ने की। श्री ऋषभराजजी मोहनोत, महामंत्री अ. भा. मोहनोत महासभा मुख्य अतिथि थे। श्री उगमराजजी मोहनोत ने भाईपा की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला।

सुकमा—यहाँ श्री महावीर जैन स्वाध्याय शाला का उद्घाटन श्री बंशीलालजी नाहटा के मुख्य आतिथ्य में किया गया। अध्यक्षता श्री

पारसमलजी बोथरा ने की। संस्था के अध्येक्ष श्री विजय नाहटा ने तपस्वियों का स्वागत किया।

वेंपेरी, मद्रास—उपाध्याय श्री केवलमुनिजी के सान्निध्य में ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना तथा दानशील तप भावना की प्रभावना विशेष रूप से हो रही है। उपाध्याय श्री की प्रेरणा से भगवान् महावीर जैन महिला कॉलेज की योजना को मूर्त्त रूप देने के साथ-साथ मानव राहत व जीवदया के लिए अच्छी राशि एकत्र की गई है।

मद्रास—२७ से २६ अगस्त को आयोजित १६वें अ. भा. नशाबन्दी सम्मेलन में समाजसेवी साहित्यकार श्री माणकचन्दजी नाहर ने भाग लिया व नशाबन्दी की क्रियान्विति के लिए पहल की। श्री नाहर पश्चिमी बंगाल के बरकपुर में आयोजित ४४वें राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा सम्मेलन में भी आमन्त्रित किये गये हैं।

जयपुर—आचार्य श्री विजयइन्द्रदिन्न सूरीश्वरजी म. सा. की निश्रा में २० सितम्बर को आत्मानन्द सभा भवन से शंखेश्वरम् मालवीय नगर तक चतुर्विध संघ की पदयात्रा श्री हीराचन्दजी बैद के संयोजन में आयोजित की गई, जिसमें लगभग ७०० भाई-बहिनों ने भाग लिया। राजस्थान के गृह विधि राज्यमंत्री श्री शांतिलालजी चपलोत की अध्यक्षता में 'क्षमापना दिवस' साधर्मी वात्सल्य समारोह के साथ सम्पन्न हुआ।

मद्रास—श्री दक्षिण भारत जैन स्वाध्याय संघ की ओर से पर्युषण पर्वाराधना के लिए सन्त-सतियों से वंचित १८ क्षेत्रों में ४७ स्वाध्यायियों को भेजा गया। स्वाध्यायियों की प्रेरणा से इन क्षेत्रों में विशेष धर्माराधना हुई।

बेंगलोर—आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. की प्रेरणा से स्थापित कर्नाटक जैन स्वाध्याय संघ की ओर से पर्युषण पर्वाराधना के लिए १३ क्षेत्रों में ३७ स्वाध्यायी भेजे गये। इनकी प्रेरणा से विशेष तप-त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

पचपहाड़—अहिंसा प्रचार समिति की प्रथम वर्षगांठ पर 'अमन और अहिंसा का पैगाम' अहिंसा प्रेमियों में वितरित किया गया। इसकी अपील पर कोटा व मनावर में अहिंसा प्रचार समितियाँ गठित की गई हैं।

टोंक—अनाथ, अपंग, असहाय, दीन-दुःखी, संकट-ग्रस्त, भाई-बहिन स्थानीय संघ के अध्यक्ष अथवा मंत्री से प्रमाणित कराकर सहायता के लिए अपने आवेदन-पत्र पूर्ण विवरण सहित इस पते पर भेजें—मंत्री, जीवदया मण्डल ट्रस्ट, संघपुरा, टोंक (राज.)।

जोधपुर—आवासीय योजना में समाज के ३८० मकानों की एक बस्ती महावीरपुर नाम से बसाई जा रही है, जिसमें स्कूल, स्थानक, मंदिर, अस्पताल आदि बनवाने के लिए संस्था द्वारा जमीन फ्री दी जायेगी। यदि कोई दानदाता भवन बनाने के लिए धन देकर अथवा भवन बनाकर सहयोग देना चाहें तो इस पते पर सम्पर्क करें—पुखराज गांग, महासचिव, ओसवाल महासभा, ९४७, सरदारपुरा, १०-डी रोड, जोधपुर–३४२ ००३।

सुकमा—महावीर जैन स्वाध्याय शाला के चुनाव में श्री पारसमल बोथरा एवं श्री बालचन्द बाफना, संरक्षक, श्री विजयकुमार नाहटा अध्यक्ष, श्री कैलाश जैन उपाध्यक्ष, श्री अशोक बाफना मंत्री, श्री अजय बाफना कोषाध्यक्ष एवं श्री कमलेश नाहटा प्रचारमंत्री चुने गये।

अहमदाबाद—श्री राजस्थान स्था. जैन संघ के चुनाव में श्री मिश्रीमल हुंडिया, अध्यक्ष, श्री मोहनलाल बालिया एवं श्री पूर्णराज बोहरा, उपाध्यक्ष, श्री दौलतराज बांठिया मंत्री, श्री रामलाल डेलेडिया व श्री मोतीलाल मालू, सहमंत्री व श्री मिट्ठालाल बाघमार, कोषाध्यक्ष चुने गये।

स्वाध्यायियों के लिए सुनहरा अवसर

अनुयोग प्रवर्तक पं. रत्न मुनि श्री कन्हैयालालजी म. 'कमल' द्वारा सम्पादित एवं आगम अनुयोग ट्रस्ट अहमदाबाद से प्रकाशित 'समवायांग सूत्र' (मूलपाठ) शुद्ध व सुन्दर संस्करण, दुरंगी छपाई सरल हिन्दी शीर्षकों से युक्त गुटका साइज में प्रकाशित हुआ है। इसका मूल्य २१) रु० है। यह ग्रंथ उदारदाताओं की ओर से स्वाध्याय प्रेमियों, मुनिराजों, महासतियाँजी व पुस्तकालयों को भेंट भेजा जा रहा है। इच्छुक सज्जन दीपावली तक २) रुपये के डाक टिकट भेजकर निम्न पते से प्राप्त कर सकते हैं—डॉ. सोहनलालजी संचेती, केसरबाड़ी, चांदी हॉल, जोधपुर (राज.) ३४२ ००१।

शोक-श्रद्धांजलि

सवाईमाधोपुर—प्रमुख समाजसेवी श्री बजरंगलालजी जैन सर्राफ की धर्मपत्नी श्रीमती सूरजदेवी का १९ अगस्त को ६१ वर्ष की आयु में आकस्मिक निधन हो गया। आप धर्मपरायण, सरल स्वभावी महिला थीं। आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के प्रति आपकी अगाध श्रद्धा-भक्ति थी।

मद्रास—साथिन निवासी श्री चम्पालालजी कांकरिया का ३ सितम्बर को ६४ वर्ष की आयु में कलकत्ता से ५० कि. मी. दूर ट्रेन में हृदयगति रुक जाने से आकस्मिक निधन हो गया। आप वीरायतन उपाध्याय श्री अमरमुनिजी के दर्शनार्थ जा रहे थे। आप धार्मिक वृत्ति के सरल स्वभावी व्यक्ति थे। आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के प्रति आपकी अगाध श्रद्धाभक्ति थी। आचार्य श्री के पीपाड़ चातुर्मास में आपने उनसे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया था।



कोसाणा—श्री मघराज धर्मचन्द नाहर के बहनोई श्री मिश्रीमलजी सेठिया का हृदयगति रुक जाने से भादवा बदी चौथ की आकस्मिक निधन हो गया। आप धर्मपरायण व्यक्ति थे।

जयपुर—स्व. श्री सरदारमलजी जैन की धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला का २८ वर्ष की अल्पायु में २८ सितम्बर को दुखद निधन हो गया। आप सुशिक्षित धर्मपरायण महिला थीं। खादी बोर्ड में कार्यरत होने के साथ-साथ राज. वि. वि. के हिन्दी विभाग से आप पी-एच. डी. कर रही थीं। आपने इस वर्षावास में २१ की तपस्या की थी।

कानोड़—यहाँ के प्रसिद्ध वकील श्री जीतमलजी सहलोत का २८ सितम्बर को आकस्मिक निधन हो गया। आप उत्साही सामाजिक कार्यकर्ता थे।

जोधपुर—यहाँ के प्रतिष्ठित श्रावक श्री सुमेरमलजी टाटिया का २ अक्टूबर को दुखद निधन हो गया। आप गुरुभक्त एवं धर्मप्रेमी श्रावक थे।

जोधपुर—स्वर्गीय श्री विजयराजजी कांकरिया की धर्मपत्नी श्रीमती मुन्नीदेवी का एक अक्टूबर को दुखद निधन हो गया। आप सरल स्वभावी धर्मनिष्ठ सुश्राविका थीं।

कुकड़ेश्वर—यहाँ के प्रतिष्ठित श्रावक श्री बापूलालजी जोधावत का ८५ वर्ष की आयु में १५ सितम्बर को निधन हो गया। आप दयालु व मिलनसार थे।

अलवर—श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ के पूर्व कोषाध्यक्ष एवं प्रमुख समाजसेवी श्री चौथमलजी सचेती का १५ सितम्बर को ७२ वर्ष की आयु में निधन हो गया। आप सरल, उदार एवं करुण हृदय थे। आपकी इच्छानुसार मृत्यु-उपरान्त आपके दोनों नेत्र दो अन्ध व्यक्तियों के प्रत्यारोपित कर दिये गये। पांच माह पूर्व आपने अपनी पत्नी श्रीमती पद्मादेवी के निधन होने पर उनकी स्मृति में ३५०००) रु० से महावीर भवन परिसर में एक कमरा बनवाकर संघ को भेंट किया था। आपके सुपुत्रों श्री अनिलकुमारजी एवं अजयकुमारजी ने आपकी स्मृति में ४१०००) रु० की राशि से एक धर्मार्थ ट्रस्ट की स्थापना की है।

बैंगलोर—यहाँ के प्रमुख श्रावक श्री चम्पालालजी भंवरलालजी गोटावत के युवा पुत्र श्री मंगलचन्दजी का २९ सितम्बर को दुर्घटना ग्रस्त हो दु:खद निधन हो गया।

महासती श्री शशिप्रभाजी म. सा. का स्वर्गवास

जोधपुर—आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म. सा. की आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री शशिप्रभाजी का २३ वर्ष की आयु में १० अक्टूबर को स्वर्गवास हो गया। आपका जन्म श्रीमती सुशीलादेवी जैन की कोख से ग्राम–सहाड़ी (जिला–अलवर, राज.) में हुआ था। आपके पिता का नाम श्रीमान् स्वरूपचन्दजी जैन था। आपका सांसारिक नाम सुनीता जैन था। आपकी भागवती दीक्षा दिनांक ३१ जनवरी, १९८५ में जोधपुर में आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. की निश्रा में सम्पन्न हुई। दीक्षा के बाद हर वर्ष आप कम-से-कम एक तेला करती थीं। आपने नन्दीसूत्र, दशवैकालिक सूत्र और उत्तराध्ययन सूत्र का अध्ययन किया। आपको आगम साहित्य का बहुत अच्छा अध्ययन था। आपको काफी थोकड़े भी याद थे। आप प्रतिदिन आगम साहित्य का वाचन करती थीं।

दीक्षा के बाद आपके चातुर्मास इस प्रकार हुए :—

१. सम्वत् २०४२, पाली, २. सम्वत् २०४३, टांटोटी,
३. सम्वत् २०४४, किशनगढ़, ४. सम्वत् २०४५, सवाईमाधोपुर,
५. सम्वत् २०४६, दूनी, ६. सम्वत् २०४७, भोपालगढ़,
७. सम्वत् २०४८, जोधपुर

आप करीब डेढ़ वर्ष से असाध्य रोग से पीड़ित थीं। शरीर में अत्यधिक वेदना होते हुए भी आप बड़ी शान्त रहती थीं और हर समय धर्मध्यान में लीन रहती थीं।

आप बड़ी ही सेवाभावी, सहनशील, सरल, स्वभावी थीं।

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर और सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर की ओर से क्रमशः जोधपुर और जयपुर में स्मृति सभा का आयोजन कर आपका गुणानुवाद किया गया।

जयपुर—प्रतिष्ठित श्रावक श्री आर. एन. भण्डारी का हृदय गति रुक जाने से ७२ वर्ष की आयु में १४ अक्टूबर को आकस्मिक निधन हो गया। आप रोजगार विभाग के निदेशक पद से सेवा निवृत्त हुए थे। आपकी सामाजिक सेवा-कार्यों में विशेष रुचि थी। आप सिंचाई सचिव श्री पी. एन. भण्डारी के पिताश्री थे। आप अपने पीछे भरा-पूरा परिवार छोड़ गये हैं।

जयपुर—यहाँ के प्रतिष्ठित श्रावक श्री जुगलसिंहजी बैद (भूतपूर्व जागीरदार, बीकानेर निवासी) का ७९ वर्ष की आयु में दिनांक १५ सितम्बर, १९९१ को स्वर्गवास हो गया। आप पिछले २५ वर्ष से जयपुर में निवास करते थे। आप बीकानेर राजघराने के प्रमुख स्व. श्री अनूपसिंहजी बैद (जागीरदार) प्रतिष्ठित बैद खानदान के सुपुत्र व स्व. शाह श्री लक्ष्मीमलजी लोढ़ा प्रतिष्ठित नागौर निवासी के दामाद थे।



आपकी आचार्य श्री नानालाल जी म. सा. व आचार्य श्री हस्तीमल जी म. सा. के प्रति अटूट आस्था थी। आप धर्मनिष्ठ, कर्तव्यपरायण, कर्मठ सेवाभावी एवं स्वाभिमानी व्यक्तित्व के धनी थे। आप यहाँ अभी फिल्म व्यवसाय का कार्य करते थे।

उपर्युक्त दिवंगत आत्माओं के प्रति हम सम्यक्ज्ञान प्रचारक मण्डल, 'जिनवाणी' एवं अ. भा. जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ की ओर से हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए शोकविह्वल परिवारजनों के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं।

—सम्पादक

सूचना

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर की कार्यकारिणी की मीटिंग और आम सभा का आयोजन बुधवार, दिनांक २० नवम्बर, १९९१ को संघ के कार्यालय, घोड़ों का चौक, जोधपुर में होगा। कार्यकारिणी की मीटिंग दोपहर को २.०० बजे से ३.०० बजे तक और आम सभा का आयोजन ३.०० बजे से ४.०० बजे तक होगा। सभी सदस्यों से नम्र निवेदन है कि उपर्युक्त मीटिंग में पधारने की कृपा करावें और अपने अमूल्य विचारों से लाभान्वित करावें।

मोफतराज मुणोत
अध्यक्ष

जगदीशमल कुम्भट
महामंत्री

अ. भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर

श्री विजयमलसा कुम्भट

धर्मानुरागी, प्रमुख समाजसेवी व प्रबुद्ध पत्रकार
जिन्होंने जीने की लम्बाई में नहीं
जीने की सच्चाई में विश्वास किया
उनकी ३५वीं पुण्य तिथि ९ सितम्बर, १९९१
के अवसर पर
हम उन्हें कोटि-कोटि प्रणाम करते हैं।



विनम्र श्रद्धांजलि :
अर्जुनमल, राजेन्द्रमल, सुरेन्द्रमल व कुम्भट परिवार

संस्थान :
श्री विजयमल कुम्भट चैरिटेबल ट्रस्ट, जोधपुर
क्षितिज रोड लाइन्स, उदयपुर
शील इन्वेस्टमेंट कन्सलटेन्सी, बम्बई
विजय ट्रेडिंग कॉरपोरेशन, बम्बई • संदेश, उदयपुर

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

बापू बाजार, जयपुर

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर के कार्यकारिणी के सदस्यों की मीटिंग और साधारण सभा का आयोजन बुधवार, दिनांक २० नवम्बर, १९९१ को रेनबो हाउस, पावटा जोधपुर में होगा। कार्यकारिणी की मीटिंग शाम को ७.०० बजे से ८.०० बजे और साधारण सभा ८.०० बजे से ९.०० बजे होगी। सभी सदस्यों से नम्र निवेदन है कि उपर्युक्त मीटिंग में पधारने की कृपा करावें और अपने अमूल्य विचारों से लाभान्वित करावें।

विचारणीय बिन्दु

१. गत मीटिंग की कार्यवाही की पुष्टि।

२. वर्ष १९९०–९१ (१ अप्रेल, १९९० से ३१ मार्च, १९९१) का आय-व्यय का हिसाब एवं वर्ष १९९१–९२ (१.४.९१ से ३१.३.९२) का प्रस्तावित बजट।

३. मण्डल से प्रकाशित साहित्य की प्रगति।

४. मण्डल को अ० भा० श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर से अनुदान बाबत।

५. 'जिनवाणी' पत्रिका की प्रगति।

६. स्वाध्याय संघ की प्रगति।

७. अध्यक्ष महोदय की आज्ञा से अन्य विषयों पर विचार।

डॉ० सम्पतसिंह भाण्डावत
अध्यक्ष

चैतन्य ढढढा
मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, बापू बाजार, जयपुर

साभार प्राप्ति स्वीकार

२५१) रु० "जिनवाणी" की आजीवन सदस्यता हेतु प्रत्येक

२८६८. श्री जी. हीरालालजी जैन, बैंगलोर
२८६९. श्री पदमचन्दजी सुरेशचन्दजी बाफणा, भोपालगढ़
२८७०. श्री मांगीलालजी घीसूलालजी, अहमदाबाद
२८७१. श्री हरकचन्दजी मेवारामजी बाँठिया, अहमदाबाद
२८७२. श्री दिलीप गोलेच्छा, जोधपुर
२८७३. श्री प्रेम गोलेच्छा, जोधपुर
२८७४. श्रीमती प्रफुल्लकुमारी भण्डारी एवं कवि भण्डारी, जोधपुर
२८७५. श्री मोहनराजजी सिंघी, अहमदाबाद
२८७६. श्री मदन सचेती, जोधपुर
२८७७. श्री आर. सी. सिंघवी, जोधपुर
२८७८. श्री मोहनलालजी सांड, जोधपुर
२८७९. श्रीमती विमला जैन, जोधपुर
२८८०. श्री मोहनमलजी उम्मेदमलजी लोढ़ा, जोधपुर
२८८१. श्री प्रेमचन्दजी सेठिया, जोधपुर
२८८२. श्री विमलराजजी मेहता, जोधपुर
२८८३. श्री चांदमलजी चौपड़ा, जोधपुर
२८८४. श्री राजेन्द्रचन्दजी सिंघवी, सिद्धी (एम. पी.)
२८८५. श्री ईश्वरचन्दजी सिंघवी, अलवर
२८८६. श्री महेशमलजी भण्डारी, जोधपुर
२८८७. श्री एम. एम. लोढ़ा, जोधपुर
२८८८. श्री चौपड़ा ग्वार गम इन्डस्ट्रीज, जोधपुर
२८८९. श्री मांगीलालजी रांका, जोधपुर
२८९०. श्री आदित्य सिद्धार्थ गांग, जोधपुर
२८९१. श्री माणकचन्दजी बोहरा, जोधपुर

२८९२. श्री पारसमलजी कांकरिया, जोधपुर
२८९३. श्री जसराजजी जैन, जोधपुर
२८९४. श्री सोहनलालजी रेड़, जोधपुर
२८९५. श्री पुष्पचन्दजी सचेती, जोधपुर
२८९६. श्रीमती गेराबाई पारख, राजनांदगांव
२८९७. श्री पारसमलजी सांखला, जोधपुर
२८९८. श्री जवरीलालजी कुम्भट, जोधपुर
२८९९. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
२९००. श्री इन्दरमलजी कवाड़, जोधपुर
२९०१. श्री शीतलचन्दजी सिंघवी, जोधपुर
२९०२. श्री जतनराजजी लूँकड़, जोधपुर
२९०३. श्री नेमीचन्दजी केवलचन्दजी डाकलिया, जोधपुर
२९०४. श्री अमृतराजजी कुम्भट, जोधपुर
२९०५. श्री प्रमोदकुमारजी बोहरा, जोधपुर
२९०६. श्री शांतिलालजी बोहरा, जोधपुर
२९०७. श्री प्रकाशचन्दजी बोहरा, बिलाड़ा
२९०८. श्री पारसमलजी बुद्धराजजी बोहरा, बिलाड़ा
२९०९. श्री पी. सोहनलालजी भण्डारी, बिलाड़ा
२९१०. श्री भंवरलालजी कटारिया, बिलाड़ा
२९११. श्री मांगीलालजी तेलीड़ा, बिलाड़ा
२९१२. श्री शेषमलजी बिरदीचन्दजी बुरड़, बिलाड़ा
२९१३. श्री हरकचन्दजी जैन, शिमोगा
२९१४. श्री महेन्द्रसिंहजी ढढ्ढा, जोधपुर
२९१५. श्री नानेश पुस्तक भण्डार, अजमेर
२९१६. श्री पूरनचन्दजी बैद, जयपुर
२९१७. श्रीमती कान्ता मेहता, जोधपुर
२९१८. श्री सुभाषजी मोदी, जयपुर
२९१९. श्री मोतीलालजी एण्ड सन्स, जोधपुर
२९२०. श्री सुमनेशजी फोफलिया, जोधपुर

२९२१. श्री शशीप्रकाशजी सुराना, बैंगलोर
२९२२. श्री कैलाशमलजी पारसमलजी कुम्भट, जोधपुर
२९२३. श्री नरेन्द्रराजजी धारीवाल, उदयपुर
२९२४. श्रीमती चन्द्रा मेहता, जोधपुर
२९२५. श्री राजमलजी जैन, बम्बई
२९२६. श्रीमती आशा पटवा, जोधपुर
२९२७. श्री शांतिचन्दजी राजेशकुमारजी डागा, जयपुर
२९२८. श्री इन्दरचन्दजी मोदी, जयपुर
२९२९. श्री मनोजकुमारजी जैन, अलीगढ़ (यू. पी.)

"जिनवाणी" को सहायतार्थ भेंट

५०१) रु० श्री बुद्धराजजी कोठारी, मेड़ता सिटी
सजोड़े आजीवन शीलव्रत के प्रत्याख्यान के उपलक्ष्य में भेंट ।

१५१) रु० श्री तनसुखचन्दजी भण्डारी, चितादरी पेठ (मद्रास)
सुपौत्री कुमारी योगिता भण्डारी के तेले की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट ।

१३०) रु० श्री केशरीमलजी निहालचन्दजी जैन, आर्जेल
जीवदया के लिये भेंट ।

१११) रु० श्री पी. सी. अब्बानी, जोधपुर
पुत्री तृप्ति अब्बानी के माध्यमिक बोर्ड की सैकण्डरी परीक्षा में १६वाँ स्थान प्राप्त करने की खुशी में भेंट ।

१०१) रु० श्री अमरचन्दजी मेहता, जयपुर
श्री एवं श्रीमती अमरचन्दजी मेहता के अठाई के पारणे के उपलक्ष्य में भेंट ।

१०१) रु० श्रीमती शान्ताजी एवं प्रदीपजी मोदी, जयपुर
गृह प्रवेश के उपलक्ष्य में भेंट ।

१०१) रु० श्री चैनराजजी उगमराजजी, बिलाड़ा
अपनी माताजी श्रीमती चाँदाबाईजी के ३१ की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट ।

१०१) रु० श्रीमती छोटमलजी गांग, साबरमती
श्री छोटमलजी गांग की पुण्य स्मृति में भेंट ।

१००) रु० श्री एस. एस. जैन संघ, मद्रास
पू. उपाध्याय श्री केवलमुनिजी म. सा. आदि ठाणा ३ के चातुर्मास की खुशी में भेंट ।

५१) रु० श्री हरकचन्दजी जैन, जरखोदा
धर्मपत्नी श्रीमती कल्याणीदेवी के अठाई के पारणे के उपलक्ष्य में भेंट ।

५१) रु० श्री माणकचन्दजी प्रकाशचन्दजी लोढ़ा, नाड़सर
आचार्य श्री हीराचन्दजी म. सा. के प्रथम बार नाड़सर पधारने के उपलक्ष्य में भेंट ।

५१) रु० श्री माणकचन्दजी प्रकाशचन्दजी लोढ़ा, नाड़सर
चि. प्रकाशचन्द के तेले की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट ।

५१) रु० श्री दीपककुमारजी जैन, बिलाड़ा
श्री ज्ञानमुनिजी म. सा. के बिलाड़ा चातुर्मास की खुशी में भेंट ।

५१) रु० श्री सत्यनारायणजी सीपरिया, जयपुर
पूज्य पिताजी श्री प्रहलादरायजी सीपरिया की पुण्य स्मृति में भेंट ।

५१) रु० श्री प्रकाशमलजी बोथरा, मद्रास
आचार्य प्रवर एवं उपाध्याय प्रवर के दर्शनार्थ पधारने के उपलक्ष्य में भेंट ।

५०) रु० श्री मोहनलालजी कपूरचन्दजी जैन, बालोद
पर्युषण पर्व के उपलक्ष्य में भेंट ।

२१) रु० श्री गणपतलालजी जैन, सवाईमाधोपुर
श्री अरुणकुमारजी जैन के मौन तेले की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट ।

२१) रु० श्री जानकीलालजी मिश्रीलालजी बोहरा, भवानीमण्डी
पुत्रवधू श्रीमती शकुन्तला जैन धर्मपत्नी भंवरसिंह जैन के अठाई की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट ।

११) रु० श्री निहालचन्दजी जैन, देई
पुत्रवधू श्रीमती विमला के तेले की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट ।

११) रु० श्री कालूलालजी सालेचा, भवानीमण्डी
पर्यूषण पर्व के उपलक्ष्य में भेंट ।

११) रु० श्री कैलाशचन्दजी अशोककुमारजी बोहरा, भवानीमण्डी
पर्यूषण पर्व के उपलक्ष्य में भेंट ।

११) रु० श्री मनोजकुमारजी जैन "निर्लिप्त" अलीगढ़ (यू. पी.)
पर्यूषण पर्व के उपलक्ष्य में भेंट ।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल को भेंट

१०१) रु० श्रीमती उगमकंवरजी मोदी, जयपुर
प्रपौत्र प्रखर पुत्र श्री प्रदीपजी मोदी के जन्म के उपलक्ष्य में भेंट ।

८०) रु० श्री वर्द्धमान जैन श्वे. स्थानकवासी श्री संघ, रामगंजमण्डी
पर्यूषण पर्व के उपलक्ष्य में भेंट ।

५०१) रु० साहित्य प्रकाशन की आजीवन सदस्यता हेतु

४०८. नानेश पुस्तक भण्डार, अजमेर

जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि

☐ **श्री नैनमल विनयचन्द्र सुराणा**

जब धर्मराज युधिष्ठिर को हस्तिनापुर की राज्य-सभा में से दुर्गुणी व्यक्ति ढूँढ़ निकालने का कहा गया, तब उन्हें वहाँ कोई दुर्गुणी व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं हुआ, क्योंकि उन्हें प्रत्येक व्यक्ति में कोई न कोई विशेष गुण दिखाई दिया और उन्हें सभी लोग सद्गुणी ही प्रतीत हुए ।

जब दुर्योधन को सभा में से सद्गुणी व्यक्ति ढूंढ़ निकालने का कहा गया, तब उसे कोई सद्गुणी दृष्टिगोचर ही नहीं हुआ, क्योंकि उसने तो गुणवान व्यक्तियों में भी कोई-न-कोई दुर्गुण ढूंढ़ निकाला और उसे समस्त राज्य-सभा दुर्गुणी व्यक्तियों से भरी हुई ही प्रतीत हुई ।

—पुराना बस स्टैण्ड, सिरोही (राज०)

यह शरीर नौका रूप है, जीवात्मा उसका नाविक है और संसार समुद्र है । महर्षि इस देह रूपी नौका के द्वारा संसार-सागर को तैर जाते हैं ।
उत्तराध्ययन 23/73

(Regd. No. R. J. 2529
Licenced to post without prepayment. Licence No. 6)

सम्यग्ज्ञान

जीवन को सुन्दर बनाने के लिये आवश्यक है कि जीवन में सम्यग्ज्ञा ज्योति जगे । सम्यग्ज्ञान की ज्योति जगेगी तो विचारों में परिवर्तन आएगा लगेगा कि धर्म परलोक की चीज नहीं है ।

— पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी

"जिनवाणी" बापू बाजार, जयपुर (राजस्थान)

जिनवाणी



वम्बर
991

कार्तिक
२०४८

जिनवाणी

मंगल-मूल, धर्म की जननी, शाश्वत सुखदा, कल्याणी ।
द्रोह, मोह, छल, मान-मर्दिनी, फिर प्रगटी यह 'जिनवाणी' ।।



अप्पाणमेव जुज्झाहि,
किं ते जुज्झेण वज्झओ ।
अप्पणामेव अप्पाणं,
जइत्ता सुहमेहए ।।

—उत्तराध्ययन ६/३५

बाहरी स्थूल शत्रुओं के साथ युद्ध करने से क्या लाभ ? अपनी आत्मा के साथ युद्ध कर ! आत्मा को आत्मा के द्वारा जीतने वाला ही वास्तव में पूर्ण सुखी होता है ।

नवम्बर, १६६१

वीर निर्वाण सं० २५१८

कार्तिक, २०४८

वर्ष : ४८ • अंक : ११

मानद सम्पादक :
डॉ० नरेन्द्र भानावत, एम.ए.,पी-एच.डी

सम्पादन :
डॉ० (श्रीमती) शान्ता भानावत
एम.ए.; पी-एच.डी.

संस्थापक :
श्री जैनरत्न विद्यालय, भोपालगढ़

प्रकाशक :
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार दुकान नं० १८२-१८३ के ऊपर
जयपुर—३०२००३ (राजस्थान)
फोन : ५६५६६७

सम्पादकीय सम्पर्क सूत्र :
सी-२३५ ए, दयानन्द मार्ग, तिलक नगर
जयपुर—३०२००४ (राजस्थान)
फोन : ४७४४४

भारत सरकार द्वारा प्रदत्त
रजिस्ट्रेशन नं० ३६५३/५७

स्तम्भ सदस्यता : १००१ रु०
संरक्षक सदस्यता : ५०१ रु०
आजीवन सदस्यता : देश में २५१ रु०
आजीवन सदस्यता : विदेश में ७५१ रु०
त्रिवर्षीय सदस्यता : ५५ रु०
वार्षिक सदस्यता : २० रु०

मुद्रक :
फ्रेंण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
जयपुर—३०२००३

नोट : यह आवश्यक नहीं कि लेखकों के विचारों मे सम्पादक या मण्डल की सहमति हो ।

अनुक्रमणिका



वैज्ञानिक दृष्टि और जीवन-व्यवहार

☐ डॉ. नरेन्द्र भानावत

जीवन की सार्थकता व्यवहार पर निर्भर है। हमें जो जीवन मिला है, उसके विकास में समाज का बड़ा योगदान है। कई व्यक्तियों से मिलकर समाज बनता है। अतः यह आवश्यक है कि समाज में रहते हुए विभिन्न व्यक्तियों के साथ हमारे जो संबंध और रिश्ते हैं, उनमें परस्पर स्नेह, सौहार्द, प्रेम, मैत्री और सहयोग का भाव बना रहे, आवश्यकता पड़ने पर एक-दूसरे के सहायक बनें। सामाजिक प्रगति और जीवन-विकास में हमारे व्यवहार की बड़ी भूमिका है।

भारतीय परम्परा में व्यवहार, धर्म द्वारा नियंत्रित होता रहा है। धर्म, अंधविश्वास, साम्प्रदायिकता अथवा मतवाद न होकर जीवन के प्रति एक विशेष गुण-दृष्टि और पुरुषार्थ-साधना का नाम है। भारतीय चिन्तन में जीवन समस्या के रूप में नहीं देखा गया है। यहां जीवन पुरुषार्थ की साधना का क्षेत्र माना गया है। पुरुषार्थ चार प्रकार के माने गये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अर्थ और काम जीवन की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक हैं, पर ये आवश्यकताएँ आन्तरिक व्यक्तित्व-निर्माण में सहायक बनें, इसके लिए अर्थ के साथ धर्म को और काम के साथ मोक्ष को रखा गया है। पुरुषार्थमय जीवन में धर्म आत्म-कल्याण के साथ-साथ लोक कल्याण के लिए अवसर और क्षेत्र प्रदान करता है। धर्म वह धारणा शक्ति है, जिसके द्वारा जीवन का अस्तित्व बना रहता है और उसमें निरन्तर गतिशीलता और तेजस्विता अनुस्यूत रहती है। धर्म को अहिंसा, संयम और तप रूप माना गया है। शुभ में प्रवृत्ति और अशुभ से निवृत्ति धर्म का लक्षण है। धर्म की आराधना आत्म-शुद्धि और पर-हित के लिए होती है। पर जब परहित के नाम पर अपना ही स्वार्थ प्रमुख बन जाता है तब धर्म, धर्म नहीं रहता, वह ढोंग, पाखण्ड, प्रदर्शन और विकार का रूप ले लेता है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में धर्म इस विकृति के दौर से गुजरा है और गुजर रहा है। धर्म के इस विकार को दूर कर उसको परिष्कृत करने में वैज्ञानिक दृष्टि का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

वैज्ञानिक दृष्टि शुद्ध प्रज्ञा दृष्टि है। उसमें अंधविश्वास, अंध मान्यता और मिथ्या कल्पना-तत्त्वों के लिए कोई स्थान नहीं है। यह दृष्टि प्रयोग, परीक्षण और प्रमाण पर निर्भर है। कार्यकारण संबंध इस दृष्टि की आधारभूमि है।

जो कार्य घटित हुआ है, उसके मूल में कोई कारण अवश्य है। इस कारण की खोज में विज्ञान सतत प्रवृत्त रहता है। विज्ञान की दृष्टि किसी के अनुग्रह, उद्वेग, विग्रह की मोहताज नहीं। इसमें अपने श्रम की प्रतिष्ठा और आत्म-कृतित्व की महत्ता है। भाग्यवाद, देववाद और ईश्वरवाद के भरोसे वैज्ञानिक दृष्टि नहीं टिकती। इसमें मानवीय गरिमा, आत्म-कृतित्व, तथ्यपरकता, यथार्थता, शुद्धता, संतुलन, समन्वय पर बल रहता है। प्राकृतिक नियम के परिप्रेक्ष्य में जीवन-व्यवहार को समझा और परखा जाता है।

वैज्ञानिक दृष्टि विज्ञान की जानकारी अथवा पदार्थ के उपयोग की कुशलता का नाम नहीं है। वैज्ञानिक दृष्टि एक जीवन-शैली और जीवन्त-पद्धति है। एक प्रकार की पूर्वाग्रह मुक्त मानसिकता है। मानव-हित के जो भी कार्य मनसा, वाचा होते हैं, उनमें वैज्ञानिक दृष्टि ही सक्रिय बनी रहती है। इस दृष्टि के होने पर कोई अपने को दीन-हीन नहीं समझता, वर्तमान के प्रति बेखबर होकर कोई भविष्य की भ्रांति में नहीं भटकता, वर्तमान दुःख के भार को ढोकर अनागत के सुख-लोभ में कोई नहीं भूलता। यह दृष्टि वर्तमान क्षण को सार्थक करने की दृष्टि है। जो जीवन मिला है, वह सुखी, स्वाधीन, शांत, सामर्थ्यवान बने, इसके लिए सतत कर्मशील रहने की प्रेरणा इस दृष्टि से मिलती है। इस बिन्दु पर पुरुषार्थ रूप में जो धर्म-साधना है उसका इस वैज्ञानिक दृष्टि से कोई विरोध नहीं रहता। धर्म और विज्ञान यहाँ पूरक बनकर आते हैं।

दोनों का लक्ष्य हिंसा, शोषण, भेदभाव, मनो-मालिन्य को मिटाना है, दुःख और पीड़ा से सबको मुक्त करना है, सबके रोग और शोक को हरना है। इस दिशा में वर्तमान जीवन में जितनी भी प्रवृत्तियाँ की जाती हैं, उनमें वैज्ञानिक दृष्टि से बड़ी मदद मिलती है। यह दृष्टि व्यक्ति को उदार, सहिष्णु और समन्वयशील बनाती है। एक ही वस्तु में रहे हुए विरोधी धर्म-गुणों को पहचान कर उसके सह-अस्तित्व को समझना वैज्ञानिक दृष्टि से ही संभव हो पाता है। आज तथाकथित धार्मिकजनों में इस दृष्टि का लोप होता जा रहा है। यही कारण है कि साम्प्रदायिकता, संकीर्णता बढ़ती जा रही है। पहले धर्म के नाम पर जो अंधविश्वास थे, वे तो अब कम हुए हैं पर दुराग्रह, हठवाद, पद, प्रभुता और प्रदर्शन के नये-नये खतरे वैज्ञानिक दृष्टि को बाधित किये हुए हैं। जब धर्म के साथ, चिन्तन के साथ, जीवन-व्यवहार के साथ, वैज्ञानिक दृष्टि जुड़ती है तब चिन्तन में नई चमक और जीने के तौर-तरीकों में एक नई शक्ति, स्फूर्ति, और ऊर्जा का समावेश हो जाता है।

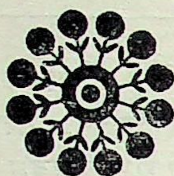
यह आवश्यक नहीं है कि जो अधिक बुद्धिजीवी है, तार्किक है, वह वैज्ञानिक दृष्टि से बंधा होता है। ऐसा भी देखने में आया है कि वैज्ञानिकों की दृष्टि भी वैज्ञानिक नहीं होती। उनका विज्ञान प्रयोगशालाओं तक ही सीमित रहता

है और जीवन-व्यवहार में वे रूढ़िवादिता का भार ढोते चलते हैं। जीवन में वैज्ञानिक दृष्टि का विकास हो, इसके लिए आवश्यक है आत्म-चिन्तन, आत्म-निरीक्षण, ध्यान और स्वाध्याय। तथ्यों को सही ढंग से समझने और परिवेश के प्रति पूरी जागरूकता बनाये रखने में दृष्टि बड़ा काम करती है। इस दृष्टि के विकास के लिए एक ओर यह आवश्यक है कि वैज्ञानिक चिन्तन जन-साधारण तक पहुँचे, वहाँ दूसरी ओर यह भी आवश्यक है कि जन-साधारण की सोच विज्ञान तक पहुँचे। यदि विज्ञान अपने में ही सीमित रहा तो वह जीवन-व्यवहार का रूप नहीं ले सकेगा। वैज्ञानिक चिन्तन को जीवन-व्यवहार में चरितार्थ करने के लिए जन-साधारण की समस्याओं को समझकर उसके परिप्रेक्ष्य में विज्ञान सम्मत समाधान ढूँढ़ना आवश्यक है। इसमें प्रज्ञा सम्पन्न प्रबुद्धजनों की बड़ी भूमिका है। उनके विचार जन-साधारण तक पहुँचें, इसके लिए जन संचार माध्यमों का सहयोग लेना आवश्यक है। आकाशवाणी, दूरदर्शन, सिनेमा और समाचार पत्र-पत्रिकाओं में वैज्ञानिक दृष्टि के प्रचार-प्रसार के लिए अधिक समय और स्थान दिया जाना आवश्यक है। जो साहित्य प्रकाशित हो, उसमें वैज्ञानिक दृष्टि की प्रधानता हो, कहानी, उपन्यास, नाटक, आदि विधाओं में अधिकाधिक समसामयिक जीवन का चित्रण हो वैज्ञानिक दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास में राजनीतिज्ञों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और जन-प्रतिनिधियों की बड़ी भूमिका है। जिस प्रकार भूख, गरीबी, बेरोजगारी जैसी समस्याओं के समाधान के लिए राजनेता और जन-प्रतिनिधि प्रयत्नरत रहते हैं। यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण को जन-व्यापी बनाने में वे सहयोग करें तो सामाजिक और सांस्कृतिक क्रांति को बड़ा बल मिल सकता है।

आज सर्वत्र विज्ञान हावी है। पर यह ध्यातव्य है कि विज्ञान द्वारा प्रदत्त उपकरणों का प्रयोग करना और भौतिक सुख-सुविधाओं के उपकरण जुटाना वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न होना नहीं है। कई बार ऐसा देखा जाता है कि सभ्यता के उच्च शिखर पर आसीन व्यक्ति, व्यक्ति न रहकर यंत्र बन जाते हैं। उनकी मानवीय संवेदनाएँ सूख जाती हैं, उनका व्यवहार सामान्य न रहकर असामान्य बन जाता है। निश्चय ही ऐसे लोगों को वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न नहीं कहा जा सकता। वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति क्रूर नहीं, करुण होता है। वह सरल, सहृदय और सरस होता है। बिखराव नहीं भराव उसका गुण होता है। वह अलग एकान्त में न बैठकर सबके मनों को जोड़ने में प्रेरक बनता है। आज के युग की माँग है ऐसी वैज्ञानिक दृष्टि के विस्तार और प्रचार-प्रसार की, ताकि जीवन शान्त, शुद्ध, सत्यनिष्ठ और आग्रह मुक्त बन सके।

—सी-२३५-ए, दयानन्द मार्ग, तिलक नगर, जयपुर-४



आत्म-ज्योति पर्व

□ डॉ. प्रेमचन्द रां

कार्तिक कृष्णा अमावस्या का दीपमालिका का यह ज्योति पर्व भा सांस्कृतिक परम्परा का आलोक पर्व है। यह पर्व अधर्म पर धर्म की, असत सत्य की, अज्ञान पर ज्ञान की और अंधकार पर प्रकाश की विजय का प्र है। इस पावन पर्व पर प्रज्ज्वलित दीपमालिका हमें आत्म-आलोचन की प्रे देती है कि हम बाहर नहीं भीतर की ओर उन्मुख होकर अज्ञान अंधका मुक्त होकर ज्ञान के आलोक से स्वयं को प्रकाशमान करें।

'वृहदारण्यक् उपनिषद्' के 'ज्योतिर्ब्राह्मण' में एक संवाद मिलता जिसमें गुरु शिष्य से प्रश्न करते हैं- -वह ज्योति कौनसी है, जिसके द्वारा विश्व के पदार्थों को देखने में समर्थ हो ?

शिष्य का उत्तर—वह ज्योति है–दिन में सूर्य और रात्रि में च दीप व अग्नि।

गुरु—वह कौनसा प्रकाश है जिससे सूर्य, चन्द्रमा और दीप दिखायी देते

शिष्य—वह प्रकाश है नेत्र ज्योति–जिससे ये दिखायी देते हैं।

गुरु—जब आँखें बन्द हो, तब कौनसा प्रकाश है ?

शिष्य—नेत्र-ज्योति के अभाव में 'बुद्धि' द्वारा वस्तुओं की पहि होती है।

गुरु—वह कौनसा प्रकाश है जिससे बुद्धि दिखलायी पड़ती है ?

शिष्य—उस स्थिति में मैं स्वयं हूँ। मैं अर्थात् मेरा अन्तर्मन आन्तरिक ज्योतिपुंज ही मेरी समस्त जागृत दशाओं का साक्षी है।

इस संवाद में उस ज्योतिपुंज को व्याख्यानित करने का प्रयास गया है जो स्वयं आत्म-प्रकाशमान है, जो अपनी तेजस्विता के लिये किसी प्रकाश पर निर्भर नहीं करता। वह स्वयं ही समस्त सांसारिक एवं प्रकाशों का स्रोत है। सूर्य, चन्द्र, दीप, अग्नि, नेत्र, बुद्धि ये सब मात्र उपकरण हैं, जो स्वयं प्रकाशमान नहीं हैं। ये आन्तरिक ज्योति से ही प्रका होते हैं। जिसके पास स्वयं के ज्ञान रूपी नेत्र नहीं है, उसके लिये प्रकाश क्या कर सकता है।

यस्य नास्ति नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य, दर्पणः किं करिष्यति ॥

श्रीकृष्ण का 'गीता' में सन्देश है—"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मान सादयेत् ॥" अपनी आत्मा से ही अपनी आत्मा का हित होता है। अतः की, आत्म-ज्योति की उपेक्षा मत करो, यही ज्योति पर्व है।

—१६१०, खेजड़े का रास्ता, जयपुर–१



संयमित जीवन और अहिंसा-साधना*

□ आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा०

संसार का प्राणी अनन्त काल से कर्मपाश में बंधा हुआ है। जिससे वह अपने ज्ञानादि गुणों का पूर्ण प्रकाश नहीं फैला सकता। कर्म बन्ध की अनादिता से प्रश्न होता है कि जब कर्म अनादि हैं तो फिर मनुष्य की मुक्ति कैसे होगी ?

यहां समझने की बात है कि सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं—एक संयोग सम्बन्ध और दूसरा समवाय सम्बन्ध। एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ सम्बन्ध होने से आत्मा का कर्म के साथ सम्बन्ध, यह संयोग सम्बन्ध है और आत्मा का ज्ञान आदि गुण के साथ सम्बन्ध समवाय है, इसमें से पहले का अनादि सम्बन्ध होकर भी सान्त है जबकि दूसरे का अनादि अनन्त सम्बन्ध है, न उसका संयोग है और न वियोग।

किसी को यदि योग्य निमित्त मिल जाय और अपने में उचित पुरुषार्थ हो तो आत्मा का कर्म के साथ जो सम्बन्ध है, उसका वियोग भी कर सकता है। जैसे सुवर्ण और धूलि का सम्बन्ध अनादि होने पर भी रासायनिक प्रयोग से सोना शुद्ध होता है। मिट्टी में मिला हुआ भी जल शुद्ध किया जाता है। वैसे ही आगंतुक कारणों को रोक कर कर्म का भी अन्त किया जाता है। कर्म भी प्रवाह की अपेक्षा अनादि और स्थिति की अपेक्षा सादि है। जैसे छने जल के पात्र को ढंक दिया जाय तो नया मैल नहीं आता फिर बाष्प नलिका में फिल्टर कर उसे पूर्ण शुद्ध कर लिया जाता है। ऐसे ही व्रतों के द्वारा पापों का आगमन रोक कर तप-ध्यान से कर्म-मल का सर्वथा अन्त कर लिया जाता है :

कर्म के अणु संसार में चारों ओर भरे पड़े हैं। जब आत्मा उन्हें ग्रहण करती है तो वे उस-उस परिणति के अनुकूल फल देते हैं। जैसे भावावेश में आकर कोई भंग पीता है तो उसके दिल-दिमाग सब मस्ती से आवृत्त होकर कुछ और ही रूप हो जाते हैं। धीरे-धीरे वह प्रभाव उपचारों से मिटकर मन स्वस्थ होता

*आचार्य श्री के प्रवचन से संकलित।

है। भंग के परमाणु स्वयं के द्वारा ग्रहण करने पर ही दुःख देते हैं, वैसे कर्म-परमाणु भी अपने द्वारा ग्रहण किए जाने पर ही दुःखदायी होते हैं।

कर्म बन्धन से दूर रहने का उपाय साधना है जो दो प्रकार की है—एक साधु-साधना और दूसरी गृहस्थ-साधना। दोनों में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पांच व्रतों के पालने की व्यवस्था की गई है। जिसमें साधु की साधना महा कठोर और पूर्ण त्याग की है किन्तु गृहस्थ की धर्म साधना सरल है। गृहस्थ के व्रत में मर्यादा होती है। आनन्द की साधना भी देश साधना है। उसने श्रावक धर्म को स्वीकार करते हुए सर्व प्रथम हिंसा का त्याग किया जो साधना पथ की सबसे बड़ी बाधा है।

संसार में जीवन-निर्वाह के मार्ग में अनचाहे भी प्रतिपल हिंसा के अवसर आते रहते हैं। ऐसी स्थिति में अहिंसा व्रत का निर्वाह कैसे किया जाय? इस प्रकार आनन्द के द्वारा पूछे जाने पर प्रभु ने बतलाया कि हिंसा के भी दो भेद हैं:—एक स्थूल हिंसा और दूसरी सूक्ष्म हिंसा। सूक्ष्म हिंसा के अन्तर्गत निम्न पांच बातें आती हैं—१—पृथ्वी काय के जीवों की हिंसा, २—जल के जीवों की हिंसा। ३—अग्नि के जीवों की हिंसा। ४—वायु के जीवों की हिंसा। ५—वनस्पति के जीवों की हिंसा। गृहस्थ के लिए दैनिक व्यवहार में इनका सर्वथा त्याग सम्भव नहीं। फिर भी विवेकी को इसके लिए ध्यान रखना चाहिए, यह सूक्ष्म हिंसा है। किन्तु दूसरी स्थूल हिंसा जिसमें एक कीट से लेकर पशु-पक्षी, मनुष्य तक सारे चर प्राणी आ जाते हैं। श्रावक को स्थूल रूप में चलने-फिरने वाले जीव-जन्तुओं की जान-बूझकर हिंसा नहीं करनी चाहिए। आनन्द ने ऐसी प्रतिज्ञा कर ली।

साधु या व्रती से पाप हो सकता है परन्तु उसका संकल्प है कि जान-बूझकर पाप नहीं करना। पाप का हो जाना और पाप करना ये दो भिन्न-भिन्न बातें हैं। करने में मन की प्रेरणा है और होने में मात्र काय-चेष्टा। यदि हमारे व्यवहार से किसी हृदय में ठेस लग गई और उससे क्षमा मांगकर परिशोधन कर लिया तो वह शान्त हो जाएगा और यदि अनायास ही किसी को पीड़ा पहुँच जाय तो यह भी जान-बूझकर पीड़ा न पहुँचाने के कारण क्षम्य है। किन्तु कंकर की चोट भले ही कम हो; पर जान-बूझकर मारने वालों को आप कड़ी दृष्टि से देखते हैं। किन्तु अनजान मिलने वाली बड़ी पीड़ा को भी क्षमा की नजरों से देखते हैं।

हर प्राणी को अपनी जान प्यारी होती है, अतएव हिंसा से बचना हर मानव का परम पुनीत कर्तव्य है। कवि ने ठीक ही कहा है—

प्रथम तो प्रिय धन सब ही को, द्रव्य से सुत लागे नीको ।
पुत्र से वल्लभ तन जानो, अंग में अधिक नयन मानो ।।

नयन आदि सब इन्द्रियन, अधिक प्यारे प्राण ।
या कारण कोई मत करो, पर प्राणन की हान ।।

बुरी है जग में बेईमानी, दयापालो बुधजन प्राणी ।
स्वर्ग अपवर्ग सौख्यदानी ।।

मनुष्य को अपना जीवन सबसे प्यारा होता है। अपनी जान के आगे वह किसी की भी परवाह नहीं करता। एक जगह की बात है कि एक सेठजी को चौथेपन में, पुण्य योग से एक पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ। पुत्र का बड़े ठाठ से लालन-पालन हुआ। एक दिन सेठ कहीं बाहर गए हुए थे कि उनके घर में आग लग गई और बच्चा घर के भीतर पालने में ही रह गया और घर के सब लोग बाहर हो गए। जब बच्चे की याद आयी तब तक घर में चारों ओर आग फैल गई थी और ज़ोरों की ज्वाला निकल रही थी।

बच्चे को बचाने के लिए सेठ ने बहुत धन देने का निर्णय किया किन्तु धन के लिए जान पर खेलने वाला व्यक्ति उस जगह नहीं मिल सका। सेठ बच्चे के लिए छाती पीट कर रो रहा था। सेठ की व्याकुलता देख कर पास खड़े किसी व्यक्ति ने कहा कि सेठजी ! स्वयं ही भीतर जाकर बच्चे को क्यों नहीं निकाल लाते ? यह सुन कर सेठजी बोले कि यदि बचाने के बदले मैं स्वयं जल जाऊँ तो……! यदि मैं ही नहीं रहा तो पुत्र-मुख एवं सुख कौन देखेगा ? नीति में भी तो कहा है।

"आत्मानं सततं रक्षेत्, दारैरपि धनैरपि।"

इस दृष्टान्त से तात्पर्य यह है कि सम्पदा, पुत्र आदि सबसे प्यारा हर एक मनुष्य को अपना जीवन है। अतः आत्मवत् मान कर किसी के भी प्राण को खतरे में डालना महान् पातक है।

हिंसा करने के कारण मनुष्य को हमेशा चिन्तित रहना पड़ता है। सताए गए व्यक्ति से प्रतिकार पाने की भावना भी मन को कचोटती रहती है। क्योंकि हिंसा प्रति-हिंसा को उत्पन्न करती है, जो मनुष्य के लिए चिन्ता का कारण है। एक साधारण व्यक्ति कहीं भी स्वतन्त्रतापूर्वक भ्रमण कर सकता है। उसे किसी बात की चिन्ता नहीं होगी किन्तु देश के प्रधानमंत्री या बड़े-बड़े पदाधिकारी अकेले नहीं घूम सकते। उनके मन में शंका लगी रहती है, मगर जिसके मन में अहिंसा की भावना है, वह अकेले भी जगत् में घूम-फिर सकता है। गांधीजी हिन्दू-मुस्लिम दंगे के समय में नोआखाली आदि पाकिस्तानी क्षेत्रों में घूम गए।

कारण स्पष्ट है कि उनके मन में अहिंसा की पवित्र भावना थी, अतः वे सर्वत्र ही निर्भय रहते थे।

आचार्य पातंजलि ने 'योग दर्शन' में साधना के मार्ग में यम का लक्षण बतलाते हुए कहा है—'अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः।' फिर अहिंसा की महिमा बताते हुए आप कहते हैं कि जिसके मन में अहिंसा की प्रतिष्ठा हुई हो, उसका किसी से वैर-विरोध नहीं रहता और भयंकर से भयंकर प्राणी भी उसके सामने वैर भाव भूल जाते हैं। जैसे कि—

"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः"

साधु वन-भूमि में हिंसक पशुओं से घिर कर तपस्या करते हैं। इन साधु-संतों के पास अहिंसा का ही बल है। पूर्ण अहिंसक के शरीर में सर्प, बिच्छू आदि विषैले जीव-जन्तु भी अपना विष नहीं लगाते। धार्मिक साधना में अहिंसा के द्वारा ही लोगों का दिल जीता जा सकता है। गृहस्थ यदि अहिंसा का व्रत धारण करे तो उसका कौटुम्बिक जीवन मधुर बन जाय!

हिंसा का क्षेत्र बड़ा ही व्यापक है। शरीर से नहीं मारना तक ही अहिंसा सीमित नहीं है। मंत्र द्वारा दूसरे को हानि पहुँचाना, जादू टोना करना, कटु-वाणी का प्रहार कर ठेस पहुंचाना ये सब भी हिंसा के ही रूप हैं। यदि कोई किसी की कटुवाणी या छींटाकशी से उत्तेजित होकर आत्म-हत्या कर ले, तो आत्मघाती के साथ-साथ छींटाकशी करने वाला भी पातकी होगा। अतएव खूब ध्यानपूर्वक हिंसा के पाप से बचने का प्रयत्न करना चाहिए। आनन्द श्रावक ने भी प्रभु से कहा कि मैं ऐसी स्थूल हिंसा स्वयं नहीं करूंगा और न कराऊंगा ही। मन, वाणी एवं शरीर तीनों से हिंसा का त्याग करता हूँ।

संयमित जीवन का अर्थ साधना को ऊपर बढ़ा ले जाना है। मगर जो साधना ऊपर बढ़ने के बजाय अधोगामिनी होवे उसे साधना कहना भी साधना शब्द के महत्त्व को घटाना है। अब जरा पूर्ण साधक की जीवन झांकी प्रस्तुत करते हैं—भद्रबाहु पूर्ण त्यागी थे। उनकी सत्यवादिता के चमत्कार से अपमानित वाराहमिहिर के हृदय में आकुलता भर गई और वह प्रतिशोध के लिए प्रज्वलित हृदय हो गया, आर्तध्यान में प्राण त्याग कर वह व्यन्तर देव बना और प्रतिशोध की भावना से पाटलिपुत्र के संघ में प्लेग, हैजा का जन संहारक रोग फैला दिया। जब भद्रबाहु के पास संघ ने आकर रक्षा की प्रार्थना की तो भद्रबाहु ने शान्ति के लिए एक स्तोत्र की रचना की और कहा कि इसके जाप से कोई संकट नहीं रहेगा। यद्यपि मंत्र-यंत्र आदि विद्या की जानकारी का प्रयोग बताना जैन साधुओं के लिए वर्जित है किन्तु आगम व्यवहारी होने से भद्रबाहु ने इसमें संघ

रक्षा के साथ शासन की प्रभावना देखी। अतः 'उवसग्गहर' स्तोत्र की रचना कर दी जो आज भी अपने मंगल स्वरूप में विद्यमान है।

कालान्तर से इस स्तोत्र का उपयोग साधारण दुःखों में भी होने लगा और दुरुपयोग के कारण उसकी दो गाथाएं निकाल दी गई, पांच गाथाएँ अभी भी शेष हैं।

पाप मानव के सत्यानाश का कारण बनता है तथा धर्म आत्म-सुख का निमित्त। देशविरति आनन्द का नमूना और पूर्ण त्याग में महामुनि भद्रबाहु का आदर्श हम सबके सामने हैं। अपने सामर्थ्य के अनुसार हमें साधना का रूप ग्रहण करना है। वीतराग की प्रेरणामयी वाणी का लाभ लेकर स्वयं साधना करने से लौकिक और पारलौकिक दोनों तरह का कल्याण होगा और आत्मिक शान्ति मिलेगी।

स्वाध्याय से 'स्व' का परिचय

□ श्री लक्ष्मीचन्द जैन

जो व्यक्ति प्रतिदिन सामायिक के समय में स्वाध्याय करता है, उसमें शुभ परिवर्तनों की तो कुछ बात ही अलग है।

परन्तु भले ही नियमित सामायिक न होती हो फिर भी कभी-कभी सप्ताह में एक दो रोज घंटा आधा घंटा स्वाध्याय में समय व्यतीत हो जाय तो वह आनन्द भी 'स्व' के परिचय के लिए शुभ संकेत प्रदान कर सकता है।

स्वाध्याय के माध्यम से स्व को ही तो जानना है।

स्वाध्याय एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा आप अपने में कुछ ऐसे सौंदर्य-मूलक आनन्द-स्थल खोज निकालेंगे, जिनका कभी अनुमान भी आपको नहीं हुआ होगा।

स्वाध्याय के आधार से आप अपने आप से बातचीत करने लगेंगे, धीरे-धीरे अपने आप से परिचित होने लगेंगे। जो रुचिकर आत्मानुभूति का अनुभव होगा उससे आपके मानसिक द्वन्द्व स्वमेव हल हो जायेंगे और आप एक तटस्थ-दर्शक की भाँति देखेंगे कि आप कौन हैं? स्वाध्याय से अपने आपको जानने की प्रक्रिया शुरू हो जावेगी। अन्ततोगत्वा परिष्कृत सद्गुणों का अक्षय भण्डार, आपके इर्द-गिर्द होगा।

—प्रधानाचार्य
ग्राम-पोस्ट--छोटी कसरावद, जिला--खरगोन (म.प्र.)



दीपावली : आत्म-प्रकाश का साक्षात्कार करने का पर्व

☐ श्री राजेश जैन 'धन्नू'

ज्योति पर्व दीपावली अपने विशिष्ट आख्यानों के संग उपस्थित होता है। यह पर्व अपने में कई ऐतिहासिक प्रसंगों को संजोये हुए हैं। 'दीपमालिका' का हर धर्म में अपना विशिष्ट महत्त्व है। चाहे वह राम का अयोध्या आगमन के रूप में हिन्दुओं का हो व चाहे गुरु गोविन्दसिंह की विजय-यात्रा की स्मृति के रूप में सिक्खों का हो, चाहे भ० महावीर के निर्वाणोत्सव के रूप में जैनियों का हो। जैन दर्शन में दीपावली की सर्वाधिक महत्ता है। इस दिन प्रभु महावीर आत्म-प्रकाश को प्रज्वलित कर सिद्ध गति को प्राप्त हुए थे। ३० वर्ष की वय में संयम (दीक्षा) अंगीकार कर ४२ वर्षों तक निरन्तर पादविहार करते हुए, परिषहों (संकट), उपसर्गों (कष्ट) को झेलते-सहते हुए भविजन के आत्म-कल्याण का पथ प्रशस्त कराते हुए, स्वात्म-साधना में तल्लीन रहते हुए प्रभु महावीर ने इसी दिन अपने समस्त प्रयोजनों को सिद्ध कर और शरीर व भव-भ्रमण (जन्म-मरण) के बन्धनों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त किया था। भ० महावीर आत्म-शत्रुओं का नाशकर इस दिन निर्वाण को प्राप्त हुए अतः उनके इन कल्याणक को आत्मोत्थान की स्मृति स्वरूप दीपोत्सव के रूप में मनाया जाता है। प्रभु के निर्वाण की वह रात बहुरंगी दीपों के अपरिमित प्रकाश से जगमगा उठी मानों नभ के करोड़ों तारे चमक रहे हों। पृथ्वी भी सुन्दर परिधान पहने हुए हो और उस साड़ी में चमकते जरी के कसीदे मानों दीपों का प्रकाश हों।

"दीपोत्सव" याने कि आत्म-ज्योति का उत्सव। हर आत्मा में शुभ भावों की ज्योति प्रकट हो, हर हृदय में विमलता, सहजता, सरलता का दीप जले, यही सन्देश प्रसारित करती है ज्योति पर्व दीपमालिका। आत्मा का प्रकाश अनन्त सूर्यों से कहीं बढ़कर है। नील-गगन का यह भास्कर तो भौतिक जगत् को ही प्रकाशित करता है पर आत्म प्रकाश तो हर मन में अवस्थित है। आचार्य मानतुंग ने अपने 'भक्तामर स्रोत' में कहा है—

"सूर्यातिशायी महिमासि मुनीन्द्र लोके।"

यह आत्म-प्रकाश समस्त लौकिक प्रकाशपुंजों से पृथक् व विशिष्ट है। संसार का कोई भी प्रकाश इसकी तुलना नहीं कर सकता है। यह अद्भुत प्रकाश चर्मचक्षु से दृश्य नहीं है। इसके लिए ज्ञान व आचरण का चक्षु चाहिए। यह आत्म-आलोक संसार का अद्वितीय, अप्रतिम व अनुपम प्रकाश है। यह दिव्या-लोक प्रत्येक आत्मा में समाहित है। संसार के हर प्राणी में आत्म-उजाला विद्यमान है। यह अलग बात है कि आज उस दिव्य प्रकाश में सघन आवरण आबद्ध हो रहे हैं।

बल्ब जल रहा हो और उस पर कोई ढक्कन ढक दे तो जैसे वह ज्योति ढक्कन के अन्दर केन्द्रित हो जाती है; बाहर दिखलाई नहीं पड़ती। ठीक वैसे ही आत्म-उजाला की दशा है। निगोद की आत्मा में भी अनन्त प्रकाश भरा पड़ा है पर वह कर्मावरण के कारण लुप्त प्रायः है। जैसे घनेरी अन्धेरी रात्रि में टिमटिमाते तारों व चाँद की चाँदनी से गगन उज्ज्वल होता है वैसे ही कर्मा-वृत्त आत्म में वीर-वाणी का आचरण होने से अदृश्य किरण फूट पड़ती है। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि अन्धत्व हमारे आत्म-प्रदेश को ज्ञान के आलोक से आलोकित नहीं होने देते। ये घातक कर्म भाव आत्म-ज्योति को ढक देते हैं। कर्म पुद्गल चतुष्पर्शी हैं। हवा से भी सूक्ष्म व व्यापक हैं जो आत्मालोक को प्रकटने नहीं देते और इसी आत्मालोक को प्रकट करने के लिये हम धर्म का अवलम्बन लेते हैं, उसकी साधना करते हैं।

धर्म-साधना द्वारा हम अशुभ योग के बन्धन-स्तर को विलीन कर अनन्त ज्योति का साक्षात्कार करते हैं। हम प्रशस्त भावों को आत्मसात करते हैं। ज्ञान, योग, आचरण, भक्ति, सेवा, तप द्वारा शुभ-भाव को आत्मा में प्रस्फुटित करते हैं। जब हम अशुभ योगों से निवृत्त हो आत्म-प्रकाश का आह्वान करते हुए शुभ-भावों को अंगीकृत करते हैं तब सहज ही आत्म प्रदेश में अद्भुत प्रकाश जगमगा उठता है। इसलिए हम सदैव प्रयास करते हैं कि धर्माराधना करें व अपने अन्तस में ज्ञान प्रकाश का स्रोत बहायें। धर्म एक ऐसा निर्झर है जिससे आत्म-प्रकाश रूपी नीर सतत झरता है। लेकिन जन्म पर जन्म बीत जाते हैं पर हम आत्म प्रकाश को प्रवाहित करने की भूमिका तक नहीं बांध पाते। यह अस-मर्थता हमारी स्वयं की कमजोरी है। अगर हम शुद्ध धर्माचरण करें तो निश्चय है कि आत्मा में मुक्ति का उजाला प्रवाहित हो जाए। जीवन की सार्थकता एवं आत्म-ज्योति की प्राप्ति का सन्देश देने के लिए ही दीपावली उपस्थित होती है। यह पर्व हमें मिथ्यात्व (अज्ञानता) से सम्यक्त्व (अक्षय ज्ञान) एवं विभाव से स्वभाव, मलीनता (कलुषता) से विमलता, चिंतन से आचरण में आने का सन्देश देता है। इस दिन हम रूढ़ि से ऊपर उठकर आत्मावलोकन व आत्मनिंदा करें तो निश्चित ही जीवन आलोकित होगा।

ज्योति सर्वप्रिय है। हर प्राणी को उजाला प्रफुल्लित, प्रमुदित और आनन्दित करता है जबकि अन्धकार सर्वत्र खटकता है। जब निशा के तमस के उपरांत उषा की सुनहरी किरणें आकाश से पृथ्वी पर स्वर्ण बरसाती हैं तो मानव का मन-मयूर हर्ष के अतिरेक से नर्तन करने लगता है। अन्धकार में स्थित प्राणी को प्रकाश का संसर्ग स्वर्गानन्द प्रदान करता है।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय'—इसमें आत्मा को कर्मबंधन (तमस) से मुक्त कर सिद्धत्व (आत्म-प्रकाश) की उपलब्धि की कामना की गई है। यह अनुभूत वाक्य वैदिक ऋचाओं का है। इसका अभिप्राय है कि अन्धकार की ओर नहीं, प्रकाश की ओर गतिशील बनो। किन्तु वह प्रकाश अन्दर का होना चाहिये, बाह्य नहीं। प्रकाश अन्तश्चेतना को प्रकाशित करने वाला होना चाहिए। हमें अपनी आंतरिक ज्योति को प्रज्वलित करना है, अन्तर के आलोक को जगमगाना है। आत्म-प्रकाश की पावन, शीतल रश्मि को स्पंदित करना है।

भारतीय दार्शनिकों का चिंतन बड़ा ही विकासवादी, शाश्वत व मर्मस्पर्शी है। अपने चिंतन-कर्म द्वारा ये दार्शनिक हर आत्मा को उत्थान का पथ बताते हैं। उन्होंने अपने चिंतन द्वारा यह बोध दिया है कि हे चेतन ! तू अपनी चेतना को जागृत कर ले, अपनी सर्वोत्कृष्ट ज्योति का साक्षात्कार कर ले जिससे तेरे अन्तरात्मा पर छाये हुए मिथ्यात्व रूप अन्धकार के सघन बादल विलीन हो जायें, किन्तु मात्र चिंतन से आत्म-ज्योति को नहीं पाया जा सकता। इसके लिए आचरण आवश्यक है। बिना आचरण का चिंतन थोथा है। आचरण रहित चिन्तन-मनन उसी प्रकार है जैसा कि जैन-दर्शन के महान् ग्रन्थ "विशेषावश्यक भाष्य" में जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण ने कहा है—

"जहा, खरो चंदन भारवाही, भारस्य भागी न हु चंदणस्य ॥
एवं खु नाणी चरणेन हीणो, नाणस्य भागी नहु सोग्गइए ॥॥"

अर्थात् गर्दभ चंदन का भार तो ढोता है किन्तु चंदन की शीतल सुगन्ध का उसे भान नहीं है। वह चंदन उसके लिए मात्र भार ढोने का है। वैसे ही ज्ञानियों के चिंतन को अज्ञानता व आलस्य (प्रमाद) के कारण आचरण द्वारा जीवन में प्रकाशित नहीं किया तो वह चिंतन मात्र भार रूप है। आत्मिक-प्रकाश की मात्र चर्चा नहीं होनी चाहिए अपितु सांसारिक कर्मों से कुछ समय के लिए निवृत्त होकर शुद्ध बुद्ध आत्मा को उसे पाने के उपाय करने चाहिए। सदियों से मानव श्रवण कर रहे हैं, गीता-रामायण का अनेक बार पारायण हो चुका है, पर उसका एक वाक्य भी जीवन में परिणत नहीं हुआ तो यह पढ़ना-सुनना व्यर्थ है।

भगवान महावीर ऐसे निर्मल सूर्य थे जिन्होंने समग्र लोक को प्रकाशित किया था। उन्होंने ही इस धराधाम पर फैले हुए मिथ्यात्व के अन्धकार और विभिन्न दर्शनों के वाक्जाल को विध्वंस करके नूतन प्रकाश दिया था। वे ज्ञान के सूर्य सहस्रासहस्र सूर्यों से भी अधिक दैदीप्यमान थे। वे प्राणियों में ऐसा दिव्य आलोक भर देते थे कि फिर इस प्राणी को किसी मातृ कुक्षि में जन्म नहीं लेना पड़ता था और न मृत्यु-वेदना सहना पड़ता था। भवभ्रमण के सारे चक्कर काट प्राणी मुक्त हो जाते थे, सिद्ध हो जाते थे। तो आइए, गाँव, नगर, द्वार, सभी को ऐसे ही आत्म-दीपों से आलोकित करें। तेलिये दीयों से नहीं साधना के दीयों से दीपावली पर्व मनायें।

मृत्यु को जग में क्रूर कराल कहते हैं,
निर्जीव देह को जग में नर कंकाल कहते हैं।
शरीर को नहीं आत्मा को समझना होगा,
आत्मा को ही जग में दिव्य मशाल कहते हैं॥

—देवकर (दुर्ग)–४९१ ३४१

नीति रा दूहा

○ श्री मोतीलाल छापरवाल

काम हुवे जींरो जस्यो, मान उस्यो ही पाय।
कैंची रह नीचे पड़ी, सुई पाग रै मांय॥१॥

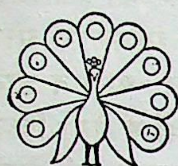
जतन कर्यो पण नीं सर्यो, जदे आपरो काम।
और करो रहसी कसर, मत लेवो बिसराम॥२॥

आसी कन आसी नहीं, दुखड़ो दो दिन बाद।
का होवै पहली दुखी, दुख नै कर-कर याद॥३॥

करड़ी चुभणी बात सुण, नीं आवे जद क्रोध।
तो जाणो वीं मनख में, मनखपणा रो बोध॥४॥

दानी शूरा हरि भगत, पंडित संत प्रवीण।
नारी जणिया नररतन, हेटी कह सो हीण॥५॥

—सांगानेर (भीलवाड़ा) राज.



जैन ज्ञान का साधन-प्रमाण : एक दार्शनिक विवेचन

□ डॉ. मुकुलराज मेहता

भारतीय दर्शन-चिन्तन प्रणालियों में तत्त्व मीमांसा से पूर्व प्रमाण-मीमांसा को स्थान दिया गया है। प्रमाण से वस्तु की सत्यता-असत्यता, यथार्थता-अयथार्थता आदि का बोध (न्याय) होता है। वात्स्यायन के अनुसार न्याय की परिभाषा है "प्रमाणैरर्थपरीक्षण न्याय:" अर्थात् विभिन्न प्रमाणों के आधार पर वस्तु की परीक्षा करना न्याय है। अब प्रश्न उठता है कि प्रमाण क्या है? प्रमाण के साधारण लक्षण "प्रमीयतेऽनेन इति प्रमाणम्" अर्थात् प्रमा का कारण प्रमाण है, अथवा "प्रमिणोति इति प्रमाणम्" अर्थात् बोध होने की क्रिया ही प्रमाण है, अथवा "प्रमिति मात्र प्रमाणं" अर्थात् प्रमिति (ज्ञान) ही प्रमाण है, आदि है।

जैनेतर दर्शनों में प्रमाण का निरूपण साधारणतः न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसा एवं नास्तिक दर्शनों में चार्वाक आदि में मुख्य रूप से किया गया है। आस्तिक दर्शन में, न्याय-वैशेषिक का प्रमाण-निरूपण प्रायः इस प्रकार है—"उपलब्धि साधनानिप्रमाणानि"। वात्स्यायन ने न्यायभाष्य में कहा है कि ज्ञानोपलब्धि का साधन ही प्रमाण है। उद्योतकर ने भी इसका समर्थन किया है "उपलब्धि हेतु प्रमाणम्" (न्यायवार्तिक) अर्थात् उपलब्धि का हेतु प्रमाण है। जयन्त भट्ट ने इसे दूसरे शब्दों में कहा है "प्रमाकरणं प्रमाणमवगम्यते" अर्थात् प्रमाण का कारण ही प्रमाण है। उदयन ने प्रमाण के सम्बन्ध में कुछ नई बातें जोड़ी हैं "यथार्थानुभवो मानमनपेक्षतयोष्यते" (न्याय कुसुमाञ्जलि) अर्थात् अनुभव घटित यथार्थता ही प्रमाण है। कणाद के अनुसार निर्दोष ज्ञान या विद्या ही प्रमाण है। यहाँ प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द, ये चार प्रकार के प्रमाण माने गये हैं।

अब सांख्य-योग में प्रमाण-विचार पर एक दृष्टि डालें तो सांख्य मानता है कि 'प्रमा' वह असंदिग्ध, अविघटित ज्ञान है, जिससे किसी अनधिगत विषय का बोध होता है। सांख्यकारिका की उक्ति है "प्रमेयसिद्धि प्रमाणाद्धि" अर्थात् प्रमेय की सिद्धि प्रमाण से होती है। योग-दर्शन के व्यासभाष्य में कहा है "इन्द्रियवृत्तिप्रमाणम्" अर्थात् इन्द्रिय वृत्ति प्रमाण है। यहाँ प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द, ये तीन प्रमाण माने गए हैं। मीमांसा में भट्ट ने, प्रमाण का लक्षण

"कारणदोषबाधक ज्ञानरहितमगृहीतग्राहि ज्ञानं प्रमाणं" किया है जबकि प्रभाकर ने "प्रमाणमनुभूतिः" अर्थात् अनुभूति को ही प्रमाण माना है। शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म का ज्ञान ही प्रमा है। नास्तिक धारा के चार्वाक दर्शन के वृहस्पति सूत्र में प्रत्यक्षमेव प्रमाणम् कहा है जबकि बौद्ध दर्शन में दिङ्नाग ने कहा है "प्रत्यक्षानुमानं प्रमाणं हि द्विलक्षणम्" अर्थात् प्रमाण के दो ही लक्षण हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान।

जैन आगमों में विभिन्न रूपों में प्रमाण की चर्चा मिलती है। इसका प्रारम्भ समन्तभद्र, सिद्धसेन आदि की चिन्तन-प्रणालियों से होकर अकलंक तक पूर्णरूप होता है। श्वेताम्बर परम्परा के राजप्रश्नीयसूत्र, भगवतीसूत्र, स्थानांग, नन्दीसूत्र अनुयोगद्वार में एवं दिगम्बर के षट्खण्डागम में प्रमाण सम्बन्धी विचार प्राप्य हैं। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार सिद्धसेन व दिगम्बर परम्परा के अनुसार समन्तभद्र जैन न्याय के संस्थापक थे। सिद्धसेन ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'न्यायावतार' में प्रत्यक्ष, परोक्ष एवं अनुमान तथा उसके अवयवों का अपने ढंग से विवेचन किया है। प्रमाण के लक्षणों में स्व परभासकता मानने के साथ ही उसे 'बाधविवर्जित' भी कहा है "प्रमाणं स्वपारभासि ज्ञानं बाधविवर्जितम्" अर्थात् प्रमाण वह है जो स्व के साथ पर को भी जान सके एवं उसका खण्डन अन्य किसी ज्ञान से न हो।

समन्तभद्र ने तत्त्वज्ञान (सम्यग्ज्ञान) के दो भाग (१) युगपत्सर्वभासी व (२) क्रमभासी माने हैं। इसमें प्रथम को उन्होंने प्रमाण माना है "तत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते युगपत् सर्वभासकं" (आप्तमीमांसा) अर्थात् वह तत्त्व ज्ञान, जो सबका एक साथ अवभासक बन सकता है, प्रमाण है। उन्होंने प्रमाण को स्व एवं परावभासक भी कहा है "स्वपरावभासकं यथा प्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम्" (स्वयंभूस्तोत्र) अर्थात् जो ज्ञान स्वयं या अन्य को जान सकता है, उसे प्रमाण कहते हैं। अकलंक ने प्रमाण को "प्रमाणविसंवादिज्ञानमनधिगतार्थाधिगम-लक्षणत्वात" कहा है, अर्थात् प्रमाण को अविसंवादी (संशय, विपर्ययादि से रहित) व अनधिगतार्थक होना चाहिए। अविसंवादी कह कर उन्होंने नवीनता प्रदान की है। अकलंक के अनुसार प्रमाण के दो भेद—(१) प्रत्यक्ष, (२) परोक्ष हैं। प्रत्यक्ष पारमार्थिक एवं सांव्यवहारिक है। परोक्ष के पाँच प्रकार हैं—(१) स्मृति, (२) प्रत्यभिज्ञान, (३) तर्क, (४) अनुमान एवं (५) आगम।

विद्यानन्द ने 'सम्यग्ज्ञान प्रमाणं' कहने के बाद पुनः परिभाषा का विस्तार किया "स्वार्थव्यवसायात्मकं सम्यग्ज्ञानं सम्यग्ज्ञानत्वात्" (प्रमाण परीक्षा) अर्थात् प्रमाण को सम्यग्ज्ञान हो नहीं, वरन् स्वार्थव्यवसायात्मक भी होना

चाहिए । माणिक्यनन्दी ने 'परीक्षामुख' में कहा है "स्वार्थपूर्वार्थव्यवसायत्मकं ज्ञानं प्रमाणं" अर्थात् जो स्व एवं किसी अन्य प्रमाण से न जाने गए (अपूर्वार्थ) ज्ञान का निश्चय करता है, उसे प्रमाण कहते हैं । उन्होंने एक अन्य परिभाषा "हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्" भी दी है। वादिदेवसूरि ने प्रमाणतत्त्वालोकालंकार में प्रमाण की परिभाषा देते हुए कहा है—"स्वपरव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणं" अर्थात् स्व व पर के निश्चायक ज्ञान को प्रमाण कहते हैं । आचार्य हेमचन्द्र ने 'प्रमाणमीमांसा' में प्रमाण का लक्षण करते हुए कहा है—"सम्यग्र्थानिर्णयः प्रमाणम्" अर्थात् जिस ज्ञान से सम्यक् निर्णय प्राप्त होता है, उसे प्रमाण कहते हैं । इस प्रकार समन्तभद्र व सिद्धसेन ने जैनेतर दर्शनों में प्रतिपादित प्रामाणिकता की ऐकान्तिक दृष्टियों को समन्वित करने का प्रयास किया है । विज्ञानवादी बौद्धों का प्रमाण स्वसंवेदी है व सौत्रांतिकों का परसंवेदी । मीमांसा, न्याय-वैशेषिक व सांख्य में भी प्रमाण को परसंवेदी ही माना गया है । इन विभिन्न मतों को समन्वित करते हुए उन्होंने प्रमाण को स्व व परावभासक कहा है ।

प्रमाण जिस पदार्थ को जिस रूप में जानता है, उसका उसी रूप में प्राप्त होना ज्ञान का प्रामाण्य कहलाता है । यह प्रमाण का धर्म है । जैन दर्शन में प्रमाण मीमांसा की प्रसिद्ध उक्ति है—प्रामाण्यनिश्चयः स्वतः परतो वा" अर्थात् प्रामाण्य का निश्चय स्वतः होता है या परतः । मीसांसा स्वतः व न्याय दर्शन परतः को मानते हैं, जबकि जैन दर्शन में सापेक्षतः दोनों को स्वीकार किया गया है । अभ्यासावस्था आदि में होने वाला निश्चय स्वतः प्रामाण्य का साक्षी है, जैसे पानी से प्यास मिटती है, इस ज्ञान के लिए दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, अभ्यास से स्वयं ज्ञात होता है । किसी अन्य आधार पर होने वाला प्रामाण्य निश्चय परतः प्रामाण्य का समर्थक है, जैसे महिलाओं को घड़े में पानी व हाथ में रस्सी लाते देखकर कुआ व उसमें स्थित पानी का ज्ञान हो जाता है ।

ज्ञान के साधन (प्रमाण) से जो प्राप्त होता है, उसे प्रमाण का फल कहते हैं । स्वप्रकाशता के कारण प्रमाण व उसके फल में अभिन्नता व पर-प्रकाशता के कारण भिन्नता होती है । प्रमाण के फल को साक्षात् एवं व्यवहित में विभक्त किया गया है । साक्षात् के दो प्रकार—"फलमर्थ प्रकाशः अज्ञान-निवृतिर्वा" अर्थात् अर्थ का प्रकाश एवं अज्ञान का नाश है । राग-बुद्धि, ग्रहण-बुद्धि, राग-द्वेष–उपेक्षा बुद्धि एवं प्रीति आदि व्यवहित के प्रकार हैं ।

प्रमाण के न होते हुए भी जो ज्ञान प्रमाण की तरह आभासित हो, उसे प्रमाणाभास कहते हैं । इसके भी कई भेद हैं, जैसे—

(१) प्रत्यक्षाभास–अस्पष्ट (विसंवादी) ज्ञान को प्रत्यक्ष मान लेना।

(२) परोक्षाभास स्पष्ट ज्ञान (अविसंवादी) को परोक्ष ज्ञान कहना।

(३) स्मरणाभास-गलत रूप में स्मृति का प्रयोग, जैसे—राम को श्याम नाम से याद करना,

(४) प्रत्यभिज्ञाभास—जैसे जुड़वा भाई में एक को देखकर दूसरे को समझना।

(५) तर्काभास—व्याप्ति न होने पर भी व्याप्ति मानकर तर्क प्रस्तुत करना।

(६) अनुमानाभास—साधन के दोषयुक्त होने पर भी उसके द्वारा (आधार पर) अनुमानित ज्ञान आदि।

पूज्यपाद के अनुसार न्याय प्रमाण समर्थित इन्द्रियार्थसन्निकर्ष ज्ञान प्राप्ति के लिए आवश्यक नहीं है। उसमें निम्न दोष हैं—जैसे, इससे सूक्ष्म, व्यवहित व विप्रकृष्ट वस्तुओं का ज्ञान न हो सकने के कारण सर्वज्ञता की सिद्धि नहीं होगी। इन्द्रिय की शक्ति सीमित होने के कारण इनके द्वारा अतीत आदि सभी वस्तुओं का बोध नहीं हो सकता। मन व चक्षु के अप्राप्यकारी इन्द्रिय होने से इनका सम्बन्ध वस्तुओं से नहीं हो सकता, अतः इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष नहीं हो सकता। उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र में सम्यग्ज्ञान के भेद बताते हुए कहा है—"मतिश्रुताऽवधि मनःपर्याय केवलानि ज्ञानं"। इसी को वे प्रमाण मानते हुए कहते हैं कि "तत् प्रमाणे। आद्येपरोक्षं। प्रत्यक्षमन्यत्।" अर्थात् ये दो प्रमाण स्वरूप हैं, प्रथम दो अर्थात् मति व श्रुति परोक्ष ज्ञान व अन्य तीन—अवधि, मनःपर्याय एवं केवल, प्रत्यक्ष ज्ञान हैं।

अन्त में प्रमाण एवं नय का अन्तर स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है। किसी भी वस्तु का सापेक्ष निरूपण करने वाला विचार नय है, अतः नय व प्रमाण दोनों ही ज्ञान हैं। किन्तु नय वस्तु के एक अंश का बोध कराता है और प्रमाण अनेक अंशों का। नय प्रमाण का एक अंश एवं प्रमाण अनेक नयों का एक समूह है।

—रिसर्च साइन्टिस्ट, दर्शनशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, जैन इन्स्टिट्यूट, वाराणसी–२२१ ००५

कविता

एक दीपक उपहार

☐ श्री फूलचन्द मानव

मैंने भी चाहा था,
नील गगन-सा शांत
और स्वस्थ रहे दिमाग।

मैंने भी चाहा था,
दिल को स्वच्छ, साफ रखना
किसी को न डसना।

मैंने भी चाहा था,
गीतगंगा में रहना
मस्त और व्यस्त
कुंठाहीन,
लेकिन आज है मन
ग़मग़ीन

धरती की चादर पर फैले
लहू के छींटों से
अभी परेशान है आदमी
अदना और अकेला।

मैंने भी चाहा था,
रंगीन स्वप्नों का सपन बनूं
और अपने लिए चुनूं
एक दीपक उपहार
एक ही बार

मैंने भी चाहा था।

—३५७ फेज ६,
मोहाली-१६००५५ (चंडीगढ़)

गीत

जिन-चरणों के सम्मुख

☐ वर्षा सिंह

"जिन" की वाणी में अमृत है,
उन चरणों में सब अर्पित है।

'ॐ णमोकार' का हर अक्षर,
जीवन का मर्म बताता है।
जो महावीर की शरण गया,
जग का सारा सुख पाता है॥

जो सदा चला सम्यक्–पथ पर,
जीवन उसका अभिनन्दित है।
"जिन" की वाणी में अमृत है,
उन चरणों में सब अर्पित है॥

सागर मंथन से मिली सुधा,
तो मिला हलाहल भी तो था।
पर त्याग सुधा, विषपान किया,
हाँ, पूजनीय केवल वह था॥

मत भूलो जीवन क्षणभंगुर,
है कर्म वही जो परहित है।
"जिन" की वाणी में अमृत है,
उन चरणों में सब अर्पित है॥

मिलता है मोक्ष क्षमा से ही,
यह धर्म हमें बतलाता है।
अपना कर धर्म अहिंसा का,
भव–पार मनुज कर पाता है॥

"जिन–चरणों" के सम्मुख 'वर्षा',
यह अखिल विश्व भी अर्पित है।
"जिन" की वाणी में अमृत है,
उन चरणों में सब अर्पित है॥

—एफ-३६, एम.पी.ई.बी. कॉलोनी
मकरोनिया, सागर-४७०००४



युवा शक्ति का दायित्व

□ श्री धनपत मेहता

जैन संस्कृति अति सुविशाल, सुसंगठित और उदार संस्कृति है। जैनों के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने मानव समाज के हित में बहुत ही व्यापक एवं सारयुक्त दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, सम्पूर्ण विश्व को मैत्री के तार से जोड़ा और अहिंसा का इतना विशाल छत्र मानव समाज को दिया कि जिसमें वर्ण भेद, प्रान्तीयता और जातीयता की संकुचित दीवारें खड़ी नहीं थीं। जहाँ मानव मात्र के लिए समान भूमिका प्रस्तुत की गई थी। प्राणीमात्र की वेदना को अपनी आत्मा की संवेदना की कसौटी पर परखा गया। भगवान महावीर के समय भी अनेक धर्म व सम्प्रदाय खड़े थे, जिनकी अपनी ही विभिन्न मान्यताएँ व परम्पराएँ थीं। कुछ ईश्वरवादी परम्पराएँ थीं तो कुछ अनिश्वर-वादी। कोई पदार्थ के नित्यत्व पर बल दे रहा था, तो कोई एकान्त रूप से अनित्यता को स्वीकार कर रहा था। ऐसे में भगवान महावीर ने अनेकान्त के माध्यम से इन सबके साथ समझौता किया, और सापेक्ष दृष्टिकोण से समस्त मान्यताओं पर सत्य और अहिंसा की मुद्रा अंकित करते हुए बहुत सुन्दर समन्वय की भूमिका प्रस्तुत की। विभिन्न सरिताओं का जैसे समुद्र में मिलना होता है, उसी तरह समग्र दृष्टियों का मिलन भगवान महावीर की इन मान्यताओं में उजागर हुआ।

परन्तु यह दुःख और खेद का विषय है कि सम्पूर्ण मानवता के लिए भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित 'अहिंसा परमो धर्म' के रास्ते से मानव शनैः-शनैः भटक गया, अथवा आज के भौतिकता के मोह में फंसकर वह अनैतिकता की ओर अग्रसर हो गया। अस्तु, परिणाम यह हुआ कि आज उसे अपने ही अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है, और ऐसा लगता है कि मानवता आज अभूतपूर्व संकट के दौर से गुजर रही है। आज अस्तित्व का प्रश्न व्यक्ति विशेष तक सीमित न रह कर विश्वव्यापी रूप धारण कर चुका है। विंस्टन चर्चिल ने भी एक स्थान पर कहा है कि हम तूफानों और संकटों से भरे युग में प्रवेश कर रहे हैं। मनुष्य ने कई क्षेत्रों में अपरिमित स्वामित्व प्राप्त कर लिया है, केवल एक अपने आप पर से उसकी पकड़ ढीली हो गई है। 'निज पर

शासन, फिर अनुशासन' वाली सूक्ति से वह दूर चला जा रहा है बजाय नजदीक आने के, और परिणाम सामने है—हिंसा, तनाव व मानव का दिग्भ्रमित होना।

आज मानवता त्रस्त है—युद्ध से, युद्ध के भय से, और युद्ध चल रहा है—आंतरिक और बाह्य दोनों स्तरों पर। प्रश्न यह है कि क्या भारत का युवा वर्ग, विशेष कर वह वर्ग जो कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा पा रहा है, अथवा शिक्षा दे रहा है, वह कुछ कर सकता है ? मेरा निजी विचार और विश्वास है कि भारत का युवा वर्ग सापेक्ष और सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए, विचारों में कुछ करगुजरने की तबदीली कर, भगवान महावीर के अहिंसा के मार्ग पर अग्रसर होकर अवश्य ही इसका ठोस समाधान दे सकता है। विश्व की भावी एकता और अखंडता की पृष्ठभूमि भारत की धार्मिक और सामाजिक संस्कृति में विद्यमान है, और जैन धर्म ने सहिष्णुता, उदारता, समन्वय और अहिंसा जैसे आदर्शों को संसार के सम्मुख रक्खा है। यदि हमारे अपने ही विश्वविद्यालय, हमारे अपने ही युवागण, हमारी अपनी ही सरकार, और हमारी अपनी ही शिक्षा-प्रणाली में उक्त उसूलों का, उक्त आदर्शों का समुचित समावेश किया जाय, तो सम्पूर्ण मानव समाज के लिए यह एक वरदान सिद्ध होगा, और हम मानव के निर्माण का महत्त्वपूर्ण प्रथम चरण पूरा कर सकेंगे।

हमारे विश्वविद्यालय दीप स्तम्भ हैं, संस्कृति-केन्द्र हैं, अतः विश्वविद्यालयों का मुख्य कार्य है कि वे उदार और सहिष्णु व्यक्तियों का निर्माण करें। परन्तु अफसोस है कि आजादी के ४० वर्षों बाद भी हमारी शिक्षा पद्धति सामाजिक चेतना विहीन और संस्कृति विहीन समाज का निर्माण कर रही है, और परिणाम सामने है कि हमारे युवा वर्ग में उद्दण्डता, अनुशासनहीनता व आक्रोश व्याप्त है। और तो और आत्मदाह व आत्म-हत्या जैसे दिल को दहला देने वाले भयंकर कदम हमारी शासन प्रणाली व सम्पूर्ण समाज के लिए एक दर्दभरी चुनौती हैं। क्या हमारे विश्वविद्यालयों एवं राजनेताओं का यही दायित्व है कि वे भारत की शस्य श्यामला-वसुंधरा पर, 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' से विभूषित धरा पर, ऐसा सामाजिक परिवेश खड़ा करें जहां दिलों में आग लगी हो, धरती लहू-लुहान हो, और देश का नव-निर्माण करने वाली युवा-पीढ़ी के जिस्म की होली खेली जा रही हो ? इन परिस्थितियों में स्वयं युवा वर्ग का क्या दायित्व है, यह एक विचारणीय और मुख्य प्रश्न है। युवा वर्ग अपने कर्तव्यों और दायित्वों की ओर उन्मुख होकर सुसभ्य एवं सुसंस्कृत समाज का निर्माण कर सकता है। युवा-शक्ति सापेक्ष और सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर असंभव को भी संभव कर सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि युवा वर्ग अपनी इच्छा-शक्ति को दृढ़ता के साथ भगवान महावीर के "अहिंसा परमो धर्म" के सिद्धान्त के साथ जोड़े। युवाओं को विचारों और क्रियाओं के साथ समन्वय करना होगा,

बुद्धि और भावना के साथ मेल-जोल करना होगा, भौतिकता और आध्यात्मिकता के साथ समन्वय करना होगा, विभिन्न मतों एवं विचारों में सामंजस्य स्थापित करना होगा—और तभी वे सही अर्थों में भारतीय संस्कृति के संदेश-वाहक बनेंगे।

यह सही है कि आज के दूषित और दिग्भ्रमित राजनैतिक, सामाजिक और शैक्षणिक परिवेश में युवा अपने आपको कुंठित, शक्तिहीन व दिशाहीन समझते हैं, एक प्रकार की हीनता की प्रवृत्ति का अनुभव करते हैं परन्तु अब वक्त आ गया है कि युवा वर्ग समाज में अपना स्थान पहचानें। उसे प्राप्त करने के लिए हिंसात्मक नहीं, अहिंसात्मक एवं रचनात्मक प्रयत्न करें। राष्ट्रीय संस्थानों, सामाजिक केन्द्रों व अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में अपनी उदारता, अहिंसा व सहिष्णुता की धाक जमाएँ, प्रजातांत्रिक विचारधारा, अनेकता में एकता, एवं आध्यात्मिक प्रगतिशीलता की भावना प्रतिष्ठित करें। यदि आज इस चुनौतीपूर्ण वक्त में युवा-वर्ग लड़खड़ा गया तो सम्पूर्ण मानवता लड़खड़ा उठेगी। अतः आज वक्त का तकाजा व युवा-पीढ़ी का विशेष दायित्व है कि भगवान महावीर के आदर्शों को आत्मसात कर अहिंसा के जरिये अपने अधिकारों को हासिल करें, समन्वय व सहिष्णुता के जरिये अपने कर्तव्यों को निभाएँ।

—रावतों का बास, जोधपुर—३४२००१

विकास-प्रक्रिया

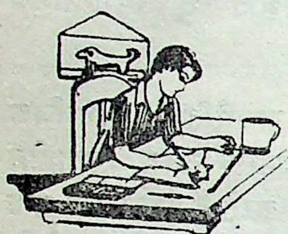
□ डॉ० सत्यपाल चुघ

बीज को
फोड़ने-चीरने से
उसकी
करके हत्या निर्मम
या मारधाड़ के बरबस
नहीं निकालता अंकुर माली
सुविधा-स्फूर्ति देता है खाली
स्नेह-सिंचन से
उर्वर धरती की
विनम्र धुपैले सम्बल की,

हाँ कभी-कभी
सद्‌भावी
डांट-फटकार से
तबियत करता साफ
सुस्ती देता झाड़
कमर देता है बाँध
ऊर्ध्व बढ़ पाने की।

१०, स्टॉफ क्वार्टर्स
किरोड़ीमल कॉलेज,
दिल्ली—७

बच्चों की कलम से :



बच्चों की संस्कृति के निर्माण-सूत्र

☐ अनुराधा जैन, कक्षा ८

आज हमारे आसपास के वातावरण में अक्सर हम बच्चों में बुराइयों की ओर शीघ्र गमन करने की प्रवृत्ति पाते हैं। क्या ऐसा वे स्वयं की प्रेरणा से करते हैं? शायद नहीं। यदि इस पर गहराई से विचार किया जाए तो हम पाएँगे कि उनमें इस प्रवृत्ति को अपनाने के पीछे अधिकांशतः माता-पिता या पास-पड़ौस का वातावरण ही जिम्मेदार होता है।

एक बालक या बालिका उस नाजुक डाली के समान होता है जिसे जिस तरह चाहें, मोड़ा जा सकता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन में पाया है कि यदि माता-पिता या बुजुर्ग अपने आचार-विचार एवं बच्चों के प्रति किए गए स्वयं के व्यवहार का मिलान निम्न सिद्धान्तों (जो कि विश्लेषकों ने अनुभूत किए हैं) से करें तो वे उनमें पक्ष-विपक्ष आचरण की तुलना कर यथोचित व्यवहार से उनके जीवन का एक सार्थक भविष्य निर्माण कर सकते हैं।

क्योंकि हो सकता है जो बर्ताव हम उनके साथ यह मानकर कर रहे हैं कि इसीमें इनकी भलाई है, लेकिन परिणाम इससे विपरीत जाते हुए लगते हैं तो हम इसके प्रति सजगता का प्रयोग कर उनमें श्रेष्ठ नागरिक निर्माण कर सकते हैं। भले ही आप माँ हैं, पिता, चाचा, चाची, दादा, दादी, ताऊ, ताई, नाना, नानी, मामा, मामी या कुछ भी हैं। आपके सामने बच्चा जो कुछ देखेगा, आपसे जैसा व्यवहार वह अपने या अपने समान किसी बच्चे के साथ पाएगा, वह वैसा ही गुण/अवगुण अपने में समाहित कर उसी पदचिह्न पर चलेगा। अतः इस दृष्टि से आपका दायित्व और भी अधिक बन जाता है।

आप आगे पढ़ेंगे और स्वयं ही स्वयं से पूछेंगे कि निम्न बिन्दुओं में से कितने ऐसे हैं जो आपके विचारों एवं व्यवहारों से मेल खाते हैं, और कितने ऐसे हैं, जिनको यदि आप अब परिवर्तित करदें तो स्थिति अब भी सुधारी जा सकती है। आइए, हम इस विषय से स्वयं को संलग्न कर निष्कर्ष निकालें, और बच्चों को देश का आदर्श नागरिक बनाने एवं श्रेष्ठ पुत्र, पुत्री बनाने में गर्व महसूस करें।

(१) बच्चों की अनावश्यक आलोचना करने पर वे आपका अपमान करने लगेंगे। इसलिए उनका अपमान कहीं उद्दण्डता न बन जाए, इसमें सुधार की आवश्यकता है।

(२) बच्चे यदि शत्रुता अनुभव करें तो झगड़ालू हो जाएँगे।

(३) यदि उनकी सबके सामने मजाक बनाएँगे या हँसी उड़ाएँगे तो वे शर्मीले हो जाएँगे।

(४) बच्चे यदि शर्मनाक जीवन जीने पर मजबूर हुए तो अपराध की ओर अग्रसर होंगे।

(५) बच्चों पर यदि प्रतिबन्ध उचित है और यदि उन्हें आपका विश्वास व प्रोत्साहन पूरा-पूरा है तो वे आपको अपना आदर्श मान लेंगे, एवं आत्म-विश्वासी होंगे।

(६) उनके प्रति सहिष्णुता बरतने पर वे धैर्यवान बनेंगे।

(७) यदि उनकी प्रशंसा करेंगे तो वे आपकी कद्र करेंगे।

(८) यदि उनको आपकी मान्यता मिल गई तो वे आप पर एवं स्वयं पर गर्व कर सकेंगे, चाहे वह आपका पुत्र हो या आपकी लाडली।

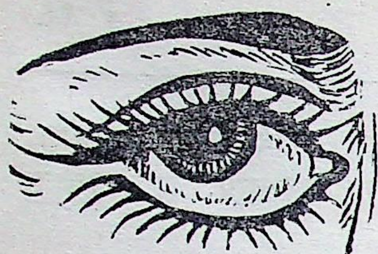
(९) यदि आप अपने पुत्र-पुत्री को सुरक्षा प्रदान करेंगे तो वे श्रद्धा रखना सीखेंगे। क्योंकि यदि वे आपसे सुरक्षित अनुभव नहीं करेंगे तो उनमें हीन भावना घर करेगी और वे डरपोक व चिड़चिड़े रहेंगे।

(१०) बच्चों का यदि मित्रता के साथ स्वागत किया जाए तो वे आसपास के संसार को खुशनुमा पाएँगे और उनमें अच्छी भावनाओं का विकास होगा।

(११) बच्चों के प्रति जो मानसिक भेदभाव रहता है [पुत्र-पुत्री को लेकर] उसे वे तुरन्त ताड़ जाते हैं और उनमें पराएपन की मन:स्थिति जागृत होती है। यदि इसे त्याग दें और उनके साथ ईमानदारी से समानता का व्यवहार रखें तो वे अपनत्व से भर सकेंगे और न्यायप्रिय बनेंगे।

(१२) यदि आप उन्हें सदैव शंकित भाव से देखेंगे एवं सदा प्रताड़ित करेंगे तो वे निश्चय ही गलत दिशा की ओर बढ़ेंगे और तब उन्हें रोकना संभव न होगा।

—सुपुत्री, श्री शशिकांत जैन
मंगलपुरा, झालावाड़ (राज.)



आँखें नीची क्यों ?

□ श्री नैनमल सुराणा

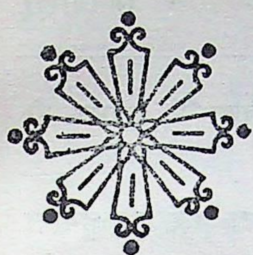
एक महानुभाव अत्यन्त धनी थे, और सदा सच्चाई से व्यापार करते थे। उनकी प्रकृति अत्यन्त ही सरल थी। उन्होंने जीवन में किसी के साथ कदापि धोखा नहीं किया। यदि उनके साथ कोई व्यक्ति धोखा करता तो भी वे यही मान लेते कि 'अपनी विषम स्थिति के कारण इसे धोखा करने के लिये विवश होना पड़ा होगा।'

वे नित्य प्रातः निर्धनों को सदाव्रत बाँटते, उन्हें वस्त्र तथा रुपये भी बाँटते थे। प्रातःकाल में उनके निवास के बाहर निर्धन तथा दुःखी मनुष्यों की भीड़ लग जाती थी। जब वे लोगों को दान देते तब उनकी आँखें नीची झुकी रहती थीं। वे दान लेने वालों को कदापि नहीं देखते थे।

उनके मित्र ने जब नीचे नेत्र किये उन्हें दान करते देखा तो वह यह रहस्य जानने के लिए उत्सुक हुआ कि वे सज्जन लोगों को दान देते समय अपनी दृष्टि नीची क्यों रखते हैं ? वे दृष्टि ऊपर उठा कर क्यों नहीं देखते ? उस मित्र ने आखिर उन महानुभाव को पूछ ही लिया, "आप निर्धनों तथा असहायों को रुपया-पैसा, वस्त्र, खाने-पीने का सामान आदि इतना दान में देते हैं, अतः आपको तो गर्व से अपना सिर ऊँचा रखना चाहिये, पर आप तो अपने नेत्र नीचे रखते हैं; ऐसा क्यों ? आपको धोखा देकर कुछ लोग दो-दो बार दान ले जाते होंगे। मैं इस बात का रहस्य नहीं समझ पाया, कृपया मुझे समझायें कि आप महादानी होकर भी अपने नेत्र नीचे क्यों रखते हैं ?"

मित्र की बात का उन महानुभाव ने उत्तर देते हुए कहा, "करणहार तो वह करतार है, देने वाला परमात्मा है, मैं तो केवल एक निमित्त हूँ। लोग व्यर्थ ही मुझे दानी मानते हैं और दानवीर आदि कहकर सम्बोधन करते हैं। ऐसे-ऐसे शब्द सुनकर मुझे लज्जा आती है, अतः मैं सदा अपनी दृष्टि नीची रखता हूँ।" यह सुनकर वह मित्र आनन्द-मग्न हो गया।

—सुराणा कुटीर
पुराना बस स्टेण्ड, सिरोही (राज.)



दूसरों के नहीं, अपने दोषों को देखें

□ श्री धर्मचन्द लोढ़ा

प्रायः हम देखते हैं कि आज हर व्यक्ति अपने दोषों को नजरअन्दाज करके दूसरों के दोषों को देखकर हँसता-हँसाता रहता है, लेकिन इस प्रकार हँसने से सामने वाले का नुकसान हो या न हो, आपको अवश्य उसके दोषों का बखान करने पर नुकसान पहुँचेगा।

यह बात सत्य है कि आज उत्थान की बात बता पाना उन सांसारिक लोगों के लिए कठिन हो गया है, सब एक दूसरे को अपने से नीचा दिखाना चाहते हैं। यह जानते हुए कि हमें सजा मिलेगी फिर भी हम बिना परवाह के हर्षित हो रहे हैं। मूढ़ अपनी मूढ़ता पर ही हर्षित होता है। जो मूढ़ हैं, वे अटक रहे हैं, भटक रहे हैं।

आज जो हमारे पास है यह भी नहीं रहेगा। फिर भी पाने की लालसा में जी-जान से जुटे हैं जिसके मिल जाने के बाद हाय-हाय करना पड़ेगा। हम हाय-हाय करने के लिए तैयार हैं। देखिये तो साहब बातें स्वर्ग की करते हैं पर जाने की तैयारी नर्क की किए बैठे हैं। धन की लालसा, स्त्री की कामना, पुत्र की इच्छा, यश का अभिमान, कितना कुछ पाने का मद लिए अहंकारी बने घूम रहे हैं।

हमें यह भी मालूम है कि जो मिला है वह सदैव हमारे साथ नहीं रहेगा। काम, क्रोध, मद, लोभ वे सब नरक के द्वार हैं। तो फिर हमें नरक जाने को तैयार रहना चाहिए। जब हमारी प्रिय वस्तु छिन जाती है, बिछुड़ जाती है तो हम पागलों की तरह विलाप करते हैं कि हाय मैं बरबाद हो गया। लुटने का दुःख वर्षों तक खटकता रहता है।

हम दुःखी रहते हैं, अपने दोषों को नहीं देखते, दूसरों के दोषों की हमें बहुत चिन्ता है। अमुक व्यक्ति चोरी कर कर रहा है, घूस ले रहा है, अत्याचार कर रहा है यह देखने में व्यर्थ हमारी शक्ति व्यय होती है, समय बरबाद होता है। जिसका प्रतिफल हम भोगते हैं। अतः दूसरों के नहीं, स्व-दोष का अवलोकन करें।

अपने दोषों को देखने का अभ्यास बढ़ा लें तो हमारा जीवन ही बदल जाये। परन्तु सांसारिकता के भाव में मदोन्मत्त कामी की तरह निरंकुश

अटल रहे हैं हम। अपने लक्ष्य से विमुख होकर पतन की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं हम।

ठहर कर, कुछ क्षण जीवन-सत्य को समझने की चेष्टा करें तो हमारा जीवन कलुषित न होकर प्रफुल्लित हो उठे।

क्षणिक सुख के लिए हम बड़े से बड़ा कष्ट सहने के लिए तैयार हैं जिसके पीछे दुःख ही दुःख है। हम बलशाली बनने की लगातार भूल कर रहे हैं। जिस बल पे हमें नाज है वह सदा रहने वाला नहीं है। फिर भी हमारी अकड़ नहीं जाती।

जरा सोचिए, देखें और जानें कि हमारा धर्म क्या है? सत्य क्या है? अपने अवगुणों को देखने का अभ्यास बढ़ा लें। धीरे-धीरे वेग शान्त पड़ जायेंगे। क्रोध, मान, माया, लोभ, काम का आधिपत्य खतम होता नजर आयेगा। जीवन सुखमय होकर आनन्दानुभूति में निमग्न हो जायेगा।

—बीसलपुर हाउस, अग्रवाल धर्मशाला के पीछे
देवली–३०४८०४ (टोंक) राज०

पाप और पुण्य

□ श्री कन्हैयालाल गौड़

एक राजा किसी साधु के पास गया। उसने पूछा—मुनिवर! आपके पास क्या है? सन्त ने कहा—मेरे पास दो वस्तुएँ हैं—पाप और पुण्य। राजा ने पूछा—आप संयम पालकर कहाँ जायेंगे? सन्त विशिष्ट सन्त थे। वे अपने भविष्य को अच्छी तरह जानते थे। अतः उन्होंने उत्तर दिया—मैं मोक्ष प्राप्त करूँगा। राजा ने प्रश्न किया—फिर पाप और पुण्य को कहाँ छोड़ जायेंगे? सन्त ने उत्तर दिया—पाप और पुण्य मोक्ष में साथ नहीं जा सकते। देखो! जो साधु-सन्तों की बुराई करेगा उसे पाप दे जायेंगे और जो सन्तों की प्रशंसा-स्तुति करेगा उसे पुण्य दे जायेंगे।

—१७, लाला लाजपतराय मार्ग उज्जैन-४५६००६

दो गीत

[१]

रे मन, क्यों घबराए ?

□ श्री हरिकृष्णदास गुप्त 'सियहरि'

सुख-दु:ख आएँ-जाएँ,
रे मन, क्यों घबराए ?

कोई ऊपर आए,
कोई नीचे जाए,
औ' फिर पलटा खाएँ;
झूला खूब झुलाएँ।
रे मन, क्यों घबराए ?

जल-कण ऊपर चढ़ते,
खूब पवन से लड़ते,
फिर नीचे आ पड़ते;
रवि-घन खेल खिलाएँ।
रे मन, क्यों घबराए ?

निशि-आँखों के तारे,
तारे कितने प्यारे !
दिन में कहाँ बिचारे !
रात फिर खिलखिलाएँ।
रे मन, क्यों घबराए ?

धूप जलाती काया,
शीतल करती छाया,
धूप-छाँह की माया,
बौरों को भरमाए।
रे मन, क्यों घबराए ?

सुख पाकर फूल नहीं,
दु:ख में 'हरि' कूल नहीं,
'तत्व' कभी भूल नहीं;
समय सहज कट जाए।
रे मन, क्यों घबराए ?

—८८२, गली बेरीवाली,
कूचा पातीराम,
दिल्ली–११०००६

[२]

फिर भरो अहिंसा का प्रकाश

□ डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

[१]

ऋषियों-मुनियों की धरती पर,
नर-मेध नित्य अब होते हैं।
कर रहे हिंस्र पशु अट्टहास,
गीता-कुरान सब रोते हैं।
बर्बरता नंगी नाच रही,
भय-ग्रस्त हुआ सूरज युग का।
हे महावीर ! रोको विनाश,
दो आत्म-ज्ञान का नव प्रकाश ।।

[२]

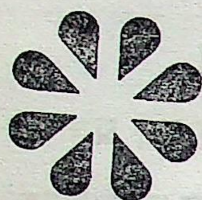
सत्ता-विलास का लोभ बढ़ा,
जीवन के मूल्य विलीन हुए।
छल-छद्म घोर पाखण्ड ओढ़,
मानव पशु से भी हीन हुए।
घिर रही चतुर्दिक नाश-घटा,
अंगार भरे अन्यायों के।
हे महावीर ! मानव-मन में,
फिर भरो अहिंसा का प्रकाश ।।

[३]

सब में ममता, सब की समता,
जन-हृदय प्रेम का सागर हो।
विद्वेष - वैर - प्रतिशोध भाव,
सब मिटें शांति चिर घर-घर हो।
हे महावीर ! हो उदय सत्य,
सब करें क्षमा में नित्य लास।
हे महावीर ! मानव-मन में,
फिर भरो अहिंसा का प्रकाश ।।

—४३/८४, उत्तरी सुन्दरवास,
उदयपुर–३१३००१

मार्मिक संस्मरण



संवेदना के क्षितिज

□ श्री जयनारायण गौड़

लखनऊ की सर्दियों की प्रात:कालीन रेशमी धूप का आनन्द लेते हुए अजय माथुर लॉन पर चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे। राज्य सेवा में उच्च पद पर रहते हुए यह अवर्णनीय सुख उन्हें नसीब न था। सुबह से टेलीफोनों की भरमार व उनके बीच उन निर्जीव मगर प्रतीक्षारत फाइलों के अम्बार का मानसिक बोझ। सेवानिवृत्ति के बाद अब दिनचर्या को अपनी इच्छानुसार ढालने की मुराद पूरी हुई क्योंकि अब पूर्व की व्यस्त दैनिक समयसारिणी के बन्धन से वे मुक्त थे।

तभी एक व्यक्ति बंगले का दरवाजा खोल कर अन्दर घुसा व झिझकते हुए आगे आकर उसने अजय के पाँव छुए। अजय उसे बिलकुल नहीं पहचान सके। आगन्तुक ने बताया कि उसका नाम रामलाल है। वह इलाहाबाद में राज्य लोकसेवा आयोग के कार्यालय में ड्राईवर है। उसने एक-दो बार माथुर साहब, जो तब आयोग के सदस्य थे, की कार भी चलाई थी। अजय तब भी उसको नहीं पहचान पाये तो रामलाल ने बताया कि उन्हीं दिनों में उसका तबादला इलाहाबाद में ही जिलाधीश कार्यालय में हो गया था, शायद वह वहाँ से माथुर साहब को जरूरत पड़ने पर आया हो। अजय की तेज याददाश्त ने तो अब भी उसका साथ नहीं दिया मगर रामलाल ने अपनी कहानी आगे बढ़ाई व कहा कि वह और उसकी पत्नी किसी कार्य से लखनऊ आए थे, कल ही फिसलने से उसकी पत्नी की टांग का फ्रैक्चर हो गया है।

सुनकर अजय ने द्रवित होते हुए कहा कि यहाँ के हड्डियों के नामी गिरामी डॉक्टर उनके रिश्तेदार भी हैं अत: उन्हें कह कर वे नि:शुल्क चिकित्सा की व्यवस्था करवा देंगे। मगर रामलाल भावातिरेक से बोला कि साहब आपकी बड़ी कृपा है मगर फ्रैक्चर का एक्स-रे आदि करवा कर प्लास्टर भी चढ़वा लिया है। डॉक्टर साहब ने कहा है कि तीन-चार दिन और यहाँ रह जाओ, पुन: देखेंगे कि हड्डी ठीक से जुड़ी भी है या नहीं? मैं यहां धर्मशाला में ठहरा हूँ। आज महीने की दो तारीख है, इलाहाबाद पिछले महीने की तनख्वाह लेने मुझे जाना है मगर किराए के लिए पैसे नहीं हैं। साहब, आप मुझे केवल ५० रुपए देवें जिससे बस से इलाहाबाद पहुँच जाऊँ। तनख्वाह व छुट्टी लेकर ही शाम तक वापस आ जाऊँगा या तो आज ही व यदि आज

रात देर से लौटा तो कल प्रातःकाल ये पैसे आपको लौटा दूंगा। यहाँ लखनऊ में मेरी पहचान का कोई नहीं। आपके पास बड़ी आशा व विश्वास के साथ आया हूँ साहब।

अजय ने पास बैठी पत्नी की ओर देखा व दोनों अन्दर गए। पत्नी बोली—यह व्यक्ति मुझे सरासर फ्रॉड लगता है। उसकी कहानी के छिद्र ही बताते हैं कि यह मनगढ़ंत है। पत्नी ने यह भी कहा कि कुछ महीने पहले आपको उस फलां व्यक्ति ने इसी तरह बेवकूफ बना दिया था व १०० रुपए ले गया था। अजय बोले—तुम ठीक कहती हो कि इस रामलाल की कहानी में कुछ विसंगतियाँ हैं व हो सकता है कि यह रामलाल जिसे मैंने जीवन में कभी नहीं देखा, वास्तव में चार सौ बीस हो। मगर फिर भी यह नगण्य धनराशि मुझे इसे देनी ही है।

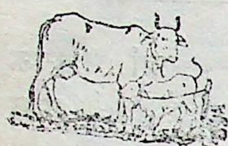
पैसे दे दिए गए व जैसा कि अजय की पत्नी ने कहा था वही हुआ। तथाकथित रामलाल द्वारा पैसे लौटाने के वादे वाला प्रातःकाल नहीं आया।

अभी पिछले दिनों किसी काम से लखनऊ गया था तो अपने पुराने मित्र अजय से भी मिलने गया। भाभी ने बड़े विस्तार से चित्रोपम वर्णन करते हुए चटखारे लेते हुए उपर्युक्त राम-कहानी सुनाते हुए अपने पतिदेव के आचरण को बेवकूफी-मिश्रित भोलेपन की संज्ञा दी।

अजय बोले—अब तुम्हीं बताओ जय! रामलाल के झूठे होने की सम्भावना के बावजूद भी क्या मैं यह खतरा उठा सकता था कि उसके सच्चे होने की दशा में वह असहाय यहाँ से निराश होकर जाए व परिणामस्वरूप एक आपातग्रस्त इन्सान की इन्सानियत में से विश्वास ही उठ जाए। मैं किसी भी सूरत में ऐसा खतरा उठाने को तैयार नहीं था विशेषतः जबकि ५० रुपए की छोटी राशि मेरे लिए अधिक मायना नहीं रखती।

भाभी अजय के इस तर्क से अब भी अप्रभावित मगर जय की आँखों में तो अजय इन्सान के चोले में देवता। पाठक व पाठिकाओं को इस प्रयोग में इन पति व पत्नी में कौन ठीक लगेगा, यह तो वे ही जानें।

—हेमांचल, सी–६८, राम मार्ग, तिलक नगर,
जयपुर–३०२ ००४



पशु-वध और हमारी संस्कृति

□ श्री सुनील जैन
[ऑनरेरी एनीमल वेलफेयर ऑफिसर]

किसी देश की सुसंस्कृति ही उसकी महानता की द्योतक होती है। सुसंस्कृति का तात्पर्य मानवीय गुणों से है और मानवीय गुण अहिंसा, सत्य, दया, सहिष्णुता, क्षमा आदि भावनाओं का नाम है । जब विश्व ने उपर्युक्त गुणों का दर्शन भारतीय नागरिकों में किया तभी समस्त विश्व ने एक स्वर में भारत को 'विश्व गुरु' कहा । जिस देश ने प्रकृति के गुणों से जुड़कर पशु-धन एवं प्राकृतिक सम्पदा को सर्वोच्च स्थान दिया, तभी समस्त विश्व ने भारत देश को 'सोने की चिड़िया' का दर्जा दिया । जहाँ पशुओं, वृक्षों, नदियों और पर्वतों को पूजनीय माना गया, वहाँ मानव को ऊँचे दर्जे में आंका जाता होगा यही सुसंस्कृत व्यक्तित्वों के लिए एक सोपान है । ऐसी है हमारी भारतीय संस्कृति ।

प्राचीन भारतीय पूजनीय धर्मशास्त्रों, वेदों और उपनिषदों में पशुओं को पूजनीय माना गया है और पशु-वध को ऐसा पाप माना है जिसका प्रायश्चित्त सम्भव नहीं है । भारतीय नागरिकों को इन पूजनीय परम्पराओं के अनुकरण के अभाव से होने वाली हानियों का सम्पूर्ण ज्ञान था । इन सब हानियों को आम जनता को समझाने की बजाय उन्होंने पशुओं को पूजनीय बताकर उनके वध को रोका । तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में उन्हें यही उपाय उचित लगा होगा। परन्तु, आज उन दुर्लभ संस्कारों से हटकर पुनः पशुओं पर अत्याचार और उनका वध किया जा रहा है । हमारी गौरवमयी परम्पराओं से आज हम इतने दूर होते जा रहे हैं कि अपनी विकास योजनाओं को हमारी अपनी परिस्थितियों के अनुरूप प्रतिपादित नहीं कर सकते । हमारी विकास योजनायें हमारी ग्रामीण परम्पराओं के विपरीत होती हैं । यह इन्हीं अधकचरी विकास योजनाओं का परिणाम है कि प्रति वर्ष हमें अपने सच्चे राष्ट्र-धन, पशु-धन का निर्यात करने पर विवश होना पड़ता है—पशु, मांस, चमड़े के वस्त्र एवं चमड़े की अन्य वस्तुओं के निर्यात के प्रति विशेष उत्साह दिखाया जा रहा है—जो अति खेदनीय है ।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किये गये सर्वेक्षणों से यह पता लगता है कि जिन देशों में मांसाहार किया जाता है, उन देशों में मानव का मानसिक स्तर, उन देशों की अपेक्षाकृत बहुत नीचा पाया गया है, जहाँ आमतौर पर शाकाहार किया जाता है । जरा विचार करें—मांसाहार से क्या मानसिकता

में विकार नहीं आयेगा ? मांसाहारित देशों में हत्यायें, लूटमार, चोरी, डकैती, अमानुषिक व्यवहार जीवन की आम बात है तथा पाशविकता उनमें भरी पड़ी है। परन्तु भारत सरीखे देश में जहाँ अधिकतर शाकाहार में विश्वास रखते हैं, वहाँ मानवीय सभ्यता एवं मानसिक स्तर पराकाष्ठा पर पहुँचा है। परन्तु पिछले कुछ वर्षों में हमारे देश में भी—दंगे, आतंकवाद, अलगाववाद, साम्प्रदायिकता आदि ने जोर पकड़ लिया है। यदि निष्पक्ष सर्वेक्षण किया जाय तो पता लगेगा कि हमारा झुकाव पाशविक संस्कृति की ओर रहा है तथा मांसाहार के प्रति भी बढ़ा है। हमारे देश में भी कई प्रकार की कुरीतियाँ पिछले ३०० वर्षों से बढ़ी हैं, जैसे देवी-देवताओं के नाम पर बलि के रूप में और शौक के लिए पशुओं का अंधाधुंध वध करना। इसके पीछे एक कारण तो सिर्फ जिह्वा-तृप्ति है तथा दूसरा मांसाहार को शाकाहार की अपेक्षा अधिपौष्टिक मानने का भ्रम है।

यह तो हम सभी मानव जानते हैं कि वे सभी प्राणी (मनुष्य सहित) जिनमें जीवन है, चेतना है, सुख चाहते हैं और दुःख से घबराते हैं। किसी भी प्राणी को जिसमें जीवन है, कष्ट पहुँचाना हिंसा है। जिस प्रकार हमें दुःख-दर्द होता है उसी प्रकार सभी जीवधारियों को दुःख-दर्द होता है। पशु और वृक्ष बेचारे मूक हैं—बोल तो सकते नहीं, अपने कष्टों को प्रकट भी नहीं कर सकते। उनके पास बुद्धि और साधन उपलब्ध नहीं हैं जिससे कि अपना बचाव मानव से कर सकें। परन्तु एक शास्त्रोक्ति यथा—"जीवो जीवस्य भोजनम्" अर्थात् जीव ही जीव का भोजन है, का गलत तात्पर्य लेते हैं। कहते हैं कि "बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है", इस तरह शास्त्र भी हमें मांसाहार की प्रेरणा देते हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। यह उक्ति सिर्फ पशुओं, पक्षियों, जलचरों के प्रयोग में लाई गई है। यदि इस उक्ति का प्रयोग मानव के लिये होता तो अब तक मनुष्य, मनुष्य को अपना भोजन बना चुका होता। यही कारण है कि आज इसी प्रवृत्ति के कारण मानव अपनी सुसभ्यता को छोड़ क्रूरतम आतंकवाद, हिंसा, साम्प्रदायिकता, दंगा-फसाद जैसे अवगुणों से घिरा हुआ है तथा मानवीय गुणों यथा—अहिंसा, दया, सत्य, सहिष्णुता, क्षमा आदि से परे होता जा रहा है।

पशुओं का अबाध्य शिकार तथा वृक्षों की कटाई कर देने की वजह से हमारी प्राकृतिक सम्पदा निरन्तर नष्ट होती जा रही है। कल्पना कीजिये, कोई घना जंगल है परन्तु उसमें जीव-जन्तुओं का निवास नहीं है तथा जंगल नहीं है उसमें केवल जीव-जन्तुओं का निवास है। क्या बिना जीव-जन्तुओं के कोई जंगल टिक सकता है ? हमारी यही प्राकृतिक सम्पदा नष्ट होने से आज यथावत वर्षा का अभाव हो रहा है। हमारी अधिकांश कृषि वर्षा की

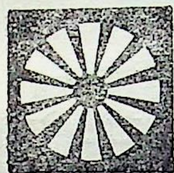
कृपा पर आश्रित है । यदि हमारी प्राकृतिक सम्पदा (जंगल, जीव-जन्तु) मौजूद रहती तो हमारे जल-विद्युत स्रोतों में कमी नहीं आती, देश अतिवृष्टि और अनावृष्टि से बचा रहता, नदियों में भरपूर पानी बनाये रखने की क्षमता होती क्योंकि मिट्टी का कटाव रुकता तथा यही धरती अधिकाधिक सोना उगलने की क्षमता रखती । परन्तु यह सब तभी सम्भव हो सकता है जब हमारी प्राकृतिक सम्पदा—वृक्षों, पशुओं एवं अन्य जन्तुओं की रक्षा होती तथा जंगलों की कटाई और पशुओं के वध, शिकार पर पूर्णतः रोक लगी होती ।

प्रकृति के नियमों को सही ढंग से प्रतिपादित करना ही प्रकृति की रक्षा करना है । प्रकृति की रक्षा हमारे स्वयं के संरक्षण का निरूपक है। प्राकृतिक वन सम्पदा एवं पशु सम्पदा से मनुष्य अमूल्य पदार्थ प्राप्त कर रहा है परन्तु फिर भी उसे नष्ट करने पर क्यों तुला है ? प्रकृति के नियमों का यदि सही प्ररूपण होता रहे तो प्रकृति सुव्यवस्थित प्रवर्तित होती रहेगी । मानव द्वारा प्रकृति के नियमों के विरुद्ध अप्राकृतिक प्रवृत्ति ही प्रकृति को असन्तुलित करती है जिसके परिणामस्वरूप यह स्वयं को असुरक्षित महसूस करता है । जो जीव-जन्तु हिंसक हैं; जिनका जीवन ही सिर्फ अन्य प्राणियों के भोजन पर निर्भर रहता है, इसे अप्राकृतिक कहना अनुचित है । परन्तु मानवीय गुण कभी पाशविक नहीं हो सकते । मानव द्वारा यदि ऐसी हिंसक प्रवृत्ति की जाती है तो वह अप्राकृतिक है क्योंकि मनुष्य के लिए प्रकृति अनेक निर्विकार पदार्थ उसके जीवन-यापन हेतु पैदा करती है ।

आज आवश्यकता है, मनुष्य को उसके वास्तविक गुणों से अवगत कराने की तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति को स्मरण कराने की जिसके आचरण से विश्वमानव मानव ही नहीं अपितु देवता-तुल्य होता जाता है । यह जागृति मनुष्य मात्र में लानी होगी कि वह इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है तथा अन्य प्राणियों से उसका सम्बन्ध उच्चकोटि का तभी हो सकता है जब सृष्टि के प्राकृतिक स्वरूप को वह समझे । उसकी श्रेष्ठता अन्य जीवधारियों के भक्षण में नहीं, अपितु उनके संरक्षण में है । तो, आइये । प्रकृति के अनुकूल आचरण करने की प्रतिज्ञा लें, अप्राकृतिक प्रवृत्तियों को त्याग कर मूल संस्कृति को अपनाने की प्रतिज्ञा लें तथा मानव मात्र को उसके सदगुणों से पुनः जीवन्त करदें ।

—४९२, प्रेमकुटीर, सुखाड़िया मार्ग, उदयपुर

चिन्तन :



मानव-सेवा

□ श्री टीकमचन्द हीरावत

मानव का परम धर्म है स्व का कल्याण एवं सुन्दर समाज की रचना। स्व कल्याण का अर्थ है अपनी स्वाधीनता किसी पर निर्भर न हो और सुन्दर समाज का अर्थ है दूसरे के अधिकार को सुरक्षित रखना। यही मानवता का गुण है। सुख की दासता से मुक्त होने का सरल उपाय यही है कि हमारे पास जो कुछ है, उसे सर्वहितकारी प्रवृत्ति में लगा दें। अगर हम किसी की सेवा करते हैं तो इसका अर्थ यही है कि हम प्रवृत्ति करने का राग गाल रहे हैं, न कि किसी का कष्ट दूर कर रहे हैं। कोई किसी का दु:ख दूर कर ही नहीं सकता है। हृदय सेवा, त्याग व प्रेम से भर जाता है। अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि सुख भोगने से अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं और सेवा द्वारा सुख का सदुपयोग करने से प्राणी का कल्याण तथा सुन्दर समाज का निर्माण होता है जो वास्तव में मानव जीवन है। सुख-भोग की प्रवृत्ति तभी होती है जब हम दु:खियों की ओर से विमुख हो जाते हैं। दु:खियों को बिना अपनाये क्या हृदय में करुणा उदय हो सकती है? करुणा के बिना क्या आसक्ति मिट सकती है? अनासक्ति के बिना क्या उदार हो सकते हैं? उदारता के बिना क्या कोई महान् हो सकता है? मानवता के बिना क्या कोई अमरत्व प्राप्त कर सकता है? यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई हृदयशील प्राणी सुख नहीं भोग सकता है। हाँ, यह अवश्य है कि सुख का सदुपयोग-सेवा कर सकता है। हम एकेन्द्रिय जीव के भी ऋणी हैं। अगर सूरज न होता तो हम कैसे देख सकते थे? आकाश नहीं होता तो कैसे सुन सकते थे? हवा नहीं होती तो साँस कैसे ले सकते थे? जब एकेन्द्रिय जीव के ऋणी हैं तो जिस समाज ने हमको जीवन दान दिया है, उसके कितने ऋणी हैं? सेवा मार्ग की साधना से जब स्वार्थ भाग गलित हो जाता है, तब बहुत ही सुगमतापूर्वक निष्कामता प्राप्त कर साधक उस जीवन को प्राप्त कर लेता है जो सभी वस्तु, अवस्था से अतीत है। कोई यह कहे कि हम राग के बिना सेवा कैसे कर सकते हैं? तो कहना होगा कि सेवा करने के लिए राग अपेक्षित नहीं है अपितु उदारता की अपेक्षा है, कारण कि उदारता आ जाने पर पराया दु:ख अपना दु:ख बन जाता है फिर अपना सुख वितरण करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं होता।

वास्तविक सेवा क्रिया रूप से भले ही सीमित होवे, किन्तु भाव रूप से असी हो जाती है । क्योंकि सेवा का जन्म ही स्वार्थभाव के मिट जाने प होता है ।

सेवा चाहे एक व्यक्ति की की जावे या सारे समाज या संसार की उसके फल में कोई अन्तर नहीं आता क्योंकि सेवा का फल भोग नहीं है, सेवा का फल निर्मलता है जो वास्तव में मानवता है । निर्मलता प्राप्त करने के लि सेवा करनी चाहिए । अपने पास जो कुछ है वह संसार से ही मिला है, यह सब को मालूम होगा । यहाँ तक कि जिस शरीर को तथा योग्यता को आज ह अपना कहते हैं, वे भी संसार द्वारा ही मिले हैं, उसे संसार सेवा में लगा दे चाहिए । ऐसा करने से संसार पर कोई अहसान नहीं होता और न अपने क कोई अभिमान होना चाहिए ।

आज हमें आध्यात्मिक नैतिकता की बजाय भौतिकवादी नैतिकता क जरूरत है । जहाँ धर्म सिर्फ ईश्वर, जन्म-मरण, स्वर्ग-नरक, पुनर्जन्म में ह न रह जावे, बल्कि हमें उस जगह पहुँचा दे जहाँ हमारा कर्तव्य समाज के लि पुकारता है । सेवा ही हमारी प्रवृत्ति का मार्ग होना चाहिए ।

मुझे अच्छी तरह याद है । एक बार स्वर्गीय आचार्य श्री हस्तीमल म. से एक श्रावक ने कहा कि गुरुवर ! आप संघ व समाज की सब प्रवृ को छोड़कर पूर्ण ध्यान-साधना में लग जावें, आपका शरीर भी अशक्त ह रहा है । आचार्य भगवन्त ने फरमाया कि मैं समाज का ऋणी हूँ और अन्त तक समाज की सेवा करता रहूँगा । कितना महान् आदर्श था । आपका कहन था कि चाहे व्यक्ति किसी भी रूप में समाज की सेवा करता रहे किन्तु सा में उसके कुव्यसन छुड़ावे जिससे उसके जीवन का निर्माण हो स और पाँ महाव्रत / अणुव्रत जो नैतिकता के आदर्श हैं उन्हें ग्रहण करे । आज हम चा सारे संसार में देखलें सेवा का मूल्य बढ़ता जा रहा है । क्रिश्चनिटी आज ए धर्म न होकर सारे विश्व में मानव सेवा की अवधारणा को स्वीकर कर रखा उसी प्रकार हमें भी अपने प्रवृत्ति मार्ग में सेवा को ही प्रमुख रखें ।

—कार्याध्यक्ष, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपु

ज्ञान की साधना और स्वाध्याय के द्वारा की जाने वाली भाव-से बहुत बड़ी सेवा है ।

— आचार्य हस्

प्रश्नमंच कार्यक्रम [५७]



प्रार्थना*

प्रस्तोता—श्री पी० एम० चौरड़िया

[१]

(१) **प्रश्न**—प्रार्थना क्या है ?

उत्तर—(१) प्रार्थना प्रभु से मिलने का एक सुगम साधन है।

(२) किए हुए पापों के परिणामस्वरूप होने वाली पश्चात्तापात्मक प्रक्रिया प्रार्थना है।

(३) प्रार्थना आत्म-शुद्धि का आह्वान है।

(४) अंतर के शुभ को उकेरने की प्रक्रिया प्रार्थना कहलाती है।

(५) प्रार्थना हृदय की करुण पुकार है।

(२) **प्रश्न**—प्रार्थना करने वाले कितने प्रकार के व्यक्ति होते हैं ?

उत्तर—दो प्रकार के—

(१) लौकिक–सुखाकांक्षी वाले।

(२) आत्म–सुखाकांक्षी वाले।

(३) **प्रश्न**—प्रार्थना से क्या उपलब्धि होती है ?

उत्तर—(१) शान्ति, (२) विनय, (३) साहस, (४) पुरुषार्थ, (६) चंचलता का अभाव, (७) ज्ञान का विकास।

[२]

(१) **प्रश्न**—आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रार्थना क्यों अनिवार्य है ?

उत्तर—कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) की अग्नि को सच्ची प्रार्थना से शांत किया जा सकता है। सच्ची प्रार्थना से मानसिक भार हलका होता है,

*श्री एस. एस. जैन युवक संघ, मद्रास द्वारा आयोजित कार्यक्रम जिसमें स्वाध्याय संघ, युवक संघ एवं बालिका मण्डल ने भाग लिया।

—सम्पादक

सत् ज्ञान का उदय होता है, अन्धकारमय हृदय में प्रकाश होता है, अतः स्प
है कि आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रार्थना की अत्यन्त आवश्यकता है।

(२) **प्रश्न**—वास्तविक प्रार्थना किस प्रकार की जाती है ?

उत्तर—पूर्ण तन्मय होकर प्रभु के मार्ग और आदेश का अनुसरण कर
ही वास्तव में प्रार्थना करना है।

(३) **प्रश्न**—प्रार्थना के स्वरों में कब शक्ति आती है ?

उत्तर—प्रार्थना सर्वांत:करण होनी चाहिए। केवल जबान से बो
प्रार्थना कारगर नहीं हो सकती। प्रार्थना के साथ दृढ़ भावना और उसके सा
साथ तदनुरूप आचरण भी होना चाहिए। ऐसा होने से ही प्रार्थना के स्वरों
शक्ति आती है।

[३]

(१) **प्रश्न**—दैवी भावनाओं को प्रदीप्त करने और आत्मा का प्रक
फैलाने के लिए प्रार्थना ही सर्वोत्कृष्ट साधन किस प्रकार है ?

उत्तर—जब मनुष्य ईश्वर को अपने सम्मुख मान, अपने दोष स्वीक
कर, आत्मा से करुण पुकार निकालता है, तब उसे आन्तरिक शांति प्राप्त हो
लगती है, आसुरी विकार धुल जाते हैं, विनम्रता, करुणा, दया, सहानुभू
आदि गुण प्रार्थना के द्वारा ही विकसित होते हैं।

(२) **प्रश्न**—प्रार्थना का मुख्य उद्देश्य क्या है ?

उत्तर—आत्मा का परमात्मा के साथ मिलन, आत्मा का परमात्मभाव
परिणमन।

(३) **प्रश्न**—सच्ची प्रार्थना कब होती है ?

उत्तर—जहाँ मन की सारी शक्तियाँ एकाग्र हो जाती हैं और अ
आराध्यदेव के आगे समर्पित हो जाती हैं, वही सच्ची प्रार्थना है। सर्व
समर्पण में न तो कोई लेन-देन होता है, न कुछ मांग होती है और न क
प्रतिदान की भावना होती है।

[४]

(१) **प्रश्न**—नात्यद्भुतं भुवन भूषण भूतनाथ,
भूतैर्गुणैर्भवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।

तुनया भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ।।

उपर्युक्त छन्द में आचार्य मानतुंग ने प्रभु के समक्ष क्या प्रार्थना की है ?

उत्तर—प्रभो ! आपकी स्तुति करने वाला आप जैसा ही बन जाए, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? वह भगवान् ही क्या जो अपने भक्त को अपने जैसा न बनाए ?

(२) **प्रश्न**—चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागरवर गंभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ।।

लोगस्स के पाठ की उपर्युक्त दो पंक्तियों का अर्थ क्या है ?

उत्तर—जो सिद्ध भगवान् चन्द्रमा की तरह निर्मल हैं, सूर्य से अधिक तेजस्वी एवं प्रकाशमान हैं, सागर की तरह गम्भीर हैं, वे मुझे सिद्धि दें ।

(३) **प्रश्न**—जो देवाण विदेवो, जं देवा पंजलि नमं संति ।
तं देव-देव महियं, सिरसा वंदे महावीरम् ।।

उपर्युक्त प्रार्थना का भावार्थ बताइये ?

उत्तर—जो देवों के भी देव हैं, जिनको देवगण अंजलि जोड़े नमस्कार करते हैं, उन देव-देवों से पूजित भगवान् महावीर स्वामी को सिर झुकाकर मैं वंदन करता हूँ ।

[५]

(१) **प्रश्न**—प्रार्थना के मुख्यतया तीन प्रयोजन कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—(१) सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति हेतु या किसी स्थूल अभाव की पूर्ति के लिए प्रार्थना की जाती है—जैसे—अन्न, वस्त्र, नौकरी, धन, स्त्री, रोग-निवारण आदि के लिए ।

(२) आत्मिक उन्नति के लिए—जैसे विकारों-कषायों को शांत करने के लिए, तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आदि ।

(३) इस प्रकार की प्रार्थना में मांगना कुछ नहीं है । केवल प्रभु-ध्यान और भक्ति-प्रेम में लीन होना होता है । आत्म-साक्षात्कार ही उसका लक्ष्य है । यह सर्वोत्कृष्ट प्रार्थना है ।

(२) **प्रश्न**—प्रार्थना में रही हुई अनन्त शक्ति को किस प्रकार पहचाना जा सकता है ?

उत्तर—'श्रद्धा' से ।

(३) **प्रश्न**—प्रार्थना करने वाले प्रार्थी में कौन-कौन सी योग्यताएं अपेक्षित हैं ?

उत्तर—(१) निरभिमानता, (२) एकाग्रता, (३) सहनशीलता, (४) निस्पृहता, (५) मृदुभाषित्व, (६) सरल स्वभाव, (७) संवेग भाव ।

[६]

(१) **प्रश्न**—प्रार्थना से क्या लाभ होते हैं ?

उत्तर—प्रार्थना से आत्म-विश्वास, आत्म-श्रद्धा और इच्छा-शक्ति विकसित होती है । प्रार्थना करने से चित्त में सुव्यवस्था, मनुष्य के मन में संतुलन, बुद्धि में तीक्ष्णता और विवेक की जागृति होती है । आध्यात्मिक क्षेत्र में जो बाधाएँ हैं, दूर हो जाती हैं । प्रार्थना से मानसिक शान्ति मिलती है ।

(२) **प्रश्न**—प्रार्थना में हम कौन-कौन से गुणों का स्मरण कर आस्तिकता की भावना को जगाते हैं ?

उत्तर—दया, प्रेम, उदारता, दान, संयम, सदाचार, पुण्य, परमार्थ आदि सद्गुण ।

(३) **प्रश्न**—प्रार्थना करने से आस-पास के वातावरण पर क्या असर पड़ता है ?

उत्तर—प्रार्थना के शब्दों द्वारा जो-जो सद्भावनाएँ प्रकट होती हैं, उनमें एक आध्यात्मिक प्रवाह (Spiritual Current) फैलने लगता है । सच्चे प्रार्थी के इर्द गिर्द का समस्त वातावरण, शान्ति तथा दिव्य प्रेम से पवित्र हो उठता है ।

[७]

(१) **प्रश्न**—प्रार्थना से प्रायश्चित्त किस प्रकार होता है ?

उत्तर—जब मनुष्य अपने आप पर हार्दिक रूप से पछतावा करता है, तब उसे दुःख होता है, वह अपने संचित पापों से मुक्त होना चाहता है, आत्मा पर संचित गन्दगी को धो डालना चाहता है । प्रार्थना से यह सब सम्भव हो

सकता है। प्रार्थना अपने द्वारा हुई गलतियों को धो डालने का सुलभ साधन है। यह हमारे अभिमान के मिथ्यात्व को मिटा देने वाली महा औषध है।

(२) **प्रश्न**—प्रभु की प्रार्थना करने का अधिकारी कौन हो सकता है ?

उत्तर—जो प्रभु की अनुशासना में रहता है, आज्ञा का पालन करता है, आज्ञा के अनुसार चलता है, वही वास्तव में प्रभु की प्रार्थना का अधिकारी हो सकता है।

(३) **प्रश्न**—प्रार्थना में निहित भावों की अभिव्यक्ति किस प्रकार की जा सकती है ?

उत्तर—(१) वाणी से।
(२) ध्वनिरहित मानसिक भावों से।

[८]

(१) **प्रश्न**—'देवो भूत्वा देव यजेत्'।

भावार्थ—देवता होकर ही देवता की पूजा करो।

उपर्युक्त विचार किस साहित्य से लिए गए हैं ?

उत्तर—वैदिक साहित्य से।

(२) **प्रश्न**—'प्रार्थना—यह तो मेरे जीवन का भोजन है और इसके बिना मैं जी नहीं सकता।'

उपर्युक्त विचार किसने प्रस्तुत किए ?

उत्तर—महात्मा गाँधी ने।

(३) **प्रश्न**—सुमिरन सुमति सम्हाल के, मुख से कछु न बोल।
बाहर का पट बन्द कर, भीतर का पट खोल।।

उपर्युक्त दोहे के रचयिता कौन हैं ?

उत्तर—संत कबीर।

[९]

(१) **प्रश्न**—अब मेरी राखो लाज हरि।
तुम जानत सब अन्तर्यामी, करणी कछु न करी।
औगुन मोसे बिसरत नाहीं, पलछिन धरी-धरी।

सब प्रपंच की बांध पोटली, अपने शीश धरी ।
दारा सुत धन मोहन यों है, सुध-बुध सब विसरी ।
'सूर' पतित को बेग उबारो, अब मेरी नाव भरी ।।

उपर्युक्त प्रार्थना के रचयिता कौन हैं ?

उत्तर—श्री सूरदास ।

(२) **प्रश्न**—प्रार्थना

करो रक्षा विपत्ति से, न ऐसी प्रार्थना मेरी ।
विपद् से भय नहीं खाऊँ, प्रभु ! यह भावना मेरी ।।टेर।।
मिले दुःखताप से शान्ति, न ऐसी प्रार्थना मेरी ।
सभी दुःख पै विजय पाऊँ, प्रभु ! यह भावना मेरी ।।१।।
मदद पर कोई आजाए, न ऐसी प्रार्थना मेरी ।
न टूटे आत्मबल-डोरी, प्रभु ! यह प्रार्थना मेरी ।।२।।

उपर्युक्त प्रार्थना के रचनाकार कौन हैं ?

उत्तर—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ।

(३) **प्रश्न**—प्रार्थना ।

हे प्रभु वीर दया के सागर,
सब गुण आगर ज्ञान उजागर ।
जब तक जीऊँ हँस-हँस जीवूं,
ज्ञान सुधा रस अमृत पीऊँ ।।
सत्य अहिंसा का रस पीऊँ,
छोडूं लोभ घमण्ड बुराई ।
चाऊँ सब की नित्य भलाई ।।
जो करना सो अच्छा करना,
फिर दुनिया में किससे डरना ।
जैसा करना, वैसा भरना ।।

हे प्रभु मेरा मन हो सुन्दर,
वाणी सुन्दर, जीवन सुन्दर।
हे प्रभु वीर दया के सागर॥

उपर्युक्त गीतिका के रचयिता कौन हैं?

उत्तर—उपाध्याय प्रवर श्री अमर मुनिजी।

[१०]

(१) **प्रश्न**—प्रार्थना से तीर्थंकर गोत्र का बंध कब होता है?

उत्तर—गुणियों के गुण गाते हुए उत्कृष्ट रसायन आने पर तीर्थंकर गोत्र का बंध हो सकता है। जब प्रार्थना प्रभु ध्यान में लीन होकर एकाग्रता से की जावे, तो उत्कृष्ट रसायन आना सम्भव हो सकता है।

(२) **प्रश्न**—आचार्य मानतुंग की भक्तिमय प्रार्थना का क्या प्रभाव हुआ?

उत्तर—आचार्य मानतुंग सच्ची श्रद्धा एवं विश्वास के धनी थे। उनके अन्तर से भक्ति का स्रोत प्रस्फुटित हुआ, श्रद्धा की दिव्य ज्योति जगी और प्रभु चरणों में समर्पित स्तोत्र [भक्तामर] के अड़तालीस छन्दों को रचते-रचते एवं पढ़ते-पढ़ते अड़तालीस ताले टूट गए और वे बन्धन से मुक्त हो गए।

(३) **प्रश्न**—प्रार्थना से मिलने वाले आत्मिक आनन्द को कबीरदास ने 'गूंगे का गुड़' क्यों कहा है?

उत्तर—जिस प्रकार गूंगा गुड़ को खाकर उसका स्वाद व्यक्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार प्रार्थना से मिलने वाले असीम आनन्द को वाणी द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। उसे केवल अनुभव ही किया जा सकता है।

—89, Audiappa Naicken Street
Sowcarpet, Madras–600 079



क्या प्राण ऊर्जा का सन्तुलन स्वस्थता के लिए आवश्यक है ?

□ श्री चंचलमल चौरड़िया

मानव जीवन का संचालन आज भी विज्ञान के लिए आश्चर्य बना हुआ है। हमारे शरीर में जो भी क्रियायें अथवा प्रतिक्रियायें होती हैं उनका संचालन एवं नियन्त्रण कौन और कैसे करता है ? क्या हमारे जन्म-समय पर ग्रह एवं नक्षत्रों की ब्रह्माण्ड में स्थिति के आधार पर ज्योतिषियों द्वारा बनायी जाने वाली जन्म कुण्डलियों की यथार्थता एवं भविष्यवाणियों के पीछे कोई वैज्ञानिक आधार है अथवा कोरी कल्पनायें ? क्या विशेष प्रकार के पिरामिड प्राकृतिक ऊर्जा को आकर्षित एवं नियन्त्रित करने में सहयोग करते हैं जिससे हजारों वर्षों तक 'मिस्र' में शव सुरक्षित रखे जा सके हैं ? अधिकांश मन्दिरों में मूर्ति के बाहर वाले कक्ष—जहाँ बैठे प्रभु का ध्यान किया जाता है—की छत प्रायः पिरामिड के आकार की ही क्यों बनायी जाती है ? पिरामिड आकार विशेष ऊर्जा का स्रोत क्यों माना गया है एवं उसमें ऊर्जा कहाँ से आती है ? अलग-अलग प्रकार के रंगों के स्पर्श, उपयोग, चिन्तन अथवा ध्यान हमारे स्वास्थ्य को क्यों प्रभावित करते हैं ? विशेष प्रकार के मन्त्रों के उच्चारण से सर्प व बिच्छू का विष क्यों दूर हो जाता है ? ध्वनि-चिकित्सा में ऊर्जा शरीर को कैसे प्राप्त होती है ?

ब्रह्माण्ड में जो भी घटित होता है, उसका हमारे ऊपर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष क्यों प्रभाव पड़ता है ? पूर्णिमा की रात में जब समुद्र में ज्वार आता है, चाँदनी में सोने से हमारे मन में तो उन्माद नहीं आता ? साधकों को ऐसे समय व्रत, नियम एवं संयम रखने की क्यों विशेष प्रेरणा दी जाती है ? हमारे विभिन्न इन्द्रियों के माध्यम से ग्रहण किये गये विषय जैसे देखना, सुनना, बोलना, सुगन्ध लेना, स्वाद, स्पर्श आदि के प्रति रुचि अथवा अरुचि हमारे अंगों की स्वस्थता की अभिव्यक्ति तो नहीं करते ? क्या हमारा मनोबल, सहनशक्ति, उत्साह, चिन्तन, मनन, हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करता है ? क्या हमारी भावनाओं, आकांक्षाओं, संकल्पों, विकल्पों, आवेगों, संवेदनाओं को नियन्त्रित करने का चिकित्सकों ने उपाय खोज लिया है ? अगर नहीं तो क्या उनका रोगों से प्रत्यक्ष कोई सम्बन्ध नहीं है ?

क्या चौबीसों घंटे हमारे सभी अंग समान रूप से सक्रिय होते हैं ? भोजन एवं पानी को ही जीवन की एकमात्र ऊर्जा मानने वालों तथा उसके लिये स्वाद की लोलुपता के नाम पर नि:संकोच अभक्ष्य मांसाहार का सेवन कर ताकत पाने की कामना रखने वालों को भी स्वीकार करना होगा कि हमारे साधक एवं ऋषि-मुनि बिना भोजन एवं पानी लगातार दीर्घकाल तक तपस्या करके भी स्वस्थ रहते थे। आज भी हमारे देश में ऐसी विभूतियां हैं जो अनेक वर्षों से बिना भोजन एवं पानी के स्वस्थ जीवन जी रही हैं, जो हमारी पूर्वग्रसित भावनाओं के लिये चिन्तन का विषय है। प्राणायाम साधक समाधि के समय लम्बे समय तक श्वसन क्रिया को रोकने में सक्षम हुए हैं। उपर्युक्त सारे तथ्य हमें सोचने को बाध्य करते हैं कि हमारे जीवन का मूल आधार हवा, पानी एवं भोजन के अतिरिक्त ऐसी ऊर्जा है जिससे हम हलन-चलन कर सकते हैं, श्वास ले सकते हैं, खाया हुआ पचा सकते हैं, अनुपयोगी विकारों को शरीर से निष्कासित कर सकते हैं तथा प्रजनन करने में सक्षम होते हैं। मृत्यु के पश्चात् कृत्रिम साधनों द्वारा कितनी भी प्राणवायु शरीर में क्यों न पहुँचायी जावे, ये क्रियायें नहीं हो पातीं। मृत्यु के साथ ही सारे अंग बाह्य रूप से दिखते हुए भी पूर्णरूपेण शांत अथवा निष्क्रिय हो जाते हैं। बाजार में उपलब्ध ताकत की दवाइयां, जड़ी बूटियां, कैपसूलस, इंजेक्शन, आदि जिन्हें हम हमारी ऊर्जा का स्रोत समझने की भूल कर रहे हैं, पुन: जीवन-संचालन करने में क्यों प्रभावहीन हो जाते हैं।

इसका अभिप्राय: यही है कि भोजन, पानी, हवा एवं उपचार के अन्य साधन जीवन-संचालन में सहयोगी मात्र हैं। अदृश्य रूप से प्रतिक्षण प्रकृति से प्रवाहित होने वाली प्राण ऊर्जा ही जीवन का मूलाधार है। इसी कारण यदि त्वचा के सभी छिद्रों को किसी रसायन द्वारा बन्द कर दिया जावे तो जीवन तत्काल समाप्त हो जाता है। जैन आगमों में वर्णित 'रोग आहार' का सिद्धान्त शरीर द्वारा प्रकृति से सीधी प्राण ऊर्जा ग्रहण करने के तथ्य को पुष्ट करता है। हमारे शरीर के चारों तरफ जो आभामण्डल है वह इस प्राण ऊर्जा को सन्तुलित रखने में सहयोग करता है तथा हमारे व्यक्तित्व, चरित्र, समभाव तथा आध्यात्मिक स्तर की अभिव्यक्ति करता है। उपचार के सारे माध्यम जो शरीर में प्राण ऊर्जा को सन्तुलित संचालन करने के सिद्धान्तों पर जितने-जितने आधारित होंगे, रोग-निवारण में उतने ही प्रभावशाली सिद्ध होंगे एवं जो इस तथ्य की उपेक्षा करेंगे भले ही तात्कालिक लाभ पहुँचा सकें परन्तु अपने दुष्प्रभावों के कारण अन्य रोगों की उत्पत्ति का कारण बनेंगे।

इस प्राण ऊर्जा को चीन में 'ची', जापान में 'की' तथा पश्चिम में 'बायोएनर्जी' कहते हैं। सृष्टि का विधान दो विपरीत धाराओं के बीच सन्तुलित रहता है। इसी से जन्म-मरण, उत्पत्ति, अन्त, रात-दिन, सर्दी-गर्मी होते हैं। जहाँ

पुरुष है वहाँ नारी का भी अस्तित्व है। पोजेटिव के साथ नेगेटिव का सम्प होने से ही विद्युत का प्रवाह होता है। चुम्बक का उत्तरी ध्रुव दक्षिणी ध्रु के प्रभाव को नियन्त्रित करता है। इसी कारण प्राण ऊर्जा के भी दो रूप हो हैं जिसको भारत में 'चेतना' एवं 'जारा', चीन वाले येंग तथा यिन और पश्चि में पोजेटिव व नेगेटिव ऊर्जा के नाम से पहिचानते हैं। चेतना ऊर्जा का स्वभा उत्तेजित करना, गर्मी देना, शक्ति देना, सक्रिय बनाना आदि है, वहाँ जा ऊर्जा का स्वभाव शांत करना, ठण्डक पहुँचाना एवं शक्ति को नियन्त्रित कर है। शरीर के सभी प्रमुख अंग दो-दो के जोड़ों में कार्य करते हैं जो आपस सहयोग कर प्राण ऊर्जा को सन्तुलित रखते हैं। एक अंग में यदि चेतना ऊ प्रवाहित होती है तो उसके सहयोगी अंग में जारा ऊर्जा प्रवाहित होती है। ज तक दोनों ऊर्जाएँ एक दूसरे को सन्तुलित रखती हैं, दोनों सम्बन्धित अंग स्व रहते हैं। फेफड़े का सहयोगी अंग बड़ी आंत, आमाशय की तिल्ली, हृदय छोटी आंत, गुर्दे का मूत्राशय तथा यकृत का पित्ताशय (Gall Bladder) हो है। ये अंग पति-पत्नी की भांति एक-दूसरे के पूरक हैं। अतः किसी एक अंग रोग हो जाने से उसके सहयोगी अंग पर भी उसका प्रभाव पड़े बिना न रहता।

जिन मार्गों से शरीर में प्राण ऊर्जा प्रवाहित होती है, उन्हें प्राण ऊ मार्ग अथवा मेरेडियन (Meridian) कहते हैं। शरीर में १२ प्रमुख मेरेडिय होती हैं, जिनमें से १० मेरेडियन तो प्रमुख अंगों में ऊर्जा प्रवाहित करती हैं अत उन्हीं के नाम से पहिचानी जाती हैं। बाकी दो प्रमुख मेरेडियन अपने का अथवा गतिविधियों के आधार पर पहिचानी जाती है। शरीर में प्रमुख १ मेरेडियन निम्न हैं।

१. फेफड़े की प्राण ऊर्जा का मार्ग (Lungs Meridian)

२. बड़ी आंत की प्राण ऊर्जा का मार्ग (Long Intestine Meridia)

३. आमाशय की प्राण ऊर्जा का मार्ग (Stomach Meridian)

४. तिल्ली की प्राण ऊर्जा का मार्ग (Spleen Meridian)

५. हृदय की प्राण ऊर्जा का मार्ग (Heart Meridian)

६. छोटी आंत की प्राण ऊर्जा का मार्ग (Small Intestine Meridian)

७. गुर्दे की प्राण ऊर्जा का मार्ग (Kidney Meridian)

८. मूत्राशय की प्राण ऊर्जा का मार्ग (Urinary Bladder Meridian)

९. यकृत की प्राण ऊर्जा का मार्ग (Lever Meridian)

१०. पित्ताशय की प्राण ऊर्जा का मार्ग (Gall Bladder Meridian)

११. हृदय को संकुचित करने वाली प्राण ऊर्जा का मार्ग (Pericardian Meridian)

१२. तीन अग्नियों को नियन्त्रित करने वाली प्राण ऊर्जा का माग (Tripple Heater Meridian)

उपर्युक्त सभी प्रमुख मेरेडियन शरीर में दाहिने एवं बायें भाग में समान रूप से होती हैं। उसी कारण शरीर के किसी भी भाग में दर्द होने पर उसके दूसरी तरफ भी धीरे-धीरे उसका प्रभाव पड़ने लगता है। जैसे यदि बायें घुटने में दर्द होता है तथा उसकी उपेक्षा की जावेगी तो धीरे-धीरे दाहिने घुटने में भी दर्द होने लगता है।

इन मेरेडियन मार्गों पर अनेक प्रतिवेदन बिन्दु होते हैं जहाँ से इनकी शाखायें एवं उपशाखायें निकलती हैं, जिनके माध्यम से प्राण ऊर्जा शरीर के प्रत्येक अवयव तक पहुँचती है। प्राण ऊर्जा के प्रवाह में अवरोध से सम्बन्धित मेरेडियन पर स्थिति प्रतिवेदन बिन्दु जल्दी प्रभावित होते हैं एवं उस स्थिति में उन पर दबाव देने से पीड़ा की अनुभूति होती है। जिन-जिन प्रतिवेदन बिन्दुओं पर अवरोध आ जाता है उनसे सम्बन्धित प्राण ऊर्जा प्राप्त करने वाले अंगों पर असन्तुलन होने के कारण रोग की स्थिति बनने लगती है। एक्यूप्रेशर द्वारा सही ढंग से उन स्थानों पर दबाव देकर अवरोध को दूर कर प्राण ऊर्जा के प्रवाह को पुनः सन्तुलित किया जा सकता है ताकि सम्बन्धित अंग रोग मुक्त हो सकें। प्रमुख १२ मेरेडियन पर दाहिने एवं बायें कुल ३०९ प्रतिवेदन बिन्दु समान रूप से होते हैं, जिनका विवरण निम्न हैं—

१. फेफड़े की मेरेडियन ११	२. बड़ी आंत की मेरेडियन २०
३. आमाशय की मेरेडियन ४५	४. तिल्ली की मेरेडियन २१
५. हृदय की मेरेडियन ९	६. छोटी आंत की मेरेडियन १९
७. गुर्दे की मेरेडियन २७	८. मूत्राशय की मेरेडियन ६७
९. पेटीकार्डियन मेरेडियन ९	१०. त्रिअग्नि मेरेडियन २३
११. पित्ताशय मेरेडियन ४४	१२. यकृत मेरेडियन १४
	कुल ३०९

प्रत्येक प्रतिवेदन बिन्दु का वर्गीकरण सम्बन्धित मेरेडियन के प्रारम्भ होने वाले स्थान से जहाँ जाकर वे समाप्त होती हैं, अलग-अलग नम्बर के आधार पर किया जाता है ताकि अलग-अलग रोगों की स्थिति में उन विशेष प्रतिवेदन-बिन्दुओं को पहचाना जा सके। इन १२ प्रमुख मेरेडियन के अलावा दो और मेरेडियन होती हैं। एक शरीर में सामने के भाग में स्थित मेरेडियन को तथा दूसरी शरीर के पीछे के भाग में स्थित सभी मेरेडियन को नियन्त्रित रखने में सहयोग करती है। पहली को यिन मेरेडियन संचालक (Yin Meridian Controller or Conception Vessel (CV)) तथा दूसरी को येंग मेरेडियन नियन्त्रक (Yeng Meridian Governor or Governing Vessel (GV)) कहते हैं। ये दोनों मेरेडियन शरीर के आगे और पीछे मध्य भाग में ही प्रवाहित होती हैं न कि अन्य मेरेडियन की भांति दाहिने एवं बायें। येंग नियन्त्रक मेरेडियन पर २८ प्रतिवेदन एवं यिन नियन्त्रक मेरेडियन पर २४ प्रतिवेदन बिन्दु होते हैं।

इस प्रकार शरीर में १४ मेरेडियन के कुल (३०९ + ३०९ + २८ + २४) =६७० प्रमुख प्रतिवेदन बिन्दु मेरेडियन मार्ग पर स्थित होते हैं। जहाँ एक से ज्यादा मेरेडियन मिलती हैं वे प्रतिवेदन बिन्दु अधिक प्रभावशाली होते हैं। इसी प्रकार शरीर में अलग-अलग प्रकार की कोशिकाओं की गतिविधियों के लिए ८ प्रतिवेदन बिन्दु विशेष प्रभावकारी पाये गये हैं। जैसे रक्त सम्बन्धी रोगों के लिए (यू. बी. १७) हड्डियों सम्बन्धी रोगों के लिए (यू. बी. ११) मज्जा सम्बन्धी असन्तुलन के लिए (जी. बी. ३९) श्वसन क्रिया को नियन्त्रित रखने हेतु (सी. बी. १७) नाड़ी की गति नियन्त्रित रखने हेतु (Lung-9) ठोस (Solid) अंगों सम्बन्धी रोगों के लिए (लीवर १३) खाली होने वाले अंगों के रोगों के लिए CV-12 तथा स्नायु सम्बन्धी रोगों के लिए G.B. 34 के प्रतिवेदन बिन्दु अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं। सम्बन्धित रोगों में इन प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देने से जल्दी राहत मिलती है। जिज्ञासु व्यक्ति इस सम्बन्ध में प्रमाणित साहित्य का अध्ययन कर विशेष जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

प्राण ऊर्जा के प्रवाह की दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यदि किसी अंग में प्राण ऊर्जा के असन्तुलन से रोग हो जाता है तो उससे सम्बन्धित मेरेडियन के मार्ग में आने वाले सभी अंगों पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। जैसे हृदय आघात के समय पूरे हाथ में छोटी अंगुली की तरफ वाले भाग में स्थित हृदय मेरेडियन के प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देने से पीड़ा का अनुभव होता है। इसके विपरीत मेरेडियन के किसी भाग पर चोट लग जाने अथवा विकार आ जाने से उस मेरेडियन के प्रमुख अंग पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। इस सिद्धान्त से रोग-निदान में काफी सहायता मिलती है। यदि शल्य चिकित्सक

इस तथ्य की उपेक्षा न करे तथा प्रभावशाली प्रतिवेदन बिन्दुओं को हानि न पहुँचाये तो रोगी शल्य चिकित्सा के पश्चात् शरीर में प्राण ऊर्जा के असन्तुलन से पड़ने वाले अनेक दुष्प्रभावों से सहज बच सकता है। परन्तु इस तथ्य की उपेक्षा से कभी-कभी भयंकर दुष्परिणाम हो सकते हैं।

शरीर में कुछ प्रमुख अंगों का आकार एवं स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं होता। जैसे फेफड़े, हृदय, तिल्ली, गुर्दे एवं यकृत आदि। इन अंगों में यिन ऊर्जा प्रवाहित होती है। इसके विपरीत कुछ प्रमुख अंग प्रायः कभी खाली तो कभी भरे हुए रहते हैं। जैसे आमाशय, बड़ी आंत, छोटी आंत, मूत्राशय, पित्ताशय इत्यादि। इन अंगों में चेतना (Yeng अथवा Yine) ऊर्जा प्रवाहित होती है। छः प्रमुख मेरेडियन में प्राण ऊर्जा का प्रवाह हाथ अथवा पैर की अंगुली या अंगूठे से शरीर में अन्दर की तरफ होता है। जैसे बड़ी आंत, छोटी आंत, त्रिअग्नि, तिल्ली, गुर्दे एवं यकृत मेरेडियन आदि। अतः ये अंग बाह्य वातावरण एवं कारणों से अपेक्षाकृत जल्दी प्रभावित होते हैं। जैसे सर्दी, गर्मी, वर्षा, लू इत्यादि। इसके विपरीत छः प्रमुख सहयोगी अंगों वाली मेरेडियन (फेफड़े, हृदय, पेरी-कार्डियन, आमाशय, मूत्राशय एवं पित्ताशय) में प्राण ऊर्जा का प्रवाह शरीर में अन्दर से हथेली अथवा पगथली की अंगुलियों या अंगूठे की तरफ होता है। अतः इन मेरेडियन से सम्बन्धित अंग आन्तरिक एवं भावात्मक कारणों से अपेक्षाकृत शीघ्र प्रभावित होते हैं। जैसे अत्यधिक हर्ष, दुःख, डर, तनाव, आवेग इत्यादि। प्राण ऊर्जा के प्रवाह एवं उसके प्रभाव से होने वाले रोगों का वर्गीकरण इस तथ्य को पुष्ट करता है कि अलग-अलग अंग प्रकृति से प्राण ऊर्जा का आदान-प्रदान कर सन्तुलित रह सके। परन्तु इस तथ्य को अभी तक पूर्ण वैज्ञानिक आधार पर पुष्ट नहीं किया जा सका है। वर्तमान मान्यताओं के आधार पर तो सारी मेरेडियन एक दूसरे से मिल ऊर्जा का पूर्ण चक्र बनाती हैं। अर्थात् जहाँ पर एक मेरेडियन समाप्त होती है उसके आसपास से दूसरी मेरेडियन प्रारम्भ होती है। अतिरिक्त मेरेडियन अथवा उपशाखाओं के माध्यम से ये आपस में जुड़ी रहती हैं। परन्तु हाथ एवं पैर की अंगुलियाँ सदैव जुड़ी न रहने के कारण सभी मेरेडियन अंगुलियों में आपस में कैसे मिलती हैं, शोध का विषय है। परन्तु दोनों तथ्यों पर जितनी अधिक खोज की जावेगी नवीन सत्य सामने आयेंगे जो हमारी पूर्व ग्रसित मान्यताओं के प्रतिकूल भी हो सकते हैं।

इन १२ प्रमुख मेरेडियन का एक सिरा हाथ अथवा पैर की अंगुलियों अथवा अंगूठे में होता है, जबकि दूसरा सिरा शरीर के मध्य भाग अथवा मस्तिष्क के भाग में होता है। हमारे हाथ एवं पैर की अंगुलियाँ तथा अंगूठे प्रकृति से प्राण ऊर्जा के आदान-प्रदान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आयुर्वेद का पंच तत्त्व सिद्धान्त जिसमें हाथ की प्रत्येक अंगुली अलग-अलग तत्त्व की प्रतीक मानी गयी

है तथा मुद्रा विज्ञान की अनेक मुद्रायें इसी सिद्धान्त के आधार पर प्राण ऊर्जा का सन्तुलन कर हमारे स्वास्थ्य, विचारों एवं गतिविधियों को नियन्त्रण करने में सहयोग करती हैं। जैन परम्परा में कायोत्सर्ग की अवस्था में हथेली के ऊपर हथेली रखने से वहाँ प्रभावित होने वाली चेतना एवं जारा ऊर्जा में सन्तुलन होता है एवं साधक को समभावी बनने में मदद मिलती है। हाथ जोड़ने से हमारा अहम् घटता है। इसी कारण हाथ एवं पैर की अंगुलियों एवं अंगूठों का आकार, लम्बाई एवं बनावट हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं तथा उनके आकार में होने वाली अस्वाभाविकता हमारे असन्तुलन का प्रतीक है। ऐसी स्थिति में उन अंगुलियों पर दबाव देने से विशेष रूप से पैरों की अंगुलियों में अपूर्व पीड़ा होती है।

हाथ एवं पैरों में स्थित प्रतिवेदन बिन्दु प्रायः शरीर की सतह पर होते हैं जबकि अन्य स्थानों पर स्थित प्रतिवेदन बिन्दु अपेक्षाकृत अन्दर तथा गहरे होते हैं। शरीर के अधिकांश जोड़ों पर कोई न कोई प्रतिवेदन बिन्दु अवश्य होता है। अतः हाथ एवं पैर के प्रत्येक जोड़े को १० से १५ बार उल्टा और सीधा घुमाने से मेरेडियन मार्गों में उत्पन्न अवरोध आसानी से दूर हो जाते हैं।

इन मेरेडियन का नाड़ियों, रक्त वाहिनियों एवं शरीर में उत्पन्न विभिन्न स्रावों से गहन सम्बन्ध होता है। हृदय, फेफड़े एवं पेराकार्डियन मेरेडियन शरीर के मध्य भाग में होते हुए कन्धे से हथेली की तरफ हाथ में प्रवाहित होते हैं जबकि इनके सहयोगी छोटी आंत, बड़ी आंत एवं त्रिअग्नि मेरेडियन हथेली के पीछे की तरफ अंगुलियों से कन्धे की तरफ होते हुए मस्तिष्क तक जाते हैं, एवं अपने सहयोगी अंगों में ऊर्जा के सन्तुलन को बनाये रखते हैं। इसी प्रकार आमाशय, मूत्राशय एवं पित्ताशय मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह मस्तिष्क से पैरों की अंगुलियों की तरफ तथा इनके सहयोगी अंगों (गुर्दे, यकृत, तिल्ली) में मेरेडियन द्वारा ऊर्जा का प्रवाह पैरों की अंगुलियों से शरीर के मध्य भाग तक होता है। अतः रोग की अवस्था में उपचार के लिए मेरेडियन की दिशा में मसाज करने से अधिक प्रभावशाली परिणाम आते हैं।

वैसे तो प्रतिक्षण शरीर के सभी अंगों में प्राण ऊर्जा का प्रवाह होता है। फिर भी चौबीसों घण्टों सभी प्रमुख अंगों में प्राण ऊर्जा का प्रवाह एक सा नहीं होता। प्रतिदिन दो-दो घण्टे बारी-बारी से १२ प्रमुख मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह विशेष होता है तथा उसके १२ घण्टे पश्चात् अपेक्षाकृत सबसे कम होता है। अतः यदि रोग का कारण किसी अंग में प्राण ऊर्जा की कमी होती है तो जब प्रकृति से उस अंग को अधिक ऊर्जा मिलती है तो रोगी को राहत का अनुभव होता है। ऐसे समय किया गया उपचार अधिक प्रभावशाली तथा शीघ्र

परिणाम देता है । इसके विपरीत ऐसे रोगी को जब प्राण ऊर्जा प्रकृति से सबसे कम मिलती है तो अपेक्षाकृत अधिक बेचैनी का अनुभव होता है । इसी प्रकार यदि रोग का कारण सम्बन्धित अंगों में प्राण ऊर्जा की अधिकता हो तो जब प्रकृति से प्राण ऊर्जा स्वाभाविक रूप से अधिक प्रवाहित होती है तो रोगी को अधिक परेशानी का अनुभव होता है और जब उसमें सहज रूप से अपेक्षाकृत प्राण ऊर्जा कम प्रवाहित हो तब रोगी को स्वतः राहत का अनुभव होने लगता है । प्राण ऊर्जा की प्रत्येक मेरेडियन में सबसे अधिक ऊर्जा-प्रवाह एवं सबसे कम ऊर्जा प्रवाह का समय वैज्ञानिकों की मान्यता के अनुसार निम्न है—

	मेरेडियन का नाम	प्राण ऊर्जा के अधिक प्रवाह का समय	प्राण ऊर्जा के अपेक्षाकृत कम प्रवाह का समय
१.	फेफड़े	रात्रि ३ बजे से ५ बजे	दोपहर ३ बजे से ५ बजे
२.	बड़ी आंत	प्रातः ५ बजे से ७ बजे	सायंकाल ५ बजे से ७ बजे
३.	आमाशय	प्रातः ७ बजे से ९ बजे	सायंकाल ७ बजे से ९ बजे
४.	तिल्ली	प्रातः ९ बजे से ११ बजे	रात्रि ९ बजे से ११ बजे
५.	हृदय	दोपहर ११ बजे से १ बजे	रात्रि ११ बजे से १ बजे
६.	छोटी आंत	दोपहर १ बजे से ३ बजे	रात्रि १ बजे से ३ बजे
७.	मूत्राशय	दोपहर ३ बजे से ५ बजे	प्रातः ३ बजे से ५ बजे
८.	गुर्दे	सायंकाल ५ बजे से ७ बजे	प्रातः ५ बजे से ७ बजे
९.	पेटीकार्डियन	रात्रि ७ बजे से ९ बजे	प्रातः ७ बजे से ९ बजे
१०.	त्रिअग्नि	रात्रि ९ बजे से ११ बजे	प्रातः ९ बजे से ११ बजे
११.	पित्ताशय	रात्रि ११ बजे से १ बजे	दोपहर ११ बजे से १ बजे
१२.	यकृत	रात्रि १ बजे से ३ बजे	दोपहर १ बजे से ३ बजे

दूसरी बात कभी-कभी रोगी को निश्चित समय होते ही रोग का आभास होने लगता है । इसका कारण या तो वे अंग हैं जिनमें ऊर्जा का प्रवाह प्रकृति से उस समय अपेक्षाकृत अधिक अथवा कम प्रवाहित होता है । इस तथ्य से रोग का कारण जानने में सहायता मिलती है । इसी कारण दमा के रोगी को पिछली रात में अधिक परेशानी होती है । प्रातः जल्दी उठ घूमने जाने वाले अपेक्षाकृत अधिक स्फूर्ति वाले होते हैं । बड़ी आंत की सफाई हेतु मल-त्याग का समय प्रातः काल ही उचित है । जो व्यक्ति आमाशय, तिल्ली जोड़े के समय प्राप्त ऊर्जा का

उपयोग कर भोजन करते हैं, उनके पेट के रोग कम होते हैं। आज बढ़ते हुए हृ
रोगों का एक कारण यह भी है कि हमने अपने भोजन का समय बदल लिया
जब हृदय, छोटी आंत, जोड़े को ऊर्जा का प्रकृति से स्वाभाविक प्रवाह होता
(अर्थात् ११ बजे से ३ बजे दोपहर) तब हम भोजन करते हैं जिससे हृदय मे
डियन प्रकृति से प्राप्त प्राण ऊर्जा को पूर्णरूपेण ग्रहण नहीं कर पाती। अ
हृदय रोगियों के लिए विशेष रूप से भोजन के समय में परिवर्तन लाभप्रद होगा
रात्रि में ही सोने का विधान क्यों बनाया गया? यकृत पित्ताशय में प्राण ऊ
का प्रवाह मध्य रात्रि ११ बजे से ३ बजे होता है जब मन एवं बाह्य वातावर
पूर्ण रूप से शांत होता है जो व्यक्ति के लिए निद्रा का उपयुक्त समय है। अ
जो व्यक्ति रात में देर से सोते हैं अथवा रात भर जागते हैं उनका पाचन प्र
खराब रहता है। स्वाभाविक भूख भी नहीं लगती है। स्वभाव चिड़चिड़ा र
लगता है। हमारे स्वास्थ्य मन्त्रालय की अज्ञानता एवं उपेक्षा के कारण
आमोद-प्रमोद एवं मनोरंजन के नाम पर संचार माध्यम टी. वी. पर आधी र
तक कार्यक्रम प्रसारित कर जनता के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं
चिन्ता का विषय है।

आयुर्वेद की मान्यतानुसार भी प्रात: ६ बजे से १० बजे तक शरीर में क
प्रकृति प्रभावशाली रहती है। अत: ठण्डी वस्तुओं के सेवन का निषेध है। १
बजे से २ बजे तक पित्त प्रकृति रहती है, शरीर में पित्त बनता है तब तक खान
पूर्ण पच जाना चाहिये। दोपहर २ बजे से ६ बजे सायंकाल तक वायु प्रकृति
प्रभावशाली रहती है। अत: जो व्यक्ति दो बजे बाद भोजन करते हैं, वे वा
सम्बन्धी रोगों तथा जोड़ों के रोगों से अपेक्षाकृत जल्दी प्रभावित होते हैं।

प्रतिदिन की भाँति १२ प्रमुख मेरेडियन में लगभग एक मास तक प्रा
ऊर्जा का अपेक्षाकृत अधिक प्रवाह होता है। इसी कारण मनुष्य की जन्म-तिथि
के समय जिस मेरेडियन में प्रकृति से प्राण ऊर्जा का प्रवाह अधिक होता है उससे
सम्बन्धित अंग ही उस व्यक्ति का प्रमुख संचालक अंग होता है। जब तक वह
अंग पूर्णरूपेण स्वस्थ रहता है अन्य रोग अधिक हानि नहीं पहुँचा सकते, परन्तु
उस मेरेडियन में प्रवाहित ऊर्जा के असन्तुलन की तनिक अपेक्षा भी काफी हानि
कारक हो सकती है। मनुष्य की मृत्यु का कारण उस मेरेडियन में ऊर्जा के प्रवाह
का असन्तुलन ही होता है।

इसी कारण किसी व्यक्ति की मृत्यु हृदय आघात से होती है तो कोई गुर्दे
यकृत, फेफड़े, तिल्ली, पेन्क्रियाज इत्यादि के रोगों से। कोई-कोई व्यक्ति प्रथम
हृदय आघात में ही चले जाते हैं क्योंकि उनका संचालक अंग हृदय होता है

जबकि बहुत से व्यक्ति ३–४ बार हृदय आघात आने के पश्चात् भी बच जाते हैं क्योंकि उनका संचालक अंग हृदय नहीं होता।

प्रतिवर्ष मेरेडियन में अपेक्षाकृत अधिक ऊर्जा प्रवाह का समय निम्न है—

१. यकृत मेरेडियन	८ जनवरी से ६ फरवरी
२. फेफड़े की मेरेडियन	७ फरवरी से ८ मार्च
३. बड़ी आंत मेरेडियन	९ मार्च से ८ अप्रैल
४. आमाशय मेरेडियन	९ अप्रेल से ७ मई
५. तिल्ली मेरेडियन	८ मई से ७ जून
६. हृदय मेरेडियन	८ जून से ७ जुलाई
७. छोटी आंत मेरेडियन	८ जुलाई से ७ अगस्त
८. मूत्राशय मेरेडियन	८ अगस्त से ७ सितम्बर
९. गुर्दे की मेरेडियन	८ सितम्बर से ७ अक्टूबर
१०. पेटीकार्डियन मेरेडियन	८ अक्टूबर से ७ नवम्बर
११. त्रिअग्नि मेरेडियन	८ नवम्बर में ७ दिसम्बर
१२. पित्ताशय मेरेडियन	८ दिसम्बर से ७ जनवरी

उपर्युक्त तालिका के अनुसार यदि किसी व्यक्ति की जन्म-तिथि ही समूह के अंगों के बीच होती है जैसे ८ (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर, नवम्बर) के आसपास का समय तब प्रमुख संचालक अंग पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता परन्तु यदि जन्म तिथि दूसरे समूह वाले अंग में प्राण ऊर्जा प्रवाहित होने के आसपास जैसे ८ (फरवरी, अप्रेल, जून, अगस्त, अक्टूबर, दिसम्बर) तब प्रमुख अंग को जानने के लिए दोनों अंगों को मानना होगा। अर्थात् जन्म-तिथि प्राकृतिक ऊर्जा के अंगों में परिवर्तन के समय से जितनी-जितनी समीप होगी उतना-उतना ही उन अंगों का प्रमुख संचालक अंग हेतु भूमिका एवं प्रभाव रहेगा। इस तथ्य से रोग निदान एवं उपचार में काफी सहायता मिलती है। जब रोगी की हालत बहुत चिन्ताजनक हो, वह अपने रोगों के कारणों की सही अभिव्यक्ति करने में असमर्थ हो तथा रोग का निदान नहीं हो पा रहा हो तब जन्म-तिथि के आधार पर सम्भावित प्रमुख संचालक अंगों के उपचार को प्राथमिकता देनी चाहिये। उन अंगों को स्वस्थ रखने में संचालक अंग की अहम् भूमिका होती है जैसे सेना में सेनापति एवं पाठशाला में प्रधानाध्यापक की।

अतः हमें स्वीकारना होगा कि जितना-जितना व्यक्ति प्रकृति के समीप रहेगा, उसके साथ अपना समन्वय रखेगा, स्वाभाविक रूप से प्राप्त प्राण ऊर्जा

का अधिकाधिक उपयोग करेगा तथा प्राकृतिक नियमों का पालन कर आ आचार-विचार में सात्विकता रखेगा उतना-उतना ही वह प्राण ऊर्जा का मे में सन्तुलन रख शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता के नजदीक होगा। चिकि जगत से जुड़े सभी चिकित्सकों एवं स्वास्थ्य मंत्रालय से हमारा विनम्र अनु है कि जनसाधारण के स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए इन तथ्यों को स्वीकारें त इसके विभिन्न पहलुओं पर पूर्वाग्रह छोड़ शोध करें ताकि हम स्वस्थ रहने कला सीख सकें।

—चौरड़िया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपु

स्वास्थ्य

- अगर मनुष्य प्रकृति के नियमों का प्रामाणिकता के साथ अनुसरण करे उसे डॉक्टरों की शरण में जाने की आवश्यकता न हो।
- शारीरिक स्वस्थता के लिए वीर्यबल अपेक्षित है।
- अन्तिम क्षण तक स्वस्थ बने रहने के लिए आहार, आसन और निद्रा प दृढ़ अंकुश रखना परमावश्यक है।

—आचार्य श्री हस्

महत्त्वपूर्ण एवं संग्रहणीय विशेषांक

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के श्रद्धांजलि स्वरूप प्रकाशित 'जिन वाणी' विशेषांक देख एवं पढ़कर महत्ती प्रसन्नता का अनुभव हुआ। आचार्य के विराट् व्यक्तित्व एवं कृतित्व का यह विशेषांक अपने भव्य रूप के द्वारा पाठ को सहज ही आकर्षित करता है। धर्म व दर्शन के साथ जैन जगत् में प्रतिप बनते विचारों की 'जिनवाणी' प्रवाहिका पत्रिका है। 'प्रज्ञा पुरुष को प्रणाम सम्पादकीय लेख ही मन को आलोकित करने वाला है। विभिन्न सन्त मनीषि द्वारा श्रद्धेय आचार्यश्री को दी गई काव्यात्मक एवं गद्यात्मक श्रद्धांजलि पठनी है, वहीं तृतीय खण्ड में समाधिमरण पर विभिन्न विद्वानों के विशिष्ट लेख मृ के महत्त्व को प्रकट करके उसे महोत्सव मानकर नवजीवन का वरदान सि करते हैं। 'जिनवाणी' का यह विशेषांक महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ संग्रहणी भी है। इस हेतु सम्पादन कला मर्मज्ञ एवं यशस्वी साहित्यकार डॉ. भानावत व सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल को हमारी ओर से हार्दिक साधुवाद।

—श्री गणेश मुनि शास्त्

बाल कथामृत* (६३)

□ १८ वर्ष तक के बच्चे इस कहानी को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर १५ दिन में "जिनवाणी" कार्यालय को भेजें। उत्तरदाताओं के नाम पत्रिका में छापे जायेंगे। प्रथम, द्वितीय व तृतीय आने वालों को क्रमशः २५, [illegible] व १५ रुपयों की उपहार राशि मण्डल द्वारा प्रदान की जायेगी। इसके अलावा वर्ष भर के लिए निम्न १३ प्रोत्साहन पुरस्कार भी प्रदान किये जायेंगे। १. श्री राजेन्द्रप्रसादजी जैन एडवोकेट, भवानीमंडी की ओर से उनकी माताजी श्रीमती बसन्तीबाई की पुण्य स्मृति मे ११ रुपये का एक पुरस्कार। २. श्री रिखबराजजी कर्णावट, जोधपुर की ओर से उनके पिता श्री पनराजजी कर्णावट की पुण्यस्मृति में १० रुपये का एक पुरस्कार। ३. श्री कैलाशजी बोहरा, भवानीमण्डी की ओर से उनके पिता श्री शान्तिलालजी की स्मृति में ११ रुपये का एक पुरस्कार। ४. जे० एल० जैन ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा ११ रुपये का एक पुरस्कार। ५. ६. ७. ८. श्री रिखबचन्दजी कांकरिया, मद्रास की ओर से उनके पिता श्री मोहनलालजी कांकरिया, माता श्रीमती भणकारबाई कांकरिया की पुण्य स्मृति में तथा पूज्य महासती श्री सरलाजी एवं विमलाजी की दीक्षा स्मृति एवं धर्मपत्नी श्रीमती पिस्तादेवी के दो वर्षी तप करने के उपलक्ष्य में १०–१० रुपये के चार पुरस्कार। ९. श्री रघुदासजी जैन, सवाई माधोपुर की ओर से उनके पिता श्री रामजसजी जैन एवं माता श्रीमती मोत्यादेवी जैन की पुण्यस्मृति में १० रुपये का एक पुरस्कार। १०. ११. श्री विनयचन्दजी जैन, दिल्ली की ओर से ११–११ रुपये के दो पुरस्कार उनके पिता श्री प्रेमचन्दजी जैन एवं माता श्रीमती इन्द्राकुमारी जैन की पुण्यस्मृति में। १२. श्री सुरेश राजेन्द्रकुमारजी मेहता, बम्बई की ओर से ११ रुपये का एक पुरस्कार अपने दादाजी श्री खेवरचन्दजी मेहता की पुण्यस्मृति में। १३. श्री प्रकाशचन्दजी शिशोदिया, रामपुरा की ओर से ११ रुपये का एक पुरस्कार अपनी मातुश्री श्रीमती भँवर बाईजी की स्मृति में।

—सम्पादक



भद्र पुरुष

□ श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन

उन्होंने अभावों के साये बाल्यकाल जीया था। अभावों के साये, तिल-तिल कर जीवन जीने वाली मानवता के दुःख-दर्दों का हकीकी अहसास किया था। इसी दार्शनिक चिंतन ने उन्हें संवेदनशील बना दिया था।

---

*श्री राजीव भानावत द्वारा सम्पादित—परीक्षित स्तम्भ।

उस दिन वे सहज मुद्रा में लॉन में बैठे थे तभी एक फटे हाल वृद्ध ने उनके पास आया और अपनी पीड़ा व विवशता का रुंधे गले से बखान क हुए उनसे सौ डालर उधार मांगे। मानव-मन के पारखी उस भद्र पुरुष उस वृद्ध की आँखों से छलछलाते आँसुओं से यह अहसास करने में तनिक देर नहीं लगी कि अतीत में इस व्यक्ति ने सम्पन्नता के साये जीवन था, पर आज परिस्थिति ने उसे हाथ फैलाने को मजबूर कर दिया है उस भद्र पुरुष ने उस वृद्ध पुरुष को सौ डालर थमा दिये और अन्त से मंगल आशीर्वाद देते हर्षित मन, पुलकित तन, उस वृद्ध ने अप मार्ग पकड़ा।

समय सरका। एक दिन वही व्यक्ति सौ डालर उस भद्र पुरुष को लगा तो उस भद्र पुरुष ने डालर लेने से इन्कार कर दिया। यह इन्का उसके आत्म-सम्मान पर करारी चोट थी। वह वृद्ध उस चोट को झेल न पाया और कुछ उत्तेजित हो कह उठा—"सर! मैंने अपनी जरूरत के लि डालर आपसे उधार लिये थे, भीख में नहीं........।"

मानवीय-मंगल के चिंतन के शीर्ष बिंदु पर उस भद्र पुरुष ने सह भाव से कहा—भाई! स्वीकार हैं तुम्हारे डालर, पर एक काम करो, इ अपने पास ही रक्खो। यदि कोई जरूरतमंद तुम्हारे पास आवे तो उसे दे भूल जाना, हाँ यदि वह फिर कभी उन डालरों को लौटाने आवे तो हरगि न लेना और उसे इसी प्रकार करने को समझा देना।

वह मानव मन ही मन उस फरिश्ते को सलाम कर चल दिया।

युग बीत गये पर दर-दर, घर-घर घूमते वे डालर आज भी किसी किसी जरूरतमंद के काम आ रहे हैं।

अभाव ग्रस्त पीड़ित मानवता को यह ऐतिहासिक संबल देने वाले ही भद्र पुरुष वुडरो विल्सन आगे चलकर अमेरिका के राष्ट्रपति बने।

—एडवोकेट, भवानीमण्डी (राज.)

अभ्यास के लिए प्रश्न

उपर्युक्त कहानी पढ़कर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए—

१. किस चिन्तन ने वुडरो विल्सन को संवेदनशील बना दिया था?

२. भद्र पुरुष किसे कहा गया है और क्यों?

३. वृद्ध सौ डालर वापस क्यों देने लगा और भद्र पुरुष ने उन्हें वापस लेने से क्यों इन्कार किया ?

४. 'यह इन्कारी वृद्ध के आत्म-सम्मान पर करारी चोट थी' कैसे ? समझाकर लिखिए।

५. 'भाई ! स्वीकार हैं तुम्हारे डालर, पर एक काम करो।' भद्र पुरुष ने क्या काम करने को वृद्ध से कहा ?

६. 'वे डालर आज भी किसी न किसी जरूरतमंद के काम आ रहे हैं।' कैसे ? स्पष्ट कीजिए।

७. यदि आप भद्र पुरुष और वृद्ध के स्थान पर होते तो क्या करते ?

८. आप किसी ऐसे घटना-प्रसंग का उल्लेख कीजिए जिसमें कोई चीज किसी को देकर वापस न ली हो और जरूरतमंदों के लिए वह उपयोगी बनती रही हो।

'जिनवाणी' के सितम्बर, १९९१ के अंक में प्रकाशित **श्री प्रकाशचन्द्र पारख** की कहानी **'नाम का नहीं, काम का महत्त्व'** (९१) के उत्तर जिन बाल पाठकों से प्राप्त हुए हैं, उन सभी को बधाई।

पुरस्कृत उत्तरदाताओं के नाम

प्रथम—श्री सुरेशकुमार राठौर द्वारा श्री लक्ष्मीनारायणजी राठौर, जिनिंग फैक्ट्री के सामने, **चौमहल्ला**–३२६५१५।

द्वितीय—सुश्री ब्रजेशकुमारी भाटी द्वारा श्री लक्ष्मीनारायणजी भाटी, रेलवे फाटक बाहर, धर्मशाला के पास, **चौमहल्ला** (राज.)।

तृतीय—श्री अरविन्दकुमार नागौरी द्वारा श्री भँवरलालजी नागौरी, नागौरी स्ट्रीट, **बम्बोरा**–३१३७०६ (राज.)।

प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त उत्तरदाता

१. श्री सुनीलकुमार द्वारा श्री लक्ष्मीनारायणजी भाटी, रेलवे क्रासिंग के बाहर, निकट पूर्व पुलिस चौकी, **चौमहल्ला**–३२६५१५।

२. श्री कांतिलाल श्रीश्रीमाल द्वारा शा धींगड़मलजी, मांगीलालजी श्री-श्रीमाल, गोल वालों की वास, नयी वास, **समदड़ी**–३४४०२१।

३. श्री चन्द्रशेखर नागौरी द्वारा श्री शांतिलालजी नागौरी, मु. पो. बम्बो
त. गिर्वा, जि. उदयपुर।

४, श्री दीपक जैन द्वारा श्री दानमलजी जैन, ७०६, महावीर नगर,
रोड, **जयपुर**–३०२०१८।

५. कुमारी रीता शांडिल्य, १८६ अ., रोड नं. १ सी., सरदारपु
जोधपुर–३४२००३।

६. कु. रेखा जैन द्वारा श्री शान्ताप्रसादजी जैन, १२१, इन्द्रा कॉलो
बजरिया, मानटाउन, **सवाई माधोपुर**–३२२००१।

७. श्री नवरत्नमल बोथरा द्वारा श्री मुकनमलजी बस्तीमलजी बोथ
बोथरा मेन्शन, पो. **नागौर**–३४१००१।

८. श्री दिनेशकुमार 'दिनकर' द्वारा श्री जैन सिद्धांत शिक्षण संस्थान, ए
साधना भवन, बजाज नगर, **जयपुर**–३०२०१५।

९. सुश्री सिम्मी जैन द्वारा श्री मुरारीलालजी जैन, सेठ का मठ, गोपालग
भरतपुर (राज.)।

१०. सुश्री पूजा वर्मा 'मुमुक्षिका' द्वारा श्री रामजीलालजी वर्मा II ३२ ए.
कॉलोनी, बजाज नगर, **जयपुर**–३०२०१५।

११. श्री सुरेशकुमार जैन द्वारा श्री सम्पतराजजी बोथरा, गाँधी वा
पो० **नागौर**–३४१००१।

१२. सुश्री सपना जैन द्वारा श्री कैलाश जैन, 'एडवोकेट' बन्दा रो
भवानीमण्डी (राज.)।

अन्य उत्तरदाता

जोधपुर से महावीर देशलहरा 'जिद्दी', **सिकन्दराबाद** से शांतिला देशलहरा 'राजस्थानी', **जयपुर** से शैलेजकुमार वर्मा, नवनीत मेहता, अंजलि जैन, ऋषभ जैन, सुनीलकुमार सांखला, **बजरिया, सवाई माधोपुर** से प्रका चन्द जैन, महेन्द्रकुमार जैन, रजनी जैन, विजेन्द्र जैन, मधु जैन, चन्द्रकान्त जै **बिलाड़ा** से जयश्री हिरण, प्रकाश हिरण, मंजू हिरण, **बीकानेर** से अशोककुमा सेठिया, **भदेसर** से महावीर जैन अभिनव, **नागौर** से विमलकुमार जैन, शर्मि बोथरा, **श्यामपुरा** से लड्डूलाल, ललितकुमार जैन, **नई समदड़ी** से राजेशकुमा

भंसाली, कल्याण श्रीश्रीमाल, पारसमल नैनमल, नानमल भण्डारी, विजेश लूंकड़, **जलगाँव** से लालचन्द छिंगावत, **गुराड़िया खुर्द** से बाबूलाल छिंगावत, दयानन्द छिंगावत, सुन्दरलाल, **महागढ़** से सुभाषचन्द्र लोढ़ा, **वीलुपूरम** से चारण करणसिंह लाकावत, **भादसोड़ा** से सुरेन्द्रकुमार, गौतमकुमार चंडालिया, तारा चंडालिया, ज्योति अग्रवाल, **कुस्मी अतरिया** से मणिप्रभा पारख, **अहमदाबाद** से रेखा छाजेड़, **सिन्धूर** से ललिता कांकरिया, **पीपाड़शहर** से मीनल बोहरा, **भवानीमण्डी** से मनीषा श्रीश्रीमाल, विपिन जैन, **अजमेर** से रेणुका शर्मा, **बीजापुर** से नन्दा पोरवाल।

पुरस्कृत उत्तरदाताओं के वे घटना-प्रसंग जिसमें यह सिद्ध होता है कि **'नाम का नहीं, काम का महत्त्व है।**

[१]

गर्मी के दिन थे। विक्रमादित्य का दरबार लगा हुआ था। कवि कालीदास भी उपस्थित थे। उनके शरीर से पसीना निकल रहा था। फिर भी वे अपने काम में लगे हुए थे। विक्रमादित्य को अचानक मजाक सूझा। उन्होंने कालीदास से कहा—"कालीदास! आज आप और भी कुरूप लग रहे हैं। मुझे तो आपको देखकर हँसी आ रही है। आपका नाम भी विचित्र है 'कालीदास' और शरीर भी वैसा ही काला है। विधाता ने आपके साथ न्याय नहीं किया है।" कालीदास ने चुपचाप महाराज की बातों को सुन लिया। उन्हें गुस्सा भी आया पर कुछ सोचकर न बोले।

दूसरे दिन जब दरबार लग रहा था तो कालीदास ने चुपचाप दरबार में रखी मिट्टी की सुराही के स्थान पर एक सोने की सुराही रख दी। महाराज को जब प्यास लगी तो वे सोने की सुराही में रखे जल को पीने लगे। वह थोड़ा गर्म था। उन्होंने गुस्से में आकर कहा—"किसने यहाँ से मिट्टी की सुराही हटाई? क्या उसे इतना भी नहीं पता कि सोने की सुराही में जल ठण्डा नहीं रहता है।"

कालीदास ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज, यह सुराही मैंने ही रखी है। सोचा आप नाम को अधिक महत्त्व देते हैं। स्वर्ण से बढ़कर क्या मिट्टी अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकती है? सोने की सुराही का जल पीकर शायद आप तृप्त होंगे, यही सोचकर मैंने यह सुराही रखी थी।"

महाराज का गुस्सा तुरन्त शांत हो गया। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। उन्होंने कालीदास से कहा—"आज आपने मेरी आँखों से पर्दा हटा

दिया। मैं नाम और बाहरी सौन्दर्य को अधिक महत्त्व देता था, उसके
को नहीं। वास्तव में नाम का नहीं, काम का ही महत्त्व है।"

—सुरेशकुमार राठौर, चौमह

[२]

फ्रांस के सम्राट् नेपोलियन सेना में एक साधारण सैनिक के रूप
भरती हुए थे। अपनी बुद्धिमत्ता, होशियारी एवं कर्मशीलता के बल पर बढ़
बढ़ते वे फ्रांस के सम्राट् बने। जब वे सरदार बने तब कुछ अन्य सरदार
ही मन उनसे जलने लगे। ये ऐसे लोग थे जिन्हें सरदारी बपौती के रूप
मिली थी व जिनके पूर्वजों के नाम बहुत ही प्रसिद्ध थे। उन्होंने आपस में
किया कि जलपान के बहाने सभी सरदारों की एक सभा बुलाई जाय और अ
पूर्वजों के नामों का गुणगान किया जाय। जब नेपोलियन की बारी आ
तब उसके पास कहने को कुछ नहीं होगा और उसकी खिल्ली उड़ाई जाये
सभा का आयोजन हुआ। एक-एक करके सरदार उठकर अपने वंश
कीर्ति एवं पूर्वजों के नामों का बखान करते गये। सुनने वाले तालियाँ ब
गये। जब नेपोलियन की बारी आई तो वे भी खड़े हो गये। सभी उत्सुक थे
आखिर नेपोलियन बोलेंगे तो क्या बोलेंगे ?

"बन्धुओ! मेरा वंश............इतना कहकर कुछ क्षणों के लिए वे रुके
सभा की उत्सुकता चरम बिन्दु पर पहुँच गई। एकाएक आत्म-विश्वास के सा
अपनी दोनों बाहें उठाकर नेपोलियन दृढ़ शब्दों में बोल पड़े—"मेरा वंश तो मे
साथ ही शुरू हो रहा है। मुझे अपने पूर्वजों के नामों के द्वारा कोई सफलता
कीर्ति नहीं मिली और न ही कोई आवश्यकता है।" सारी सभा तालियों से गूं
उठी। नेपोलियन के बाद किसी सरदार में पूर्वज पुराण सुनाने की हिम्मत न
हुई, क्योंकि उन्हें समझ में आ गया था कि केवल नाम से कभी लक्ष्य की प्रा
नहीं हो सकती, अपितु कार्यों के द्वारा ही प्रतिष्ठा मिलती है। अतः नाम
नहीं काम का ही महत्त्व है।"

—ब्रजेशकुमारी भाटी, चौमहल्ल

[३]

एक गाँव में एक राजा रहता था। उसका नाम सूरजसिंह था। उ
अपने नाम पर बहुत घमण्ड था। लेकिन उसका काम दुःखियों को और दु
करना, गरीबों को सताना, कमजोरों पर अत्याचार करना आदि था। राजा
बुरे कार्यों से वहाँ के लोग बहुत पीड़ित थे। राजा के इस बुरे व्यवहार से व
के लोग उसे नहीं चाहते थे। एक दिन उस गाँव में एक साधु आया। साधु

भी राजा ने अत्याचार करना चाहा । साधु ने राजा से उसका नाम पूछा । राजा बोला—तुम मेरा नाम नहीं जानते हो ? यहाँ का बच्चा-बच्चा मेरा नाम जानता है । मेरा नाम सूरजसिंह है । इस पर साधु बोले—एक वो सूरज है जो सबको रोशनी देता है और बदले में कुछ भी नहीं लेता और एक सूरज आप हैं जो गाँव का राजा होते हुए भी गाँव के लोगों की सहायता करने के बजाय उन पर अत्याचार करते हैं । गरीबों को सताते हैं । धिक्कार है आप पर । आपको अपने नाम पर बहुत घमण्ड है लेकिन आपका काम कैसा है ? कभी आपने सोचा है ? नाम से नहीं काम से अच्छे बनो, नाम के जैसा अच्छा काम करो । साधु के विचारों को सुनकर राजा का मन बदल गया । राजा ने साधु से कहा कि मैं अब किसी को भी नहीं सताऊँगा, ना ही अत्याचार करूँगा । मुझे अब समझ में आ गया कि नाम का नहीं, काम का महत्त्व है ।

—अरविन्दकुमार नागौरी, बम्बोरा

[४]

एक दिन गाँधीजी, विनोबाजी और अन्य आश्रमवासी रसोई घर में अनाज साफ कर रहे थे । उसी समय कोट-पतलून में सजे एक नामी वकील साहब गाँधीजी से मिलने आये । उनके लिये चटाई का आसन जमीन पर बिछाकर गाँधीजी बोले—"बैठिये ।"

वकील साहब (खड़े-खड़े)—"गाँधीजी ! मैं यहाँ बैठने के लिए नहीं आया हूँ । मुझे कोई काम चाहिये । आप मेरे लायक कोई काम मुझे सौंपेंगे इसी आशा से मैं आश्रम में आया हूँ ।"

"बड़े आनन्द की बात है ।" कहकर गाँधीजी ने दो-तीन थाली अनाज वकील साहब के सामने साफ करने के लिए रख दिया और कहा कि इसे इस तरह साफ कीजिये कि इसमें एक भी कंकड़ न रहे ।

अपने सामने अनाज की ढेरी देखकर वकील साहब बड़े सोच में पड़ गये । उन्हें लगा—अनाज की सफाई तो स्त्रियों और नौकरों का काम है, वकील जैसे बुद्धिमान आदमी से गाँधीजी ऐसा हल्का काम लेते हैं, कैसी अजीब बात है ? बड़े अनमने भाव से बोले—"अनाज सफाई का काम मुझे करना होगा ?"

गाँधीजी—"हाँ ! अभी तो मेरे पास यही काम है ।"

"अब क्या किया जाये ?" वकील साहब परेशानी में पड़ गये । उन्होंने सोचा था—गाँधीजी कुर्सी टेबल पर बैठकर लिखने का या ऐसा कोई दूसरा

दिमागी काम देंगे । लेकिन गाँधीजी ने तो रसोईघर में काम करने का ऐसा सौंपा जिसका उनकी निगाह में कोई महत्त्व नहीं । पर गाँधीजी से न कहने भी उनमें हिम्मत नहीं थी । आखिर अनाज साफ करने बैठ गये । काम पूरा जाने पर गाँधीजी से विदा ली । गाँधीजी जीवन के लिये उपयोगी सारे कामों एकसा महत्त्व मानते थे । जीवन में छोटा या बड़ा जो भी काम अपने हिस्से आये, उसे मन लगाकर जिम्मेदारी और कुशलता से पूरा करना चाहिये । नाम का नहीं, काम का महत्त्व है ।

—श्री सुनीलकुमार, चौमहू

जैन तत्त्वज्ञान स्नातक शिक्षण शिविर सम्पन्न

पीपल्याकलां—श्री समता जैन शिक्षण संस्थान की ओर से आयो जैन तत्त्वज्ञान स्नातक शिक्षण शिविर यहाँ ८, ९ व १० नवम्बर को आ श्री नानेश के सान्निध्य में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ । इस शिविर में वाणिज्य, विज्ञान, कानून, इंजीनियरिंग, चार्टर्ड एकाउन्टेन्सी आदि संका ६५ स्नातक-स्नातकोत्तर छात्र-छात्राओं ने भाग लिया । प्रातःकालीन सत्र आचार्य श्री नानेश ने 'समता सिद्धान्त दर्शन' एवं 'अनेकान्त' पर विशेष प्रव दिये । अपराह्न में विद्वानों में डॉ. नरेन्द्र भानावत (अहिंसा : सिद्धान्त प्रयोग), डॉ. नेमीचन्द जैन (व्यसन-मुक्ति और शाकाहार) श्री सोहनलाल (अपरिग्रह) के तथा सन्तों में पं. रत्न श्री ज्ञान मुनि (महावीर का जीव वर्तमान परिप्रेक्ष्य में), श्री राम मुनि (जैन आचार) तथा श्री सम्पत मुनि (धर्म की मौलिक विशेषताएँ) के विशेष व्याख्यान हुए । रात्रिकालीन सत्र श्री कन्हैयालाल लोढ़ा ने धर्म और विज्ञान तथा जैन धर्म के मनोवैज्ञानिक का विशेष विवेचन किया । परिचर्चा एवं प्रश्नोत्तर में शिविरार्थियों ने वि रुचि दिखाई । आचार्यश्री से समाधान पाकर वे सन्तुष्ट हुए । इस शिविर यह विशेषता रही कि इसमें तीन पीढ़ियाँ एक साथ सम्मिलित हुई और स भागीदारी निभाई ।

समापन समारोह की अध्यक्षता प्रमुख समाजसेवी श्री गणपतरा बोहरा ने की । शिविर व्यवस्थापक श्री पंकज शाह ने धन्यवाद दिया । शि के संयोजक डॉ. नरेन्द्र भानावत ने आगामी शिविर में भाग लेने के लिए सब आह्वान किया । शिविरार्थियों ने अपने अनुभव व सुझाव प्रस्तुत किये । कार्य का संचालन श्री राजेन्द्र सिंघवी ने किया । इस शिविर से उच्च शिक्षित पीढ़ी में जैन तत्त्व जानने की विशेष प्यास जागी ।

Buddha the compassionate

Lord Buddha, glorious like the morning sun, watched a tired flock of sheep walking past. When enquired, the shepherd explained, "They are all going to be sacrificed at the yagna conducted by King Bimbisara of Magada. And this little lamb, who is limping, is not able to keep up with the rest".

At this, Lord Buddha picked up the little lamb, put him across His shoulders, smiled and said, "Dear man, we shall go to Magada together".

In Magada the herd went into the yagna shala, and the man with the sword, put the lamb to the bali peet. Buddha put out a restraining hand and exclaimed "Oh King! Do not kill this lamb—or any other animal! Take my life instead. But remember, God never wants the life of any animal—for both man and animal are equally beloved to Him".

No more blood flowed in Magada after that, and man and animal lived in mutual trust and peace.

—Courtesy—Animal Welfare Board of India, Madras-18

एक जनवरी से 'जिनवाणी' पत्रिका के शुल्क में वृद्धि

वर्तमान कागज की महंगाई और पोस्टेज दरों में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण "जिनवाणी" पत्रिका के शुल्क में बढ़ोतरी करने का निर्णय लिया गया। यह बढ़ोतरी (नया शुल्क) दिनांक १ जनवरी, १९९२ से प्रभावी होगी—

क्र.सं.	विवरण	वर्तमान शुल्क	संशोधित शुल्क
१.	स्तम्भ सदस्यता	रु. १,००१/-	रु. २,०००/-
२.	संरक्षक सदस्यता	रु. ५०१/-	रु. १,०००/-
३.	आजीवन सदस्यता (देश में)	रु. २५१/-	रु. ३५०/-
४.	आजीवन सदस्यता (विदेश में)	रु. ७५१/-	रु. १,५००/-
५.	त्रिवार्षिक सदस्यता	रु. ५५/-	रु. ८०/-
६.	वार्षिक सदस्यता	रु. २०/-	रु. ३०/-

चैतन्य ढढ्ढा
मंत्री

समाज-दर्शन

ज्ञान-ध्यान और त्याग-तप की अनवरत प्रभावना

जोधपुर—रत्नवंश के अष्टम पट्टधर श्रद्धेय पूज्य आचार्य प्रवर श्री हीराचन्द्रजी म. सा., परम श्रद्धेय उपाध्याय पं. रत्न श्री मानचन्द्रजी म. सा. आदि ठाणा १० तथा साध्वी प्रमुखा प्रवर्तिनी महासती श्री बदन-कँवरजी म. सा., उप प्रवर्तिनी महासती श्री लाडकँवरजी म. सा. आदि ठाणा ८ के चातुर्मास के सुयोग से ज्ञान-ध्यान और त्याग-तप की निरन्तर प्रभावना हो रही है।

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व की अष्ट दिवसीय आराधना घोड़ों के चौक, महावीर भवन-सरदारपुरा और पावटा तीनों ही स्थानों पर अत्यन्त उमंग-उल्लास के साथ की गई। तपाराधन के क्षेत्र में विशेष उत्साह रहा। चौदह मासखमण तप के साथ दो सौ से ऊपर अठाइयाँ, ग्यारह, पन्द्रह, सत्रह इक्कीस आदि कई बड़ी तपस्याएँ सानन्द सम्पन्न हुई। सेवाभावी सुश्रावक श्री राजेन्द्रजी चोपड़ा ने प्रथम बार मासखमण की दीर्घ तपस्या बिना किसी आडम्बर के की वहीं श्री धनपतचन्दजी खिवसरा दम्पती ने आजीवन शीलव्रत का प्रत्याख्यान कर तप के महत्त्व को जीवन भर के लिए प्रदर्शित किया। युवक-युवतियों एवं बालक-बालिकाओं का तपाराधन में अच्छा उत्साह रहा।

ज्ञानाराधन के क्षेत्र में जहाँ युवकों की साप्ताहिक संगोष्ठियाँ सुव्यवस्थित चल रही हैं वहीं छोटे बालक-बालिकाओं में धार्मिक ज्ञान बढ़े, इस दृष्टि से समय-समय पर शिविर चलाये गये। रविवारीय सार्वजनिक प्रवचनों में विविध विषयों पर प्रभावी प्रवचनों का विशेष लाभ प्राप्त हो रहा है।

श्रद्धेय पूज्य आचार्य प्रवर एवं परम श्रद्धेय उपाध्याय प्रवर प्रति दिन सन्त-सतीगणों को मध्याह्न में सूत्रकृतांग एवं आवश्यक सूत्र की वाचना देते हैं जिसका लाभ भाई-बहिन भी निरन्तर उठा रहे हैं।

परमाराध्य महामहिम आचार्य भगवन् पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. की हर माह पुण्य तिथि त्याग-तप के साथ मनाई जाती है। आसोज शुक्ला अष्टमी को छठी मासिक पुण्य तिथि जहाँ एक ओर सामूहिक आयंबिल साधना के साथ मनाई गई वहीं श्री अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद्

के माध्यम से त्रिदिवसीय विद्वत् संगोष्ठी कार्यक्रम में आचार्य भगवन् के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर देश भर से आए करीब ५० विद्वानों ने अपने शोधपूर्ण निबन्ध पढ़े और आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. की स्मृति में व्याख्यानमाला का सफल आयोजन रखा गया।

आसोज शुक्ला पूर्णिमा (शरद पूनम) को युवारत्न बन्धुओं ने सामूहिक भजन का कार्यक्रम रखा। श्रद्धेय पूज्य आचार्य प्रवर, परम श्रद्धेय उपाध्याय प्रवर एवं सन्तों ने आचार्य भगवन द्वारा तन्मयता पूर्वक शरद पूर्णिमा पर गाये जाने वाले भजनों को भक्ति-भाव पूर्वक प्रस्तुत किया। भजन रसिक श्री गौतम मुनिजी म. सा. ने युवारत्न बन्धुओं को संगीत से जोड़ा अतः युवाओं का विशेष उत्साह बना रहा।

दिनांक २८ अक्टूबर से १ नवम्बर तक का स्वाध्याय शिविर प्रारम्भ हुआ जिसमें विभिन्न क्षेत्रों के स्वाध्यायियों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया।

ध्यान शिविर, स्वाध्याय शिविर, साधना शिविर जैसे विविध कार्यक्रमों और सामायिक-स्वाध्याय की निरन्तर चल रही प्रवृत्ति से ज्ञान-ध्यान और त्याग-तप की अनवरत प्रभावना का सुन्दर स्वरूप चातुर्मास का प्रमुख आकर्षण कहा जा सकता है।

विभिन्न स्थानों से श्री संघों का एवं दर्शन-वन्दन, प्रवचन-श्रवण और सत्संग-सेवा की दृष्टि से भाई-बहिनों का निरन्तर आवागमन रहने से स्थानीय संघ को सेवा का अपूर्व लाभ भी प्राप्त हो रहा है।

आचार्य भगवन् के कृपा-प्रसाद से जोधपुर की तरह मेड़ता, बिलाड़ा, बारनी, बजरिया, नसीराबाद, भोपालगढ़, किशनगढ़ और पालासनी सभी स्थानों पर धर्म प्रभावना का अपूर्व उल्लास है।

—अनराज बोथरा, मंत्री

पंचदिवसीय साधना-शिविर

जोधपुर—श्रद्धेय आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म. सा. एवं श्रद्धेय उपाध्याय श्री मानचन्द्रजी म. सा. आदि ठाणा के सान्निध्य में, घोड़ों के चौक, जोधपुर में पंचदिवसीय साधना शिविर दिनांक २ अक्टूबर, १९९१ से ६ अक्टूबर, १९९१ तक सम्पन्न हुआ। शिविर में कोटा, सवाईमाधोपुर, भदेसर (मेवाड़), उदयपुर, हिण्डौन, जोधपुर तथा दिल्ली के २३ साधकों ने भाग लिया। स्थानीय बन्धुओं एवं बहिनों ने भी शिविर में समयानुसार रुचि पूर्वक भाग लिया। इस शिविर

में साधना का मुख्य विषय 'कषाय विजय' रखा गया था। संचालक श्री सम्पत-राजजी डोसी ने **कषाय के स्वरूप** एवं **कषाय विजय** के व्यावहारिक उपायों की विस्तार से चर्चा की। साथ ही कषाय विजय का क्रियात्मक अभ्यास भी किया गया।

सभी साधकों ने ५ ही दिन दयाव्रत में रहते हुए तप, ध्यान, मौन एवं स्वाध्याय की साधना की। उत्तराध्ययन के २८वें अध्ययन **मोक्ष मार्ग** का स्वाध्याय किया गया। पंचपरमेष्ठी के गुण-चिन्तन रूप तथा अनित्यादि भावनाओं का चिन्तन रूप ध्यान-निर्देशन पद्धति से करवाया गया। इसके साथ श्वास पर मन को एकाग्र करने रूप ध्यान की साधना भी की गई। इस विधि की जोधपुर निवासी श्री रंगरूपमलजी डागा ने विस्तार से व्याख्या की।

शिविर के एक सत्र में साधकों द्वारा घर पर की जाने वाली साधना का लेखा-जोखा किया गया तथा कठिनाइयों का समाधान प्राप्त किया गया।

शिविर के अन्तिम दिन श्रद्धेय आचार्य प्रवर से सभी साधकों ने बहुओं को दहेज हेतु तंग न करने, नौकर, मुनीम आदि के साथ दुर्व्यवहार न करने, मिथ्यादृष्टि देवों की पूजा न करने, मृत व्यक्ति की हड्डियाँ हरिद्वारादि न ले जाने, घर में रखे हुए गुरुदेव के फोटो को नमन न करने आदि के त्याग किए। विशेषतः दो साधकों ने श्रावक के १२ व्रत एवं दो ने ५ अणुव्रत भी ग्रहण किए। सभी साधकों ने १ वर्ष, ४ मास, १ मास आदि तक क्रोध नहीं करने के भी त्याग किए। दो नये साधकों ने साधक संघ की सदस्यता ग्रहण की।

—चाँदमल कर्णावट
संचालक—साधना विभाग, उदयपुर

अभिनन्दन एवं बधाई

पीपल्याकलां—अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ के २९वें अधिवेशन में ६ अक्टूबर को जैन, धर्म, दर्शन और साहित्य के प्रमुख विद्वान् डॉ. छगनलाल शास्त्री को उनकी कृति 'जैन योग साहित्य समीक्षात्मक परिशीलन' पर ११०००/- रुपये का 'श्री प्रदीपकुमार रामपुरिया स्मृति साहित्य पुरस्कार' प्रदान किया गया। इस अवसर पर संघ की ओर से श्री मीठालाल सरूपरिया, श्री दिनेश तथा महेश नाहटा को उनकी विशिष्ट सेवाओं के लिए 'श्री मूलचन्द पारख स्वाध्याय पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया।

लुधियाना—आचार्य सम्राट् श्री आतमा रामजी म. सा. की १०९वीं जयन्ती पर २२ सितम्बर को आयोजित समारोह में 'आत्म रश्मि' के सम्पादक प्रमुख विद्वान् पं. तिलकधर शास्त्री को उनके ७५वें जन्म दिवस पर जैन साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में की गई उनकी विशिष्ट सेवाओं के लिए सम्मानित किया गया। विभिन्न संस्थाओं ने अपनी ओर से सम्मान राशि भेंट कर शास्त्रीजी के प्रति बहुमान प्रकट किया। इस अवसर पर सभी जैन समुदायों के सन्त-सती एवं भाई-बहिन उपस्थित थे।

जोधपुर—यहाँ के प्रतिष्ठित श्रावक एवं आचार्य श्री के परम भक्त श्री माणकलालजी बालिया के सुपुत्र श्री राजेशजी बालिया को राजस्थान उच्च न्यायालय ने अतिरिक्त न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया है।

किशनगढ़—आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म. सा. की आज्ञानुवर्तिनी शिष्या महासती श्री तेजकँवरजी के सान्निध्य में श्रीमती पुष्पा जैन ने ३५ उपवास की तपस्या कर अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है। आप श्री भँवरलालजी बोथरा की पुत्रवधू एवं श्री रिखबचन्दजी बोथरा की धर्मपत्नी हैं। आपके पिता श्री पारसमलजी ढाबरिया एवं माता मनभरीदेवी परम गुरु-भक्त एवं तपस्वी हैं। इस उपलक्ष में श्री भंवरलालजी बोथरा ने सपत्नीक आजीवन शीलव्रत के नियम लिए हैं व श्री हरखचन्दजी पोखरणा ने अठाई करने का संकल्प किया है।

भवानीमण्डी—२९ सितम्बर को 'जैन इन्टेलेक्चुयल' द्वारा आयोजित क्षमा-पर्व पर अहिंसा प्रचार-प्रसार एवं पशुवध रोकने के उल्लेखनीय कार्यों के लिए प्रसिद्ध लेखक एवं समाजसेवी एडवोकेट श्री राजेन्द्रप्रसादजी जैन तथा पंचपहाड़ के जैन संघ अध्यक्ष श्री माणकचन्दजी बोहरा को सम्मानित किया गया।

जयपुर—राजस्थान विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग की एम. ए. की छात्रा एवं 'जिनवाणी' की लेखिका अनीता मेहता 'नेकी' को 'कादम्बिनी साहित्य समारोह' में कहानी वर्ग में प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

भवानीमण्डी—मांस-मदिरा त्यागी स्थानीय हरिजन नेता श्री मांगी-लालजी राणवा गांव-गांव, नगर-नगर घूमकर जन-साधारण तक व्यसन मुक्ति, शाकाहार एवं अहिंसा का प्रचार कर रहे हैं।

बीकानेर—अ. भा. जैन विद्वत परिषद् के पूर्व अध्यक्ष एवं प्रमुख समाजसेवी श्री भँवरलालजी कोठारी को राज्य सरकार ने बीकानेर नगर विकास न्यास का अध्यक्ष मनोनीत किया है।

सभी का हार्दिक अभिनन्दन एवं बधाई।

दो प्रतियोगिताएँ

[१] आगम ज्ञान प्रसारण अभियान प्रतियोगिता

वर्तमान में आगम ज्ञान की वृद्धि के लिए आगम अनुयोग ट्रस्ट अहमदावा एक अभियान प्रारम्भ कर रहा है।

इस अभियान में कोई भी भाई-बहिन सम्मिलित हो सकते हैं।

इस अभियान में जो सम्मिलित हों उनको नीचे लिखे आगमों में से ए आगम कंठस्थ करना होगा—उसके मूल पाठ का शुद्ध उच्चारण, शुद्ध लेख तथा मूल पाठ का भावार्थ समझाना होगा। कार्तिक पूर्णिमा के पहले जिनकी ओर से सूचना प्राप्त होगी, वे ही इस अभियान में सम्मिलित समझे जाएँगे।

आगम कंठस्थ करने की अवधि छः मास की रहेगी।

परीक्षा-स्थल की तथा परीक्षा दिनांक की सूचना 'तरुण जैन' आ धार्मिक सामाजिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित की जाएगी।

आगम परीक्षा में उत्तीर्ण भाई-बहिनों की तीन श्रेणियां रहेंगी।

प्रथम श्रेणी में जो उत्तीर्ण होगा उसे ५ ग्राम की रत्न-जड़ित सोने की अंगूठी,

द्वितीय श्रेणी में जो उत्तीर्ण होगा उसे ३ ग्राम की सोने की अंगूठी,

तृतीय श्रेणी में जो उत्तीर्ण होगा उसे ढाई ग्राम की सोने की अंगूठी पुरस्कार में दी जाएगी।

आगमों के नाम—(१) स्थानांग सूत्र, (२) समवायांग सूत्र, (३) प्रश्न व्याकरण सूत्र, (४) प्रज्ञापना, (५) जीवाभिगम।

जैन धर्म का तत्व ज्ञान बढ़ाने के लिए इन आगमों को कंठस्थ करना चाहिए।

[२] सूर्य प्रज्ञप्ति शोध निबन्ध प्रतियोगिता

आयोजक—**आगम अनुयोग ट्रस्ट अहमदाबाद**

सूर्य प्रज्ञप्ति—जैन ज्योतिष का प्रमुख आगम है—इस पर शोध निबन्ध लेखक ही प्रतियोगिता में सम्मिलित माना जाएगा।

इस प्रतियोगिता में ज्योतिष का कोई भी विद्वान सम्मिलित हो सकता है। नीचे लिखे विषयों पर शोधपूर्ण लेखन करना आवश्यक होगा।

१—सूर्य प्रज्ञप्ति के संकलन काल की शोध अर्थात् यह आगम कितना प्राचीन है? यह सिद्ध करना होगा।

२—इस आगम में उक्त प्रतिपत्तियों के उद्धरण किन-किन ग्रन्थों से उद्धृत हैं।

३—गणित प्रधान इस आगम में फलित के कितने सूत्र हैं? ये सूत्र किन ग्रन्थों में उपलब्ध हैं?

४—इस आगम में प्रतिपादित गणित के सूत्र ज्योतिष के अन्य ग्रन्थों में भी उपलब्ध हैं तो सभी सूत्रों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाए।

५—क्या इस आगम में सभी सूत्र पूर्ण हैं? यदि कुछ अपूर्ण हैं तो उन्हें किन सूत्रों के आधार से पूर्ण किया जाय?

निबन्ध भेजने की अन्तिम तिथि—अक्षय तृतीया दिनांक ५ मई, १९९२। पुरस्कार योग्य तीन श्रेणियाँ रहेंगी—प्रथम पुरस्कार पाँच हजार रुपये, द्वितीय पुरस्कार तीन हजार रुपये, तृतीय पुरस्कार डेढ हजार रुपये।

निर्णायक समिति का निर्णय सर्वमान्य होगा।

विशेष जानकारी के लिए नीचे लिखे पते पर सम्पर्क करें :—

—डॉ. सोहनलाल संचेती
"संचेती भवन" चाँदी हाल,
जोधपुर (राज०)-३४२००१

—आगम अनुयोग ट्रस्ट
१५, स्थानकवासी सोसायटी,
नारायणपुरा क्रॉसिंग, अहमदाबाद-१३

संक्षिप्त समाचार

बजरिया, सवाई माधोपुर—परम पूज्य स्व. आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म. सा. की सुशिष्या एवं रत्नवंश के अष्टम पट्टधर आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म. सा. की आज्ञानुवर्तिनी परम विदुषी महासती श्री मैनासुन्दरी जी म. सा., मधुर व्याख्यानी महासती श्री रतनकंवर जी म. सा. आदि ठाणा ८ के सान्निध्य में श्री जैन रत्न युवक संघ के सदस्यों एवं श्री महावीर जैन धार्मिक पाठशाला के शिक्षार्थियों का धार्मिक शिक्षण शिविर दिनांक ८-१०-९१ से १४-१०-९१ तक आयोजित किया गया। शिविर में युवकों एवं शिक्षार्थियों की कुल संख्या ११४ रही। दिनांक १५-१०-९१ को समापन समारोह की अध्यक्षता श्री राधेश्याम जी जैन, क्षेत्रिय अध्यक्ष, श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ एवं अध्यक्ष, श्री श्वे.स्था. जैन श्री संघ, सवाई माधोपुर ने की एवं मुख्य अतिथि थे श्री फूलचन्द जी जैन, भूरीपहाड़ी वाले, इन्दौर। इससे पूर्व दिनांक २४-९-९१ से १-१०-९१ तक श्राविकाओं एवं बालिकाओं के एक शिविर का आयोजन महासती जी म. सा. के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। जिसमें ७० महिला शिविरार्थियों ने भाग लिया। समापन समारोह की अध्यक्षता श्री हीराचन्दजी हीरावत, जयपुर ने की। मुख्य अतिथि मंडल के कार्याध्यक्ष श्री टीकमचन्दजी हीरावत थे। दोनों शिविरों

में धर्माराधना बहुत ही अच्छी हुई। अध्यापन सहयोगी महानुभावों का संघ ओर से बहुमान किया गया तथा शिविरार्थियों को पुरस्कृत किया गया।

टोंक—स्वामी सत्यभक्त की अनुपम रचना 'मूढ़ता की वकालत' की प्रतियाँ तक डाक व्यय पचास पैसे मात्र भिजाने पर प्रचारार्थ निःशुल्क भेजी जाती हैं। संस्थाओं को मांग के अनुसार डाक व्यय भिजाने पर अधिक भी भेजी जाती हैं।

—मंत्री, जीव दया मंडल ट्रस्ट
डागा सदन, संघपुरा, टोंक (राज) ३०४००

पीपल्याकलां—यहाँ ८ से ११ अक्टूबर तक संघ अध्यक्ष श्री भँवरलालजी बैद की अध्यक्षता में संघ का २६वाँ वार्षिक अधिवेशन सानन्द सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन में कई जनहितकारी कल्याणकारी निर्णय लिए गये यथा:- धर्मपाल प्रवृत्ति को आत्मनिर्भर बनाने के लिए धर्मपाल समाज को सौंपना, रतलाम स्थित दिलीपनगर छात्रावास परिसर में अ. भा. समीक्षण ध्यान केन्द्र की स्थापना करना, स्वधर्मी बन्धुओं को चिकित्सा सुविधा सुलभ कराने के लिए एक करोड़ की समता जन कल्याण निधि स्थापित करना, आगामी वर्ष बेरोजगार स्वधर्मी युवकों को रोजगार दिलाना। अधिवेशन का उद्घाटन मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री सुन्दरलालजी पटवा ने किया। राजस्थान की पर्यटन मंत्री पुष्पा जैन ने भी अपने विचार व्यक्त किये। इस अवसर पर महिला समिति का भी अधिवेशन हुआ, जिसमें श्रीमती शांता मेहता, रतलाम को आगामी सत्र के लिए अध्यक्ष मनोनीत किया गया। 'श्रमणोपासक' का 'श्री गणेश जैन छात्रावास रजत जयन्ती विशेषांक' का विमोचन भी किया गया। आचार्य श्री नानेश, पं. रं. श्री राममुनि, श्री ज्ञानमुनि आदि संतों ने प्रेरक उद्बोधन दिये।

पीपाड़ सिटी—२२ अक्टूबर को उपाध्याय श्री पुष्करमुनि जी का ८२वाँ जन्म दिवस 'अहिंसा सम्मेलन' के रूप में आयोजित किया गया। राजस्थान विधान सभा के अध्यक्ष श्री हरिशंकर भाभड़ा ने जैन संतों की महान् देन पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर श्री चम्पालाल एच. कोठारी, रा० उ० प्रा० विद्यालय की आधार शिला भी रखी गयी। कर्मविज्ञान भाग–२, तमसो मा ज्योतिर्गमय तथा तीर्थंकर चरितावली का विमोचन भी किया गया। २३ अक्टूबर को राजस्थान प्रान्तीय स्थानकवासी जैन कॉन्फ्रेंस का अधिवेशन श्री उमरावमलजी चौरड़िया की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इसमें जैन एकता, सामूहिक विवाह एवं 'जीवन-प्रकाश योजना' को प्रभावी बनाने पर विचार किया गया।

बम्बई—श्री बाबूलाल जैन 'उज्ज्वल' ने अपील की है कि 'गिनिज बुक ऑफ जैन समाज रिकार्डस' ग्रंथ में सम्मिलित करने के लिए जैन समाज के सभी वर्ग के लोग अपने-अपने क्षेत्र में स्थापित विश्व रिकार्ड की पूर्ण एवं प्रामाणिक

जानकारी भेजें—'उज्ज्वल-प्रकाशन, १०५, तिरुपति अपार्टमेन्ट्स, आकुर्ली क्रॉस रोड़ नं० १, कांदिवली (पूर्व) बम्बई-४००१०१ (महाराष्ट्र)।

नई दिल्ली—यहाँ उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी म. सा. का जन्म शताब्दी समारोह १३ अक्टूबर को प्रवर्तक श्री रमेश मुनिजी के सान्निध्य एवं केन्द्रीय मंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर 'जन्म शताब्दी ग्रंथ' का विमोचन किया गया। कत्लखानों पर रोक लगाने की अपील की गई और बड़ी संख्या में भाई-बहिनों ने 'श्रावक व्रत संकल्प' पत्र भरे।

बम्बई—अहिंसा, अनेकान्त, शाकाहार आदि के प्रचार-प्रसार तथा जैन छात्रों के लिए छात्रावास व चिकित्सा के लिए सेनेटोरियम बनाने के उद्देश्य से श्री जैन सेवा संघ की स्थापना की गई है, जिसके अध्यक्ष श्री शान्तिप्रसाद जैन, मानदमंत्री श्री उगमराज लूणावत व कोषाध्यक्ष श्री धर्मचन्द कोठारी हैं। संघ ने इस वर्ष अहिंसा के लिए श्री मुरारजी देसाई एवं शान्ति मिशन के लिए सांसद श्री सुनीलदत्त को सम्मानित करने का निर्णय लिया है।

जोधपुर—श्री मिलापचन्दजी बोहरा द्वारा प्रायोजित अ. भा. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड जोधपुर का १९९१ का परिणाम खण्ड 'अ' का ९६ प्रतिशत, 'ब' का ९४ प्रतिशत एवं खण्ड 'स' का ९८ प्रतिशत रहा। परीक्षा के समय ८१२२ सामायिक तथा १८९ दया की आराधना हुई। भारतवर्ष के ६३ स्थानों के ३९९८ परीक्षार्थियों ने परीक्षा दी।

गुन्टुर (आंध्र प्रदेश)—श्री राजेन्द्रसूरी जैन साहित्य समिति द्वारा आंखों का आठवाँ शल्य चिकित्सा शिविर १८ अक्टूबर को सम्पन्न हुआ, इसमें १२१५ लोगों की आँखों की जाँच की गई एवं १८० लोगों के आँखों के ऑपरेशन किये गये। रोगियों को चश्मे वितरित किये गये। प्राणीमित्र श्री रामकृष्ण पीला की अपील पर १५ लोगों ने मांसाहार छोड़ने की प्रतिज्ञा की जिसमें म्युनिसिपल चेयरमैन श्री गोयप्पा भी शामिल है।

नाथद्वारा—श्री गणेशमुनि जी के सान्निध्य में आचार्य श्री अमरसिंह जी म. सा. की ३९९वीं जयन्ती तप त्यागपूर्वक मनाई गई।

नई दिल्ली—जैन महासभा के तत्त्वावधान में आयोजित विश्वमैत्री एवं क्षमापन दिवस का उद्घाटन प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिंहराव ने किया। अध्यक्षता प्रसिद्ध वैज्ञानिक शिक्षाविद् डॉ. दौलतसिंह कोठारी ने की। इस अवसर पर आचार्य श्री विद्यानन्दजी म., श्री गुलाब मुनि निर्मोही, गणिवर्य श्री विजय विमल मुनि व श्री कमल मुनि 'कमलेश' ने बढ़ती हुई हिंसा पर चिन्ता व्यक्त करते हुए अहिंसा के प्रचार-प्रसार पर बल दिया। महासभा अध्यक्ष श्री रिखब चन्द जैन ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

डूंगला—यहाँ श्री सोहनकंवरजी म. सा. के सान्निध्य में साध्वी तरुणप्रभा जी की ४१ दिन की तपस्या सानन्द सम्पन्न हुई।

दिल्ली (पीतमपुरा)—मुनि श्री रामकृष्णजी म. के सान्निध्य में योगीराज श्री रामलालजी म. का २४वाँ स्मृति दिवस जप दिवस के रूप में मनाया गया। नवकार महामंत्र की जाप संख्या ३६ लाख ७१ हजार तक पहुँच गई।

जयपुर—श्री दिगम्बर जैन पदयात्रा संघ द्वारा जयपुर से महावीरजी तक १२ से १८ अक्टूबर तक पदयात्रा आयोजित की गई, जिसमें ५०० लोग सम्मिलित हुए।

सिकन्दराबाद—महासती श्री रमणिक कँवर जी के सान्निध्य में धार्मिक शिविर आयोजित किया गया, जिसमें १२५ छात्र-छात्राओं ने भाग लिया। आसोज मास के आयम्बिल के मासखमण, एकान्तर व ओली तप की आराधना सानन्द सम्पन्न हुई।

महीदपुर—व० स्था० नवयुवक मण्डल द्वारा रक्तदान शिविर आयोजित किया गया, जिसमें १५ लोगों ने रक्तदान किया।

रामपुरा—जैन पाठशाला में योग्य एवं अनुभवी अध्यापक की आवश्यकता है। इच्छुक सम्पर्क करें—श्री विट्ठुल चौधरी जैन ट्रस्ट, रामपुरा (म. प्र.)

भवानी मण्डी—जैन स्थानक में ५ दिवसीय शिविर लगाया गया जिसमें १३१ बालक-बालिकाओं ने भाग लिया। प्रश्नमंच के साथ चार प्रतियोगिताएं आयोजित की गईं।

देवकर—जैन आगमों का सामान्य जन में प्रचार-प्रसार करने तथा साहित्यिक प्रतिभाओं को उभारने के उद्देश्य से "प्रतिभा" नामक साहित्यिक संस्था का गठन किया गया है। इसके संयोजक श्री राजेश जैन 'धन्नू' व गजेन्द्र बोरा बनाये गये हैं।

बगडून्दा—विदुषी साध्वी श्री चारित्रप्रभाजी एवं डॉ. दर्शनप्रभाजी आदि ठाणा ७ के सान्निध्य में दान, शील, तप, भावना की अपूर्व प्रभावना हुई। साध्वी श्री की प्रेरणा से स्वधर्मी फण्ड बनाया गया है तथा एक चिकित्सालय खोलने का निश्चय किया गया है।

मद्रास—श्री राजस्थानी वेलफेयर सोसाइटी के चुनाव में श्री जवाहरलाल बागमार अध्यक्ष, श्री श्रीकिशन भण्डारी उपाध्यक्ष, श्री धर्मचन्द लूंकड़ मंत्री, श्री महावीरचन्द नाहटा सहमंत्री एवं श्री इन्दरचंद लूंकड़ कोषाध्यक्ष चुने गये।

डूंगला—श्री महावीर जैन नवयुवक मण्डल के चुनाव में श्री सुरेशकुमार मेहता अध्यक्ष, श्री मांगीलाल जारोली उपाध्यक्ष, श्री कैलाशचन्द्र मेहता सचिव,

श्री पूरणमल दाणी सह सचिव एवं श्री मदनलाल मोगरा कोषाध्यक्ष चुने गये।

अन्नानगर (मद्रास)—श्री जैन संघ के चुनाव में श्री जवरीलाल डूंगरवास अध्यक्ष, श्री हुक्मीचंद कुकूलील उपाध्यक्ष, श्री महावीरचंद रांका मंत्री, श्री दलपतसिंह तातेड़ सहमंत्री, श्री विनोदकुमार लोढ़ा कोषाध्यक्ष एवं श्री राजेश कोठारी सह कोषाध्यक्ष चुने गये।

दिल्ली—विश्व पुस्तक मेले में जैन साहित्य का स्टाल लगाया जा रहा है। स्टाल पर अपनी पुस्तकें प्रदर्शित करने के इच्छुक लेखक और प्रकाशक सम्पर्क करें—मेघराज जैन, बी-५/२६३, यमुना बिहार, दिल्ली-११००५३।

शोक-श्रद्धांजलि

जावरा—जैन धर्म दर्शन के कुशल लेखक एवं कवि श्री लक्ष्मीचन्द्र सरोज का ११ अक्टूबर को असामयिक निधन हो गया। 'जिनवाणी' में भी आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती रही हैं।

कुरुक्षेत्र—कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के सेवा निवृत्त हिन्दी प्रोफेसर डॉ० छविनाथ त्रिपाठी का १४ अक्टूबर को असामयिक निधन हो गया। आप अपभ्रंश, हिन्दी साहित्य एवं जैन, बौद्ध व वैदिक दर्शन के प्रखर विद्वान् तथा प्रसिद्ध लेखक थे। 'जिनवाणी' के विशेषांकों में आपके शोध-लेख प्रकाशित होते रहे हैं।

उदयपुर—यहाँ के प्रतिष्ठित श्रावक श्री तखतसिंहजी मुंडिया का २७ सितम्बर का असामयिक निधन हो गया। आप धार्मिक प्रवृत्ति के सरल स्वभावी व्यक्ति थे।

जोधपुर—यहाँ के प्रतिष्ठित श्रावक श्री सम्पतराजजी कवाड़ की धर्मपत्नी श्रीमती विमला देवी का १० अक्टूबर को असामयिक निधन हो गया। आप धर्म परायण, सेवाभावी और सात्विक प्रवृत्ति की सुज्ञ श्राविका थीं। आप पालासनी के धर्म प्रेमी सुश्रावक श्री जंवरीलालजी रांका की सुपुत्री थीं।

जोधपुर—यहाँ के प्रतिष्ठित श्रावक स्वर्गीय श्री मोहनराजजी मेहता की धर्मपत्नी एवं श्री पारसराजजी मेहता की मातु श्री श्रीमती

विमल कँवर का २२-१०-६१ को संथारापूर्वक निधन हो गया। आप धर्मपरायणा, सेवाभावी, व्रतनिष्ठ महिला थीं।

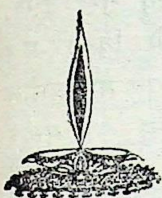
अजमेर—श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ अजमेर के वयोवृद्ध सदस्य श्री हीरालालजी गाँधी का ८७ वर्ष की आयु में २६-१०-६१ को असामयिक निधन हो गया। आप आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म० सा० के अनन्य भक्त व सरल हृदयी थे।

बंगलौर—विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ कि धर्मपरायणा, सेवाभावी, उदारमना सुश्रावक श्री भंवरलालजी गोटावत, उनकी धर्मपत्नी एवं उनकी पुत्रवधू का कर्नाटक एक्सप्रेस रेल-दुर्घटना में असामयिक दु:खद निधन हो गया। इस दुर्घटना में छत्तीस व्यक्तियों के देहावसान हो जाने के समाचार पत्र-पत्रिकाओं में छपे हैं। आपका पूरा परिवार धर्मनिष्ठ सेवाभावी है। आपकी एवं आपके परिवार की आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के प्रति अटूट आस्था एवं अगाध भक्ति थी। आचार्य श्री के बंगलौर प्रवास के समय आपने संकल्प लिया था कि जब तक बंगलौर के २०० श्रावक धर्म स्थान में आकर सामायिक नहीं करेंगे, मैं मिष्ठान का सेवन नहीं करूंगा। आपकी यह भावना साकार हुई। बंगलौर श्री संघ अध्यक्ष के रूप में एवं विभिन्न धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक क्षेत्रों में की गई आपकी समाज को प्रेरित-प्रभावित सेवाएँ सदा स्मरणीय रहेंगी। सारल्य, सादगी एवं सहिष्णुता के धनी श्री गोटावत साहब आडम्बर से दूर रहकर विशिष्ट संयम-साधकों की सेवा-भक्ति में सदा अग्रणी रहे। आचार्य श्री के श्रीमुख से आपने पीपाड़ शहर में आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत के प्रत्याख्यान स्वीकार कर तप का आदर्श प्रस्तुत किया। आचार्य श्री के सोजत पधारने पर आपने एवं आपके परिजनों ने श्रद्धा-भक्ति पूर्वक सेवा की। वस्तुत: आप गुणानुरागी थे। आपका जीवन सात्विक था। प्रामाणिकता के कारण आपकी सर्वत्र पैठ थी। सेवा आपका जीवन धर्म था। आपकी धर्मपत्नी एवं पुत्रवधू भी धर्मपरायण एवं सरल-स्वभावी थीं।

उपर्युक्त दिवंगत आत्माओं के प्रति हम सम्यक्-ज्ञान प्रचारक मण्डल, 'जिनवाणी' एवं अ. भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक-संघ की ओर से हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए शोक विह्वल परिवारजनों के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं।

—सम्पादक

समीक्षार्थ पुस्तक की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है।



साहित्य-समीक्षा

□ डॉ० नरेन्द्र भानावत

१. **सचित्र णमोकार महामंत्र** :—मार्गदर्शक उपाध्याय श्री केवल मुनि, सम्पादक श्रीचन्द सुराना 'सरस', प्र० दिवाकर प्रकाशन ए-७, अवागढ़ हाउस, एम० जी० रोड, आगरा-२८२००२, मू० १००.०० रु०।

णमोकार महामंत्र आत्मोत्थान एवं विश्व-शांति का महामंत्र है। जिसमें अरिहंत, सिद्ध जैसे देव एवं आचार्य, उपाध्याय व साधुओं-गुरुओं को नमन किया गया है। इसके माध्यम से वस्तुतः आत्म-स्वरूप का चिन्तन करते हुए परमात्म-प्राप्ति की साधना को लक्ष्य बनाया गया है। इसमें व्यक्ति विशेष को नमन न होकर ऐसी गुण-सम्पन्न आत्माओं को वन्दन है जिन्होंने राग-द्वेष से मुक्त होकर परमात्म-तत्त्व प्राप्त कर लिया है और प्राप्ति के लक्ष्य की ओर सतत साधनाशील हैं। इस महामंत्र में समस्त शास्त्रों का सार और साधनाओं की प्रेरणा निहित है। इस मंत्र की महत्ता, अवधारणा, स्वरूप-साधना, प्रयोग-विधि, उपासना-पद्धति आदि पर विविध रूपों और शैलियों में विपुल साहित्य की रचना हुई है। धर्म-साधना और जीवन-व्यवहार में यह महामंत्र अत्यन्त लोकप्रिय और बहु-प्रचलित है। इस महामंत्र पर प्रकाशित विशाल साहित्य में इस कृति की अपनी अलग पहचान और विशेषता है। सहज, सरल, भाषा-शैली में बहुरंगी आकर्षक चित्र देकर इस महामंत्र के पदों में निहित गूढ़ भावों-रहस्यों को समझाया गया है, अरूप को रूप दिया गया है। चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान करने की विधि, रंग-प्रयोग, जप-विधि एवं नवपद आराधना की प्रक्रिया को भी सचित्र स्पष्ट किया गया है। महामंत्र के प्रभाव एवं महत्त्व को उद्घाटित करने वाली सचित्र कथाएँ भी दी गई हैं। अन्त में पाँच परिशिष्टों में विविध मंत्रयोग, अनुभव गम्य चामत्कारिक प्रसंग, नवग्रह शांति, जप विधान, नवकार स्तवन, सर्वतोभद्र आनूपूर्वी आदि दिये गये हैं। प्रकाशन भव्य, आकर्षक, उपयोगी और संग्रहणीय है।

२. **विराट सच की खोज में** :—मुनि ललितप्रभ सागर, प्र० श्री जित-यशा श्री फाउण्डेशन, ६ सी, एस्प्लानेड रो ईस्ट, कलकत्ता-७०००६९, पृ० ६४, मू० ६.०० रु०।

मुनि श्री ने मनन, चिन्तन और अनुभूति के क्षणों में जीवन, संसार, संन्यास, शास्त्र, साधना, प्रार्थना, मुनि, समाधि, शील, मौन, मृत्यु, सुख, दुःख, धर्म आदि ६० विषयों के सम्बन्ध में जो सच जाना, समझा उसे विचार-सूत्र में पिरोया है। छोटे-छोटे वाक्यों में जो चिन्तन प्रस्तुत हुआ है, वह सार्वजनीन भावों को व्यक्त करता है। काव्य, दर्शन, मनोविज्ञान और अध्यात्म का सुन्दर समन्वय हुआ है मुनि श्री के चिन्तन में।

३. **नवल सतसई** :—मुनि नरेन्द्र विजय 'नवल', प्र० श्री भूपेन्द्रसूरि साहित्य प्रकाशन समिति, आहोर (राज०) पृ० १२४, मू० ८.०० रु०।

मुनि श्री नरेन्द्र विजय 'नवल' ने साहित्य की विविध विधाओं में धर्म, अध्यात्म और दार्शनिक विचारों की सफल अभिव्यक्ति की है। प्रस्तुत कृति में उनका दोहाकार रूप प्रकट हुआ है। हिन्दी साहित्य में प्रेम, शृंगार, नीति और वीर भावों को लेकर लिखी जाने वाली सतसई काव्य विधा की समृद्ध परम्परा रही है। नीति सतसई-परम्परा में प्रस्तुत कृति का अपना महत्त्व है। इसमें कवि ने अहिंसा, अपरिग्रह, आचार, आहार-शुद्धि, आसक्ति, आत्मा, साधना, उपकार, एकता, क्रोध, करुणा, कर्तव्य, गुरु, तप, तृष्णा, त्याग, विराग, दान, देश-भक्ति, पवित्रता, प्रसन्नता, प्रेम, पूजा, फैशन, ब्रह्मचर्य, भावना, मान, माया, ममता, वाणी, विनय, विवेक, संस्कृति, सत्संग, सेवा, संकल्प, समता, शील, क्षमा, ज्ञान आदि ७७ विषयों पर सहज, सरल भाषा में ७०० दोहे लिखे हैं। प्रत्येक दोहे में कवि ने अपने उपनाम 'नवल' का प्रयोग किया है। यथा—

यह तन तो बस पिंजरा, इसमें बैठा देव।
'नवल' दृष्टि का अन्तरा, सदा उसी को सेव॥
पूर्ण घड़ा छलके नहीं, जो छलके सो आध।
'नवल' तुम तो पूर्ण बनो, फूलो फलो अगाध॥

पुस्तक के अन्त में विभिन्न शास्त्रों से ७७ ऐसे यादगार पॉइन्ट संकलित किये गये हैं जिनसे ७ संख्या का महत्त्व सूचित होता है।

४. **रत्नकरण्ड श्रावकाचार** :—मूल-आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी, हिन्दी पद्यानुवाद, आचार्य श्री विद्यासागर, सम्पादक श्री प्रकाश शाह, प्र० श्रीमद् राजचन्द्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र, कोबा, ३८२००९ (गाँधी नगर) गुजरात, पृ० २२०, मू० १५.०० रु०।

जैन धर्म में मोक्ष-प्राप्ति के लिए आचार की शुद्धता पर विशेष बल दिया गया है। इस सम्बन्ध में श्रमणाचार और श्रावकाचार पर कई ग्रन्थ

उपलब्ध हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ मूल रूप से आचार्य श्री समन्तभद्र द्वारा संस्कृत में रचित है। इसके १५० श्लोकों में रत्नत्रय रूप धर्म के अन्तर्गत सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के अन्तर्गत अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षा व्रत, सल्लेखणा व प्रतिमा अधिकार पर सुन्दर चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। यह कृति श्रावकाचार की प्राचीन, प्रामाणिक और अत्यधिक लोकप्रिय कृति है। इस कृति के अलग-अलग ऐसे कई संस्करण प्रकाशित हुए पर यह संस्करण कई दृष्टि में विशेष महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। इसमें प्रत्येक पृष्ठ पर एक-एक गाथा मूल संस्कृत श्लोक, हिन्दी पद्यानुवाद, गुजराती अन्वयार्थ, हिन्दी गद्यानुवाद, अंग्रेजी गद्यानुवाद के क्रम से दी गई है। आचार्य श्री विद्यासागर द्वारा किया गया पद्यानुवाद भाषा, पदलालित्य एवं गांभीर्य की दृष्टि से सफल बन पड़ा है। गुजराती अन्वयार्थ श्री छोटालाल गाँधी ने किया है। हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद क्रमश: पं० हीरालाल शास्त्री व बैरिस्टर चम्पतराय जैन द्वारा किया गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में प्रमुख विद्वान पं० पन्नालाल साहित्याचार्य की विस्तृत प्रस्तावना है जिसमें रत्नत्रय के शास्त्रीय स्वरूप पर प्रकाश डालने के साथ-साथ श्रावकाचार से सम्बन्धित ग्रन्थ और ग्रन्थकारों का परिचय दिया गया है। पूज्य श्री आत्मानन्दजी के मार्ग-दर्शन में प्रकाशित यह कृति श्रावकाचार को समझने में उपयोगी और मार्ग-दर्शक है।

शोभा

☐ **श्री राकेशकुमार जैन**

शरीर की शोभा — शील से।
शील की शोभा — तप से।
तप की शोभा — क्षमा से।
क्षमा की शोभा — ज्ञान से।
ज्ञान की शोभा — मौन से।
मौन की शोभा — शुभ ध्यान से।
शुभ ध्यान की शोभा — आत्म-चिन्तन से।
आत्म-चिन्तन की शोभा — संवर से।
संवर की शोभा — निर्जरा से।
निर्जरा की शोभा — केवलज्ञान से।
केवल ज्ञान की शोभा — मोक्ष से।
मोक्ष की शोभा — अक्षय सुख से।

—द्वारा श्री भैरूलालजी जैन
कुश्तला (सवाई माधोपुर)



छठी पुण्य तिथि पर

श्री सज्जननाथजी मोदी

आपकी प्रेरणा, धर्म भावना, सरलता और कार्यशीलता, सादगीमय जीवन एवं कर्तव्यनिष्ठता हमारे लिये सदैव स्मरणीय है। उसका अनुसरण करने के लिए शासन देव हम सपरिवार को शक्ति प्रदान करे।

जन्म	:	१४ मार्च १९२६, जोधपुर (राजस्थान)
स्वर्गवास	:	१३ नवम्बर, १९८५, जयपुर (राजस्थान)
पिता का नाम	:	स्व. श्री सौभाग्यनाथजी मोदी
माता का नाम	:	स्व. श्रीमती चाँदकुँवर मोदी
पालक पिता	:	स्व. श्री सरदारनाथजी सा. मोदी
पालक माता	:	श्रीमती धनकुँवर मोदी
धमपत्नी का नाम	:	श्रीमती बिलमकुँवर मोदी
भ्राता के नाम	:	स्व. श्री सुखसम्पतनाथ, श्री सुमेरनाथ मोदी श्री सुन्दरनाथ मोदी
पुत्र का नाम	:	श्री सतीशनाथ मोदी
पुत्र-वधू का नाम	:	श्रीमती गुलाब मोदी
पुत्रियों के नाम	:	श्रीमती स्नेहलता भण्डारी, श्रीमती चन्द्रकान्ता मेहता, श्रीमती राज डागा
कँवर सा. के नाम	:	डॉ. सुरेशचन्द्रजी भण्डारी, डॉ. चैनराजजी मेहता, श्री ज्ञानचन्द्रजी डागा
पौत्र	:	सौरभ मोदी, सुधांशु मोदी, **पौत्री** : प्रियंका मोदी

आपकी आत्मा को शाश्वत शांति प्राप्त हो। ऐसी मंगलमय भावना करते हैं।

संगोष्ठी—समाचार

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विद्वत् संगोष्ठी सम्पन्न

□ डॉ. संजीव भानावत

श्री अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद्, अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल एवं श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, जोधपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म. सा. व उपाध्याय श्री मानचन्द्रजी म. सा. आदि ठाणा १० के सान्निध्य में जैन स्थानक घोड़ों का चौक, जोधपुर में दिनांक १६, १७ व १८ अक्टूबर को **'आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. व्यक्तित्व एवं कृतित्व'** संगोष्ठी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई। इस संगोष्ठी में राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों के लगभग ५० विद्वानों ने भाग लिया एवं अपने निबन्ध प्रस्तुत किये।

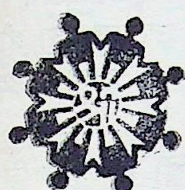
संगोष्ठी का शुभारम्भ करते हुए आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म. सा. ने कहा कि आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. का व्यक्तित्व सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रय का उत्कृष्ट नमूना था और उनका कृतित्व उसके अद्भुत आलोक से प्रकाशित था। जो भी उनके सम्पर्क में आया वह उनके पारस-स्पर्श से स्वर्णिम हो उठा। उपाध्याय श्री मानचन्द्रजी म. सा. ने कहा कि आचार्य श्री ने सामायिक एवं स्वाध्याय का सन्देश देकर ज्ञान का उपयोग समाज-हित में व अपने चरित्र के गठन में करने की प्रेरणा दी। श्री गौतम मुनि ने आचार्य श्री की दिनचर्या एवं साधना पर अपने विचार व्यक्त किये। संगोष्ठी के निदेशक एवं अ. भा. जैन विद्वत् परिषद् के महामंत्री डॉ. नरेन्द्र भानावत ने कहा कि आचार्य श्री ने जीवन-पर्यन्त साधना, स्वाध्याय, साहित्य और सेवा के सुदृढ़ स्तम्भों पर समाज को खड़ा करने का न केवल चिन्तन दिया वरन् उसके लिए वे स्वयं साधनारत रहे।

इस त्रिदिवसीय संगोष्ठी के विभिन्न सत्रों में आचार्य श्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विविध पक्षों पर विद्वानों ने निबन्ध व विचार प्रस्तुत किये। प्रमुख विद्वान् और उनके विषय इस प्रकार थे—पं. कन्हैयालाल दक, उदयपुर

(आगमिक देन), डॉ. धर्मचन्द जैन, भरतपुर (आगम व्याख्याता आचार्य श्री), डॉ. उदयचन्द्र जैन, उदयपुर (आगमिक दृष्टि), डॉ. धनराज चौधरी, जयपुर (आत्म--वैभव के विकास हेतु प्रार्थना), डॉ. संजीव भानावत, जयपुर (आत्मधर्मी आचार्य श्री की लोकधर्मी भूमिका), डॉ. सुषमा सिंघवी, उदयपुर (आचार्य श्री की दार्शनिक मान्यताएँ), डॉ. पुष्पलता जैन, नागपुर (प्रवचन साहित्य-एक मूल्यांकन), डॉ. नरेन्द्र भानावत, जयपुर (काव्य–साधना), डॉ. भागचन्द जैन, नागपुर (इतिहास–दृष्टि), श्रीमती सुशीला बोहरा, जोधपुर (आचार्य श्री एवं नारी–जागरण), डॉ. कुसुमलता जैन, इन्दौर (नारी–विकास), अनुपमा कर्णावट, जोधपुर (नारी–चेतना के विकास में आचार्य श्री की भूमिका), श्री हंसमुख शान्तिलाल शाह, अहमदाबाद (अहिंसा के प्रचार-प्रसार में योगदान), श्री जशकरण डागा, टोंक (साधना विषयक देन), श्री भंवरलाल पोखरना, नवानियां (उत्कृष्ट साधना), श्री कन्हैयालाल लोढ़ा, जयपुर (साधना पक्ष), श्री फूलचन्द मेहता, उदयपुर (सामायिक–साधना), डॉ. प्रेमचन्द रांवका, जयपुर (आत्म-साधना), श्री सुनीलकुमार जैन, इन्दौर (स्वाध्याय प्रणेता), श्री मोहनलाल मेहता, उदयपुर (आगम-मर्मज्ञ), प्रो. छोगमल जैन, इन्दौर (साधना और साधक), श्रीमती कुसुम जैन, इन्दौर (स्वाध्याय), श्री पार्श्वकुमार मेहता, जयपुर (आचार्य श्री की देन), श्री अमृतलाल मेहता, राजनांदगांव (व्यक्तित्व एवं कृतित्व), डॉ. मंजुला बम्ब, जयपुर (आचार्य–परम्परा एवं शिष्य–सम्पदा), श्री केशरीकिशोर नलवाया, इन्दौर (आध्यात्मिक साधना), श्रीमती मंजुलता खिवसरा, देपालपुर (व्यक्तित्व एवं कृतित्व), श्री हीरालाल गांधी, आबूरोड (महान् व्यक्तित्व), श्री अशोककुमार जैन, जयपुर (व्यक्तित्व एवं कृतित्व), श्री लालचन्द जैन, जोधपुर (साधना, साहित्य और इतिहास के क्षेत्र में देन), डॉ. उदय जैन, इन्दौर (स्वाध्याय और आचार्य श्री)।

इस अवसर पर १६ अक्टूबर को **'आचार्य श्री हस्तीमल स्मृति व्याख्यान-माला'** का शुभारम्भ किया गया। जयनारायण व्यास टाउन हॉल में आयोजित प्रथम व्याख्यान **'राष्ट्रीय एकता में जैन सन्तों की भूमिका'** विषय पर राजस्थान विश्वविद्यालय के कला संकाय के अधिष्ठाता संस्कृत प्रोफेसर डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी ने दिया। इसकी अध्यक्षता प्रमुख सर्वोदयी विचारक एवं पत्रकार श्री नेमीचन्द जैन 'भावुक' ने की। खटका राजस्थानी, प्रेमचन्द 'चकमय' एवं चन्द्रेश भण्डारी ने काव्य-पाठ किया। अ. भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के अध्यक्ष श्री मोफतराज मुणोत, महामंत्री श्री जगदीशमल कुंभट, मण्डल के अध्यक्ष डॉ. सम्पतसिंह भांडावत एवं मंत्री चैतन्य ढढ्ढा ने विद्वानों का स्वागत किया। श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ जोधपुर के अध्यक्ष श्री श्रीकृष्णमल लोढ़ा, मंत्री श्री अनराज बोथरा एवं चातुर्मास व्यवस्था समिति के संयोजक श्री सम्पतराज डोसी ने आभार ज्ञापित किया।

विशेष उपहार



दीपावली पर भाई का बहिनों को उपहार

जोधपुर—पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. मानव हित चिन्तना के प्रबल पोषक थे। असहाय भाई-बहिनों की दशा देखकर करुणा के सागर आचार्य भगवन का सतत चिन्तन चलता कि दीन-हीन मनुष्य स्वावलम्बी होकर धर्माराधन में कैसे प्रवृत्ति कर सकते हैं। प्रवचनों के माध्यम से यह चिन्तन समाज के सामने आने पर, समाज हितैषी, गहन चिन्तक श्री डी. आर. मेहता साहब के मस्तिष्क में एक विचार पैदा हुआ कि क्यों नहीं जरूरतमन्द भाई-बहिनों को स्वरोजगार के साधन उपलब्ध करा कर उन्हें आत्म-निर्भर बनाया जाय और निरन्तर निर्व्यसनी जीवन की प्रेरणा की जाकर उनमें संस्कार भरे जायं।

समाजसेवी श्री डी० आर० मेहता साहब ने स्वरोजगार योजना का प्रारूप संघ के सामने प्रस्तुत किया और संघ इस ओर सक्रिय हुआ। परिणाम स्वरूप अब तक १००० से अधिक भाई-बहिनों को आर्थिक सहायता प्राप्त हो सकी है। प्रायः सभी परिवार आत्म-निर्भरता की ओर बढ़ रहे हैं।

दिनांक २-११-९१ को भगवान महावीर विकलांग सहायता समिति-महिला सम्बल प्रकोष्ठ के तत्त्वावधान में विभिन्न ग्रामों की १३३ महिलाओं को १.३० लाख रुपये की राशि से सिलाई मशीनें, कपड़े का व्यापार करने हेतु कपड़ा, मनिहारी सामान, आटा चक्की एवं स्वरोजगार हेतु अन्य सामग्री का वितरण, अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के अध्यक्ष श्रीमान् मोफतराजजी सा. मुणोत की ओर से दीपावली पर एक भाई का बहिनों को उपहार स्वरूप, किया गया।

महिला प्रकोष्ठ की सचिव श्रीमती सुशीला बोहरा की प्रेरणा से श्रद्धेय पूज्य आचार्य प्रवर श्री हीराचन्द्रजी म० सा०, परम श्रद्धेय उपाध्याय पं. रत्न श्री मानचन्द्रजी म०सा० आदि सन्त-सतीगणों के दर्शन-वन्दन और प्रवचन-श्रवण हेतु उपस्थित हुईं। प्रवचन-सभा में श्रीमती सुशीला बोहरा ने महिला सम्बल प्रकोष्ठ का परिचय देते हुए बताया कि विधवा बहिनें, परित्यक्त बहिनें, अर्थाभाव से पीड़ित बहिनें जो अलग-अलग ग्रामों की हैं, अलग-अलग जातियों की हैं, ऐसी बहिनों का सावधानी पूर्वक चयन किया जाता है और उन्हें स्वावलम्बी बनाने का

कार्य पिछले काफी समय से चल रहा है। आज का कार्यक्रम घोड़ों के चौक स्थानक में रखने के पीछे हमारे दो उद्देश्य हैं। मुणोत सा० जैसे भाई का दीपावली पर बहिनों को स्वावलम्बी बनाने की दृष्टि से जिन्स के रूप में उपहार देना और हमारी ये बहिनें श्रद्धेय पूज्य आचार्य प्रवर एवं श्रद्धेय उपाध्याय प्रवर से उद्-बोधन श्रवण कर व्यसनमुक्त जीवन जीने का संकल्प ले सकें।

श्रद्धेय पूज्य आचार्य प्रवर ने अपने प्रभावी प्रवचन में सुखी जीवन के लिए व्यसन-त्याग के साथ सत्पुरुषार्थ और भगवत् स्मरण पर बल दिया। उपस्थित बहिनों ने सप्त कुव्यसन के त्याग के साथ नित्य प्रति एक माला जपने का संकल्प लिया।

श्रीमान् डी० आर० मेहता सा० ने उपस्थित जनसमुदाय के समक्ष भावना व्यक्त करते हुए कहा कि आचार्य भगवन ने हमें अहिंसा के साथ प्रेम, वात्सल्य, करुणा और अनुकम्पा का पाठ पढ़ाया, इसलिए आज महावीर विकलांग सहायता समिति के साथ पवित्र लोग जुड़े हैं। संस्था का काम आपके सामने है। आप भी इस काम में सहयोग दे सकते हैं, देना चाहिये।

उद्योगपति श्री घेवरचन्दजी कानूनगो ने श्री डी० आर० मेहता साहब के मस्तिष्क की उपज और समाज के बन्धुओं के इस तरह सहयोग से बहिनों को आतम-निर्भर बनाने की गतिविधि में जहाँ अपनी ओर से २५ हजार रु० देने की घोषणा की वहीं अन्यान्य सुश्रावकों से उदारता के साथ इस काम में सहयोग की अपील की तो देखते-देखते पैंसठ हजार की राशि एकत्रित हो गई जिसका उपयोग भी इस प्रकार के कार्यों में किया जायगा।

दीपावली के पूर्व एक भाई का अनुकरणीय उपहार पाकर बहिनें हर्षित-गर्वित थीं क्योंकि उन्हें सम्मानजनक काम और अर्थोपार्जन का स्थायी साधन प्राप्त हुआ।

भूल–सुधार

'जिनवाणी' के अक्टूबर, १९९१ के अंक में पृष्ठ संख्या १० के अन्तिम अनुच्छेद की अन्तिम तीन पंक्तियों में मुद्रण एवं प्रूफ असावधानी के कारण एक पंक्ति छपने से रह गई है अत: पाठकों से अनुरोध है कि वे इन पंक्तियों को सुधार कर इस प्रकार पढ़ें—

'..........वासुदेव मानव होते हैं, व्रताराधन को जानते-समझते हैं पर कर नहीं सकते। उनके लिए नरक गति में जाना निश्चित है। दूसरे नरक बंध वाले प्राणी कदाचित् व्रत ग्रहण कर भी लें तब भी आराधक नहीं रह कर विराधक बन जाते हैं। सामान्यत:........ ...'—सम्पादक

'आचार्य श्री हस्ती स्मृति सम्मान' के लिए कृतियाँ आमन्त्रित

परम श्रद्धेय आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. की पुण्य स्मृति में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर द्वारा **'आचार्य श्री हस्ती स्मृति सम्मान'** का शुभारंभ किया जा रहा है। इसके नियम आदि इस प्रकार हैं—

१. यह सम्मान ग्यारह हजार रुपयों का होगा और प्रतिवर्ष सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की ओर से जैन धर्म सम्बन्धी, दर्शन, इतिहास, कला, संस्कृति, साहित्य (काव्य, कथा, निबन्ध, नाटक, जीवनी आदि विधाएँ) विषयक किसी प्रकाशित अथवा अप्रकाशित ग्रंथ पर दिया जायेगा। रचनाओं का मौलिक होना अनिवार्य है। मौलिकता का प्रमाण-पत्र लेखक/प्रकाशक को देना होगा। सम्पादित (संकलित) ग्रंथ स्वीकार्य एवं मान्य नहीं होंगे। सम्मान राशि के साथ प्रशस्ति-पत्र एवं स्मृति-चिह्न भी प्रदान किया जायेगा।

२. मण्डल यह राशि सम्मानार्थ उस विद्वान् को भी भेंट स्वरूप दे सकता है जिसने जैन धर्म सम्बन्धी, दर्शन, इतिहास, कला, संस्कृति, साहित्य आदि क्षेत्र में विशिष्ट योगदान दिया है।

३. इस सम्मान के लिए देश-विदेश के विद्वान् समान रूप से अधिकारी होंगे।

४. प्रकाशित अथवा अप्रकाशित ग्रंथ हिन्दी भाषा में होना चाहिए।

५. सम्मान-वर्ष के पूर्व ५ वर्ष की अवधि में प्रकाशित ग्रंथ ही विचारार्थ स्वीकार्य होंगे।

६. ग्रंथ की (प्रकाशित अथवा अप्रकाशित) चार प्रतियाँ मण्डल को भेजना आवश्यक है।

७. ग्रंथ ७ जनवरी, १९९२ तक मण्डल कार्यालय में पहुँच जाने चाहिए। इस तिथि के बाद प्राप्त ग्रंथों पर विचार नहीं किया जायेगा।

८. मण्डल की सम्मान चयन-समिति का निर्णय सर्वमान्य होगा।

९. ऐसे ग्रंथों पर विचार नहीं किया जायेगा जो खण्डों में प्रकाशित हो रहे हों और अभी तक अपूर्ण हों, लेकिन अपने आप में पूर्ण किन्तु खण्डों में प्रकाशित ग्रंथ पर विचार किया जा सकता है।

उक्त सम्मान के लिए विचारार्थ अपनी कृतियाँ कृपया निम्न पते पर भेजें :—

—मंत्री, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार, जयपुर—३०२ ००३ (राजस्थान)

साभार प्राप्ति स्वीकार

२५१/– रु० 'जिनवाणी' की आजीवन सदस्यता हेतु प्रत्येक

२६३०. श्री महिवाल आसुलाल रतन बोहरा, इचलकरणजी
२६३१. अखिल भारतीय श्री वर्धमान वीतराग जैन श्रावक संघ, जयपुर
२६३२. श्री महेन्द्रकुमार जी कोठारी, अजमेर
२६३३. श्री एस. एस. जैन स्थानक, दिल्ली
२६३४. श्री सुमति ग्वार गम मिल्स, जोधपुर
२६३५. श्री अनिल मेहता, जोधपुर
२६३६. श्री विपिन बाफना, कोटा
२६३७. श्री पल्लव शिमोरिया, दिल्ली
२६३८. श्री चम्पालाल जी नरपतलाल जी लुंकड़, जोधपुर
२६३९. श्री पदमचंद जी खींवसरा, जोधपुर
२६४०. डॉ० डी. आर. सिंघवी, जोधपुर
२६४१. श्री बिलमराज जी महिपतराज जी भण्डारी, जोधपुर
२६४२. श्री गौतमचंद जी कांकरिया, जोधपुर
२६४३. श्री पदमचंद जी कांकरिया, जोधपुर
२६४४. श्री मदनचंद जी कांकरिया, जोधपुर
२६४५. श्री उत्तमचंद जी कांकरिया, जोधपुर
२६४६. श्री शांतिचंद जी कांकरिया, इन्दौर
२६४७. श्री नरेन्द्र सा. धारीवाल, जोधपुर
२६४८. श्री प्रफुल्लचंद जी चौपड़ा, जोधपुर
२६४९. श्री जसवन्तराज जी लूंकड़, जोधपुर
२६५०. श्री प्रवीण जी अब्बाणी, जोधपुर
२६५१. श्री मदनलाल जी लूंकड़, जोधपुर
२६५२. श्री मगराज जी मेहता, जोधपुर
२६५३. श्री गंगाराम जी चौपड़ा, जोधपुर
२६५४. श्री जवाहरलाल जी जैन, जोधपुर
२६५५. श्री रमेशमल जी प्रतीक मेहता, जोधपुर
२६५६. श्री अरुणकुमार जी चोरड़िया, जोधपुर
२६५७. श्री देवरूप जी मेहता, जोधपुर
२६५८. श्री हुक्मराज जी मेहता, जोधपुर
२६५९. श्री चन्दनमल जी जैन, जोधपुर
२६६०. शाह मनीष जी सिसोदिया, जोधपुर
२६६१. श्री दीपक जी लोढ़ा, जोधपुर

२९६२. श्री बुधमल जी हेमन्तकुमार जी, जोधपुर
२९६३. श्री नवरतनमल जी मेहता, जोधपुर
२९६४. श्रीमती सजनकँवर जी मेहता, जोधपुर
२९६५. श्री सागरमल जी सुरेन्द्रकुमार जी जैन, नीमच कैन्ट
२९६६. श्री तिलोकचन्द जी गुलेच्छा, जोधपुर
२९६७. श्री एन. के. मेहता, जोधपुर
२९६८, श्री संजय जी सिंघवी, जोधपुर
२९६९. श्री महावीरचन्द जी भण्डारी, जोधपुर
२९७०. श्री धरमीचंद जी रुनवाल, मद्रास
२९७१. श्री मानमल जी बाफना, पाली-मारवाड़
२९७२. श्री महावीरचंद जी जैन, कातरेला, विलिपुरुम
२९७३. श्री मनोहरकुमार जी रांका, जोधपुर
२९७४. श्री जे. आर. सिंघवी, जोधपुर
२९७५. श्री सोहनराज जी लाडेसकुमार जी रांका, जोधपुर
२९७६. श्री पुखराज जी छाजेड़, जोधपुर
२९७७. श्री ए. सज्जनराज जी सांखला, बैंगलोर
२९७८. श्री कल्याणमल जी रतनलाल जी नाहर, अजमेर
२९७९. श्री सुभाषचंद जी कोठारी, अहमदाबाद
२९८०. श्री पुखराज जी भण्डारी, बिलाड़ा
२९८१. श्री मोहनलाल जी दीपचंद जी मुणोत, इन्दौर
२९८२. श्री संजय जी करनावट, जोधपुर
२९८३. श्री राजेन्द्र जी भण्डारी, जोधपुर
२९८४. श्री विमलचन्द जी गांधी, अहमदाबाद
२९८५. श्री पदमचन्द जी नाहर, जलगाँव
२९८६. श्री सुरेश विरदीचंद जी बरड़िया, जलगाँव
२९८७. श्री कुशलचंद जी बाफणा, जोधपुर
२९८८. श्री महावीरचंद जी बाफना, जोधपुर
२९८९. श्री राजकुमार जी संचेती, जोधपुर
२९९०. श्री अक्षया मोहनोत, जोधपुर
२९९१. श्री शान्तिलाल जी कांकरिया, पाली-मारवाड़
१९९२. श्री संजय जी भण्डारी, नई दिल्ली
२९९३. श्री सुभाषचंद जी भण्डारी, बम्बई
२९९४. श्री गौतमचन्द जी भण्डारी, जोधपुर
२९९५. श्री मनीषकुमार जी रांका, ब्यावर
२९९६. श्री नन्दलाल जी कस्तूरचन्द जी जैन, बानपुर

२९९७. श्री प्रयागचंद जी सिंघवी, जोधपुर
२९९८. श्री मांगीलाल जी हरकचन्द जी सिंघी, लासलगाँव
२९९९. श्री सुभाष जी मन्नालाल जी जैन, भड़गाँव
३०००. श्री सरूपचंद जी उत्तमचंद जी संचेती, पिम्प्री (जि. जलगाँव)
३००१. श्रीमती स्नेहलता मेहता, जोधपुर
३००२. श्री राजूलाल जी दिनेशकुमार जी जैन, बजरिया

'जिनवाणी' को सहायतार्थ भेंट

२५१) श्रीमती बिलमकँवर जी मोदी और श्री सतीशनाथ जी मोदी, जयपुर
श्रीमान् सज्जननाथ जी मोदी की पुण्य स्मृति में भेंट।

५०१) श्री संजीव जी कोठारी, जयपुर
श्री चैतन्यकुमार जी कोठारी की पुण्य स्मृति में भेंट।

१५१) श्री जयसिंह जी बैद, जयपुर
अपने पिताजी श्री जुगलकिशोर जी बैद की पुण्य स्मृति में भेंट।

१०१) श्री नौरतनमल जी कुशलचन्द जी मेहता, जोधपुर
अपने अनुज टीकमचंद जी मेहता की धर्मपत्नी के अठाई तप करने एवं आचार्य प्रवर के दर्शन करने की खुशी में भेंट।

१०१) श्री शान्तिलाल जी मेहता, सुशीला जी मेहता, इन्दौर
पर्युषण पर्व की खुशी में भेंट।

१०१) श्री साबुलाल जी पीपाड़ा, बल्लरी
आचार्य श्री हीराचन्द्र जी म. सा. के दर्शन व चरण स्पर्श करने की खुशी में भेंट।

१०१) श्री पुखराज जी गोगड़, आंगोबाई
सुपुत्र मनसुखलाल एवं श्रीमती केलीदेवी की अठाई तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट।

१०१) श्री प्रकाशचन्द जी श्यामलाल जी आबड़, पालासनी
महासती श्री सरलेश प्रभा जी के पालासनी में चातुर्मास एवं सुनीता व मंजु के तेले की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट।

१०१) श्री सन्तोषचन्द्र जी प्रवीनकुमार जी गुगलिया, बैंगलोर
आचार्य श्री के दर्शन करने के उपलक्ष्य में भेंट।

१०१) श्री वर्द्धमान जी मारू, बड़ी सादड़ी
श्री सुजानमल जी सा मारू की पुण्य स्मृति में भेंट।

१०१) श्री महावीरचन्द जी मेहता एवं श्रीमती सुनैना मेहता, जोधपुर
आचार्य श्री हीराचन्द जी म. सा. एवं उपाध्याय प्रवर श्री मानचन्द जी म. सा. के जोधपुर चातुर्मास के उपलक्ष्य में भेंट।

५१) श्री ताराचन्द जी जैन, किशनगढ़
आचार्य श्री के प्रथम बार दर्शन करने के उपलक्ष्य में भेंट।

५१) श्री बुधमल जी पदमचन्द जी कोठारी, अहमदाबाद
आचार्य श्री के दर्शन एवं शांताबाई के ३० उपवास के उपलक्ष्य में भेंट।

५१) श्री अनिलकुमार जी अजयकुमार जी संचेती, अलवर
पिताजी श्री चौथमल जी संचेती की पुण्य स्मृति में भेंट।

५१) श्री अशोककुमार जी भण्डारी, पालासनी
महासती श्री सरलेश प्रभा जी म. सा., इन्द्रप्रभा जी म. सा. एवं मुक्ति प्रभा जी म. सा. के चातुर्मास की खुशी में भेंट।

५१) श्री राकेश जी भण्डारी, पालासनी
श्री अशोककुमार जी के सम्पूर्ण प्रतिक्रमण याद करने के उपलक्ष्य में भेंट।

५१) श्री विमल जी चौपड़ा, जयपुर
'जिनवाणी' को सप्रेम भेंट।

५०) श्री उम्मेदराज जी कांकरिया, सिघनूर
श्रीमती पानकँवर बाई धर्मपत्नी श्री जयचन्द्र जी छाजेड़ की ३१ की श्रीमती पानकँवर बाई धर्मपत्नी श्री जयचन्द्र जी छाजेड़ की ३१ की तपस्या एवं डॉ. शिवमुनि जी म. सा. के दर्शन करने के उपलक्ष्य में भेंट।

५०) श्री पुखराज जी कोटड़िया, मुगेली
सुपुत्र विजयलाल जी कोटड़िया के विदेश यात्रा जाने की खुशी में भेंट।

३१) श्री प्रकाशमल जी भण्डारी, जोधपुर
धर्मपत्नी श्रीमती विमलकुमारी के अठाई तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट।

३१) श्री राकेश जी भण्डारी, पदम जी भण्डारी, पालासनी
तेले की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट।

३१) श्री हस्तीमल जी शान्तिलाल जी बरड़िया, पालासनी
श्री प्रकाशचन्द जी बरड़िया की पुण्य स्मृति में भेंट।

३१) श्री दिनेश जी भण्डारी एवं सन्तोष जी भण्डारी, पालासनी
अठाई तप के उपलक्ष्य में भेंट।

२५) श्री सागरमल जी मोगरा, बघाना, नीमच
श्री वृद्धिचन्द जी म. सा. के ३२ उपवास के पारणे के उपलक्ष्य में भेंट।

२१) श्री रामस्वरूप जी जैन, कुण्डेरा
'जिनवाणी' को सप्रेम भेंट।

२१) श्री बाबूलाल जी जैन, (उज्ज्वल) बम्बई
कामिनी जैन 'उज्ज्वल' एवं धर्मचन्द जैन के प्रथम बार तेले की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट।

२१) श्री रूपचन्द जी ललितकुमार जी कोठारी, पीपाड़ शहर
श्री ललितकुमार जी की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट।

२१) श्री कैलाशचन्द जी अशोककुमार जी बोहरा, भवानी मण्डी
पिताजी श्री शांतिलाल जी बोहरा की ३२वीं पुण्य तिथि की स्मृति में भेंट।

११) श्री कैलाशचन्द जी अशोककुमार जी बोहरा, भवानीमण्डी
अ. भा. जैन धार्मिक परीक्षा-९१ में भवानी मण्डी परीक्षा केन्द्र की उल्लेखनीय उपलब्धि की प्रसन्नता में भेंट।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर को भेंट

१०१) श्री मोहनलाल जी संचेती, रायचूर
आचार्य प्रवर के दर्शनार्थ जाने की खुशी में भेंट।

१०१) श्रीमती लाडकँवर बाई मेहता, भोपाल
अपनी सुपुत्री श्रीमती शशी बोलिया की पुण्य स्मृति में भेंट।

साहित्य प्रकाशन हेतु सहायतार्थ भेंट

१००१) श्री शान्तिचन्द्र जी दिनेशकुमार जी कटारिया, इन्दौर
आचार्य श्री हस्तीमल जी म. सा. के जीवन चरित्र के लिये भेंट।

५०१/- साहित्य प्रकाशन की आजीवन सदस्यता हेतु

४०९. श्री चन्दनमल जी पारसमल जी पीतलिया, हैदराबाद
४१०. श्री मोहनलाल जी मेहता, जोधपुर
४११. श्री मीठालाल ली चौपड़ा, बाड़मेर
४१२. श्री ताराचन्द जी पुखराज जी मेहर, शियापुर (म. प्र.)
४१३. श्री धरमचन्द जी ऊंकारलाल जी कुदार, मन्दसौर
४१४. श्री राजेन्द्रमल जी टाटिया, नई दिल्ली
४१५. श्री रामकुमार जी कोठारी, कलकत्ता • • •

यह शरीर नौका रूप है, जीवात्मा उसका नाविक है और संसार समुद्र है। महर्षि इस देह रूपी नौका के द्वारा संसार-सागर को तैर जाते हैं। उत्तराध्ययन २३/७३

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, बापू बाजार, जयपुर

आपके लिए उपयोगी साहित्य जो उपलब्ध है

क्र.सं. नाम पुस्तक		लेखक/सम्पादक/अनुवादक	मूल्य
१. गजेन्द्र व्याख्यान माला भाग–३	:	,,	५.००
२. उत्तराध्ययन सूत्र भाग-१-२-३	:	,,	१५.००, ३५.०० व २५.००
३. व्रत प्रवचन संग्रह	:	आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म.	४.००
४. जैन संस्कृति और राजस्थान	:	डॉ. नरेन्द्र भानावत	२५.००
५. पर्युषण पर्वाराधन	:	महासती मैनासुन्दरीजी	७.००
६. सप्त चरित्र संग्रह भाग–२	:		५.००
७. Samayik Sutra (अंग्रेजी में)	:		One Samayik a day
८. सामायिक सूत्र	:		१.००
९. आध्यात्मिक पाठावली	:	पं० शशिकान्त झा	१.००
१०. दीक्षा कुमारी का प्रवास	:	अनु० लालचन्द्र जैन	१५.००
११. आध्यात्मिक आलोक	:	पं० शशिकान्त झा	३०.००
१२. जैनदर्शन : आधुनिक दृष्टि	:	डॉ० नरेन्द्र भानावत	२०.००
१३. जैन विवाह विधि	:	जशकरण डागा	१.००
१४. कर्म सिद्धान्त	:	डॉ. नरेन्द्र भानावत	४०.००
१५. कर्म ग्रन्थ	:	सं. केवलमल लोढ़ा	८.००
१६. उपमिति भवप्रपंच कथा	:	सिद्धर्षिगणि	१५०.००
१७. श्रमण आवश्यक सूत्र	:	पार्श्वकुमार मेहता	२.००
१८. स्वाध्याय शिक्षा (भाग १ से १८)	:	ज्ञान वृद्धि हेतु	—
१९. निर्ग्रन्थ भजनावली	:	गजसिंह राठौर	२०.००
२०. अन्तगड दसा सुतं	:	श्री धर्मचन्द जैन	२०.००
२१. सामायिक सूत्र एवं प्रवेशिका पाठ्यक्रम	:		२.००
२२. जैन तमिल साहित्य और तिरुक्कुरल	:	डॉ. इन्दरराज वैद	२०.००
२३. अपरिग्रह : विचार और व्यवहार	:	डॉ. नरेन्द्र भानावत	५०.००
२४. श्रावक धर्म और समाज	:	,,	१५.००
२५. जैन बाल शिक्षा	:	कन्हैयालाल लोढ़ा	१.००
२६. ज्ञान-प्रसार पुस्तकमाला (ट्रेक्ट साहित्य) भाग ३१ से ७७	:	विविध लेखक प्रत्येक का मूल्य	२.००
२७. ग्रहस्थ साधक टीप	:		०.५०
२८. पर्युषण-सन्देश	:	जशकरण डागा	११.००
२९. जैन तत्त्व प्रश्नोत्तरी	:	कन्हैयालाल लोढ़ा	५.००
३०. दुःख मुक्ति:सुख प्राप्ति	:	कन्हैयालाल लोढ़ा	३०.००
३१. आत्म-चिन्तन	:	भँवरलाल बोथरा	५.००

(Regd. No. R. J. 2529
Licenced to post without prepayment. Licence No. 6)

सम्यग्ज्ञान

जीवन को सुन्दर बनाने के लिये आवश्यक है कि जीवन में सम्यग्ज्ञान की ज्योति जगे । सम्यग्ज्ञान की ज्योति जगेगी तो विचारों में परिवर्तन आएगा और लगेगा कि धर्म परलोक की चीज नहीं है ।

– पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा.

जिनवाणी



सितम्बर-1991 भाद्रपद-२०४८

जिनवाणी

मंगल-मूल, धर्म की जननी, शाश्वत सुखदा, कल्याणी ।
द्रोह, मोह, छल, मान-मर्दिनी, फिर प्रगटी यह 'जिनवाणी' ।।



सीलं वरं कुलाग्रो,
दालिद्दं भव्वयं च रोगाग्रो ।
विज्जा रज्जाउ वरं,
खमा वरं सुट्ठु वि तवाग्रो ।।

—वज्जालग ८/५

कुल से शील श्रेष्ठ है, रोग से दारिद्रय श्रेष्ठ है, विद्या राज्य से श्रेष्ठ है और क्षमा बड़े से बड़े तप से भी श्रेष्ठ है ।

सितम्बर, १९९१
वीर निर्वाण सं० २५१७
भाद्रपद, २०४८

वर्ष : ४८ • अंक : ९

मानद सम्पादक :
डॉ० नरेन्द्र भानावत, एम.ए.,पी-एच.डी.

सम्पादन :
डॉ० (श्रीमती) शान्ता भानावत
एम.ए., पी-एच.डी.

संस्थापक :
श्री जैनरत्न विद्यालय, भोपालगढ़

प्रकाशक :
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार दुकान नं० १८२-१८३ के ऊपर
जयपुर—३०२००३ (राजस्थान)
फोन : ५६५९९७

सम्पादकीय सम्पर्क सूत्र :
सी-२३५ ए, दयानन्द मार्ग, तिलक नगर
जयपुर—३०२००४ (राजस्थान)
फोन : ४७४४४

भारत सरकार द्वारा प्रदत्त
रजिस्ट्रेशन नं० ३६५३/५७

स्तम्भ सदस्यता	: १००१ रु०
संरक्षक सदस्यता	: ५०१ रु०
ग्राजीवन सदस्यता	: देश में २५१ रु०
ग्राजीवन सदस्यता	: विदेश में ७५१ रु०
त्रिवर्षीय सदस्यता	: ५५ रु०
वार्षिक सदस्यता	: २० रु०

मुद्रक :
फ्रैण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
जयपुर—३०२००३

अनुक्रमणिका

☐ प्रवचन/निबन्ध ☐

☐ प्रसंग/कथा/सूक्ति ☐

☐ प्रश्नमंच कार्यक्रम [५५] ☐

☐ कविता ☐

☐ स्तम्भ ☐

जन्म-शताब्दी : श्रद्धांजलि :



मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीमल जी महाराज

□ डॉ० नरेन्द्र भानावत

मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीमल जी महाराज भारतीय सन्त-परम्परा के उज्ज्वल नक्षत्र थे। आज वे हमारे बीच नही हैं पर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की प्रकाश-किरणें हमारा पथ प्रशस्त कर रही हैं। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। आत्म-कल्याण एवं लोक-कल्याण के समन्वित बिन्दु पर उनके साधनाशील जीवन का निर्माण हुआ था। उनमें एक ओर कबीर जैसे समाज-सुधारक क्रान्तिकारी सन्त-हृदय का ओजस्प्रधान फक्कड़पन था तो दूसरी ओर सूर जैसे वत्सलभावी भक्त-हृदय का सारल्य और आत्म-निवेदन। वे वयस्थविर, ज्ञानस्थविर एवं तपस्थविर थे। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की साधना में वे अडिग, अडोल थे तो भावना-जगत् में करुण-कोमल।

आज से एक शताब्दी पूर्व श्रावण शुक्ला चतुर्दशी, विक्रम संवत् १९४८ को पाली में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम श्री शेषमल सोलंकी मेहता था जो भाद्राजून राजा के यहाँ कामदार थे। आपकी माता का नाम केसरकुँवर था जो धर्मपरायण, स्नेहशील महिला थीं। जब मिश्रीमल पाँच वर्ष के थे, आपकी माता का देहान्त हो गया। भाद्राजून की राजमाता देवड़ीजी ने राजकुमार की भाँति राजमहल में आपका लालन-पालन किया। बाद में भाद्राजून राजा के साथ किसी बात पर आपके पिता का मतभेद हो जाने के कारण वे चले आये और बालक मिश्रीमल को जन-जीवन से जुड़ने का अवसर मिला।

जब आप तेरह वर्ष के थे, एक साथ अनेक व्याधियों ने आपको आ घेरा। मूर्च्छित अवस्था में आप थे, तब जैन मुनि परम तपस्वी श्री मानमल जी एवं बुधमल जी का भिक्षार्थ आपके घर आना हुआ। मुनि श्री के मंगल पाठ से आपकी चेतना लौट आई और आप स्वस्थ हो गये। शरीर की नश्वरता का बोध पाकर सं० १९७५ की अक्षय तृतीया को सोजत में आपने जैन श्रमण दीक्षा अंगीकार कर ली।

मरुधर केसरी विलक्षण प्रतिज्ञा, प्रखर प्रज्ञा और अद्भुत स्मरण शक्ति के धनी थे। चार माह में ही आपने १०० थोकड़े, ७ जैन आगम एवं अनेक स्तवन-भजन कंठस्थ कर लिये। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, राजस्थानी आदि भाषाओं पर आपका अच्छा अधिकार था। वेद, उपनिषद्, पुराण, इतिहास, न्याय, व्याकरण, धर्म, दर्शन, साहित्य आदि के आप विशिष्ट विद्वान् और आशु कवि थे। संवेदनशील साहित्यकार और ओजस्वी वक्ता होने के साथ-साथ आप प्रबल संघ-संगठक, स्पष्टवादी, निर्भीक और क्षत्रियोचित स्वाभिमान, तेजस्विता और धुन के धनी थे। समाज में व्याप्त कुरीतियों पर आप गहरी चोट करते थे। धर्म के नाम पर होने वाले आडम्बर, प्रदर्शन, दिखावे के आप खिलाफ थे। आप लीक को छोड़कर जन-हित के लिए अपना स्वयं का रास्ता बनाने वाले अहिंसक वीर थे। आपकी वाणी में सिंह-गर्जना थी। समाज ने इसीलिए आपको **'मरुधरकेसरी'** विरद से विभूषित किया।

जनसाधारण में आप **'कड़क मिश्री'** के नाम से प्रसिद्ध थे। मिश्री मीठी होने के साथ-साथ कड़क और कठोर होती है। इसी तरह आप दुःखियों, पीड़ितों के लिए दयालु और द्रवणशील थे। अपने हृदय की करुणा, प्रेमिल भावना और मिठास जनसाधारण को बाँटते थे पर अपने व्रत-नियमों के प्रति, संयम-साधना के प्रति बड़े कठोर और कड़क थे। रसना-इन्द्रिय पर आपका विशेष नियन्त्रण था। ध्यान, तप, स्वाध्याय और मौन आपकी साधना के विशेष अंग थे। चातुर्मास के प्रारम्भ में और दीपावली पर आप मौनपूर्वक तेला (तीन दिन का उपवास) प्रति वर्ष करते थे। प्रति माह शुक्ल पक्ष की एकादशी व कृष्णा प्रतिपदा को आप मौन रखते थे। प्रतिदिन बारह बजे से आप एक घंटा मौन साधना में लीन रहते थे। आपकी मौन दुःखियों, असहायों, जरूरतमन्दों के लिए जुबान का काम करती। आपकी प्रेरणा के फलस्वरूप ही जगह-जगह स्कूल, पुस्तकालय, वाचनालय, डिस्पेन्सरी, छात्रावास आदि खुले। इन जनहित-कारी प्रवृत्तियों में मुख्य हैं—श्री लोंकाशाह जैन गुरुकुल सादड़ी, श्री गौतम जैन गुरुकुल सोजत सिटी, जिनेन्द्र ज्ञान मन्दिर, सिरियारी, पार्श्व जैन कन्या शाला, कुशालपुर, रघुनाथ जैन पुस्तकालय, सोजत सिटी, बुधवीर स्मारक मण्डल, जोधपुर, जैन गोशाला, जैतारण, वर्धमान आयम्बिल खाता, सादड़ी, ब्यावर, सोजत, जोधपुर, मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति, ब्यावर, जैन छात्रावास एवं स्कूल, राणावास।

आप जीवदया के मूर्तिमन्त रूप थे। मूक निरीह प्राणियों की रक्षा आपने अपने को संकट में डालकर भी की। बलुन्दा-चातुर्मास में एक बार १५०० पशु रावले में बन्द कर दिये गये। आपका हृदय पसीज उठा। आपने ठाकुर साहब को सन्देश भेजा—'दण्ड अपराधी को मिलना चाहिए, निरपराध

को नहीं। इन मूक पशुओं ने अगर कोई अपराध किया भी हो तो सहज बुभुक्षा के वशीभूत होकर ही। वह दण्डनीय अपराध की कोटि में नहीं है। अतः तत्काल पशुओं को मुक्त कर देना ही दयालुता है। ठाकुर साहब ने मुनिश्री के तप-त्याग से प्रभावित होकर सब पशुओं को मुक्त कर दिया। आपने अपने उपदेशों के प्रभाव से कई स्थानों पर पशुबलि को बन्द कराया। कई जमींदार, जागीरदार, ठाकुर आपके अनन्य श्रद्धालु भक्त थे। कई मुसलमान भाइयों को भी दया और अहिंसा का उपदेश देकर बढ़ते हुए विग्रह को टाला और उन्हें स्नेह-सूत्र में बांधा। आपकी अहिंसक और प्रेम-शक्ति का ही कमाल था कि जाभुड़ा चौकी पर रात्रि विश्राम करते हुए एक बार नौहत्थासिंह आपको देखकर अपने हिंसक स्वभाव को भूल आपके चरणो में लेट गया, उसका देवत्व जाग उठा। आपके तपोदीप्त व्यक्तित्व के आगे ३५ ऊँटों पर सवार ६५ दस्युओं का एक दल सं० २००८ में मादलिया गाँव के पास श्रद्धानत हो गया और डाकुओं के सरदार कल्याणसिंह ने अपने साथियों को आदेश दिया कि "ये महान् तपस्वी मेरे पिताजी के गुरु हैं। जहाँ वे विराजमान हों, वहाँ हमें कोई अत्याचार नहीं करना है। ऐसा न हो कि गुरुदेव से हमें कोई उपालंभ सुनना पड़े।" ऐसा अद्भुत प्रभाव था आपके साधना-पूत व्यक्तित्व का।

मरुधर केसरी उच्चकोटि के राजस्थानी-हिन्दी कवि और ओजस्वी प्रवचनकार थे। आपकी शताधिक काव्यकृतियाँ प्रकाशित हैं। उनमें प्रमुख हैं **'पांडव यशो रसायन'** और **'राम यशो रसायन'**। ये दोनों महाकाव्य हैं। इन्हें जैन परम्परा के महाभारत और रामायण कहा जा सकता है। इनमें कृष्ण के शक्ति सम्पन्न वीर व्यक्तित्व की और राम के शील स्वभाव की गंभीर व्यंजना की गई है। द्रौपदी के रूप में नारी की प्रचण्ड शक्ति और सीता के रूप में उसके शील-संस्कार की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति इन काव्यों की विशेषता है। अन्य काव्य-कृतियों में मुख्य हैं—संकल्पविजय, भविष्यदत्त चरित्र, बुधविलास, बुध बावनी, उपदेश बावनी, मधुर दृष्टान्त शतक आदि।

मुनि श्री का प्रवचन साहित्य सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। आपके प्रकाशित प्रवचन-संग्रहों में उल्लेखनीय हैं—प्रवचन प्रभा, जीवन-ज्योति, धवल ज्ञान धारा, प्रवचन-सुधा, साधना के पथ पर, मिश्री की डलियाँ आदि। मुनि श्री शब्दों के अन्तस् में पैठकर उसके माध्यम से जीवन, समाज और संस्कृति की मौलिक व्याख्या-विवेचना करते हैं। 'जीवन' के तीन अक्षरों का विवेचन करते हुए आप कहते हैं—**'जी'** का अर्थ है 'जीत', **'व'** का अर्थ है 'वमन' और **'न'** का अर्थ है नवीनता। अतः उसी का जीवन सार्थक है जो बुराइयों को जीतता है, राग-द्वेष रूपी विष का वमन करता है और नित्य नवीन शक्ति और स्फूर्ति का वरण करता है।

मरुधर केसरी शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् होकर भी लोकधर्म और लोक जीवन से अपना रस ग्रहण करते थे। आपने हजारों की संख्या में जो भजन और तवन लिखे हैं वे लोक राग-रागनियों में ही। लोक जीवन के विविध उपकरणों, पर्वों, उत्सवों, क्रिया-कलापों को आध्यात्मिक रूप देने में आप सिद्धहस्त थे। एक स्थान पर आपने लिखा है—'हाथ का आभूषण कड़ा, चूड़ी, कंकण और बाजूबन्द न होकर दूसरों की मदद करना और सेवा करना है, दान देना है। कान का आभूषण हीरे और मोतियों के झुमके और कुण्डल न होकर वीतराग वाणी का श्रवण करना और सद्शास्त्रों का पाठ सुनना है।'

मरुधर केसरी साधुता की शुद्धता के पक्षधर थे। आपने गृहस्थ समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, विसंगतियों पर ही चोट नहीं की वरन् साधुता के नाम पर स्वादलोलुपता पनपाने वाले साधुओं की भी खबर ली है—'मुनि गो के समान भिक्षा लेते हैं। जिस प्रकार गो घास चरते समय सिर्फ ऊपर का ही हिस्सा खाती है, घास को जड़ से नहीं उखाड़ देती। उसी प्रकार साधु भी थोड़ा ही लेता है। यह तो गधा ही है जो घास को जड़मूल से उखाड़ कर खा जाता है। जो गोचरी के स्थान पर गधाचरी करते हैं, वे सच्चे मुनि नहीं हैं।'

श्री मरुधर केसरी भारतीय संस्कृति की मौलिक पहचान थे। आपने जीवन-पर्यन्त पैदल घूम-घूमकर गाँवों में सांस्कृतिक जागरण की अलख जगाई, जन शक्ति को संगठित किया और धर्म-अध्यात्मक के तत्त्वों को सरलीकृत कर उनका समाजीकरण करने में पहल की। सं० २०४० में ९२ वर्ष की आयु में पौष शुक्ला चतुर्दशी को जैतारण में आपका देवलोक हुआ। पार्थिव रूप से आप हमारे बीच नहीं हैं पर जो विशाल साहित्य आपने रचा और आपके उपदेशों की प्रेरणा से जो सर्वजनहितकारी प्रवृत्तियाँ गतिशील हैं, वे आपकी स्मृति को जीवन्त रूप दिये हुए हैं, आपको चिरंजीव बनाये हुए हैं। जन्म शताब्दी वर्ष पर डाक तार विभाग, भारत सरकार ने आपकी स्मृति में एक विशेष डाक टिकट भी जारी किया है। दिवंगत आत्मा को हार्दिक श्रद्धांजलि। आपकी प्रेरणा हमारा पाथेय बने, यही मंगल कामना।

□□□

आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन

[१६, १७ व १८ अक्टूबर, १९९१]

जोधपुर—श्री अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद्, अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल एवं श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ जोधपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म. सा. व उपाध्याय श्री मानचन्द्रजी म. सा. के सान्निध्य में जैन स्थानक, घोड़ों का चौक, जोधपुर में दिनांक १६, १७ व १८ अक्टूबर को उक्त संगोष्ठी का आयोजन किया गया है जिसमें आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर (साधना, साहित्य, धर्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति, नैतिक जीवन आदि क्षेत्रों में उनकी देन) विद्वानों द्वारा विशेष निबन्ध प्रस्तुत किये जायेंगे। विद्वानों व साधकों से निवेदन है कि वे इच्छित विषय पर १० अक्टूबर तक अपने निबन्ध डॉ. नरेन्द्र भानावत, महामंत्री, अ. भा. जैन विद्वत् परिषद्, सी-२३५ ए, दयानन्द मार्ग, तिलक नगर, जयपुर-३०२००४ के पते पर भिजवा देवें।

इस अवसर पर १७ अक्टूबर को आचार्य श्री हस्तीमलजी स्मृति व्याख्यानमाला का शुभारम्भ भी किया जा रहा है। प्रथम व्याख्यान रात्रि ७.३० बजे टाउन हॉल जोधपुर में 'राष्ट्रीय एकता में जैन सन्तों की भूमिका' विषय पर प्रो. रामचन्द्र द्विवेदी अधिष्ठाता कला संकाय, राजस्थान वि. वि. जयपुर देंगे। इसकी अध्यक्षता जोधपुर विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. वी. आर. मेहता करेंगे। आप सभी उक्त संगोष्ठी एवं व्याख्यानमाला में सादर आमंत्रित हैं।

निवेदक :

श्रीकृष्णमल लोढ़ा अध्यक्ष	**मोफतराज मुणोत** अध्यक्ष	**डॉ. एस.एस. भांडावत** अध्यक्ष	**कन्हैयालाल लोढा** अध्यक्ष
अनराज बोथरा मंत्री	**जगदीशमल कुम्भट** महामन्त्री	**चैतन्य ढढ्ढा** मन्त्री	**नरेन्द्र डॉ. भानावत** महामन्त्री
श्री जैन रत्न हि. श्रा. सं. जोधपुर	अ. भा. जैन रत्न हि. श्रा. संघ	सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल	जैन विद्वत् परिषद्

'जिनवाणी' के आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. श्रद्धांजलि विशेषांक पर प्राप्त अभिमत

[१] व्यापक तथा विशाल सामग्री

'जिनवाणी' का श्रद्धांजलि विशेषांक करगत किया। इसमें आपने आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी महाराज के विषय में जुड़े जग-वासियों के अनेक संदर्भ-संस्मरण प्रकाशित कर 'जिनवाणी' पाठकों को आचार्यश्री के ज्ञात-अज्ञात गुणों का परिचय-बोध कराया है। इतने कम समय में इतना व्यापक तथा विशाल सामग्री वाला विशेष अंक प्रकट कराकर उल्लेखनीय श्रम साधना की है। कृपया मेरी बहुत-बहुत बधाइयाँ स्वीकार कीजिए।

—डॉ. महेन्द्रसागर प्रचंडिया
निदेशक, जैन शोध अकादमी, ३९४, सर्वोदय नगर,
आगरा रोड, अलीगढ़ (उ.प्र.)

[२] मानव-दर्शन की प्रेरणाप्रद झांकी

विशेषांक में आचार्यजी द्वारा प्रतिपादित मानव जीवन-दर्शन की प्रेरणा-प्रद झांकी है। आप दोनों ने बड़े श्रम से यह विशेषांक तैयार किया है, जो सुन्दर रूप-सज्जा से सम्पन्न है। हार्दिक साधुवाद। आचार्य श्री हस्तीमलजी सम्यक्-ज्ञान के मूर्तिमान रूप थे। उन्होंने अपनी साधना और अनुभव का लाभ कोटि-कोटि जन को पहुँचाया। उनके सम्बन्ध में विशेषांक में प्रकाशित विद्वानों के विचार मननीय हैं। इस सुन्दर प्रकाशन के लिए प्रकाशकों को बहुत धन्यवाद।

—डॉ. कृष्णदत्त वाजपेयी
सेवानिवृत्त प्रोफेसर, सागर विश्वविद्यालय,
एच-१५, पद्माकर नगर, सागर-४७०००४

[३] अमर अंक

संयम साधना के कल्पवृक्ष परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म. सा. की दिव्यात्मा को समर्पित 'जिनवाणी' का श्रद्धांजलि विशेषांक पढ़कर अपार आनन्द का अनुभव हुआ। 'जिनवाणी' पत्रिका के इतिहास की यह एक अमूल्य धरोहर है।

जब-जब भी जो-जो व्यक्ति ग्रन्थ रूप में इस विशेषांक का स्वाध्याय करेगा तब-तब यह अंक उसे अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर एवं नश्वरता से अमरता की ओर ले जावेगा।

—लक्ष्मीचन्द जैन
छोटी कसरावद, जिला खरगोन (म.प्र.)

आवश्यक सूचना

आचार्य श्री के प्रेरक संस्मरण शीघ्र भेजें

जयपुर—आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. उत्कृष्ट संयम-साधक, विशिष्ट ज्ञानी-ध्यानी, हजारों श्रद्धालु-भक्तों के आस्था-केन्द्र व प्रेरणा-स्रोत थे। उनसे प्रेरणा पाकर सहस्रों भाई-बहिनों के जीवन में रूपान्तरण आया है। उनके जीवन-प्रसंग हमारे लिए सतत प्रेरणा-दीप और मार्ग-दर्शक हैं। उनका एक संकलन हम पुस्तक रूप में शीघ्र प्रकाशित कर रहे हैं अतः पाठकों से निवेदन है कि आचार्य श्री के जीवन एवं साधना से सम्बन्धित अपने प्रेरक प्रसंग/संस्मरण/घटनाएँ आदि निम्नलिखित पते पर दीपावली तक अवश्य भेजकर सहयोग प्रदान करें।

मन्त्री, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार, दुकान नं. १८२-१८३ के ऊपर, जयपुर-३०२ ००३

अ० भा० श्री जैन रत्न युवक संघ का सम्मेलन

जोधपुर—अ. भा. श्री जैन रत्न युवक संघ का वार्षिक सम्मेलन कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी २१ नवम्बर, १९९१ को जोधपुर में जैन स्थानक, घोड़ों का चौक में आयोजित करने का निश्चय किया गया है। युवारत्न बन्धुओं से निवेदन है कि वे इस सम्मेलन में अधिकाधिक संख्या में सम्मिलित होकर संघ को सुदृढ़ एवं समाज को संगठित बनाने में अपना योग दें।

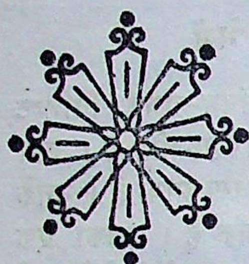
—ज्ञानेन्द्र बाफणा

एक जनवरी से 'जिनवाणी' पत्रिका के शुल्क में वृद्धि

वर्तमान कागज की महंगाई और पोस्टेज दरों में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण "जिनवाणी" पत्रिका के शुल्क में बढ़ोतरी करने का निर्णय लिया गया। यह बढ़ोतरी (नया शुल्क) दिनांक १ जनवरी, १९९२ से प्रभावी होगी—

क्र.सं.	विवरण	वर्तमान शुल्क	संशोधित शुल्क
१.	स्तम्भ सदस्यता	रु. १,००१/-	रु. २,०००/-
२.	संरक्षक सदस्यता	रु. ५०१/-	रु. १,०००/-
३.	आजीवन सदस्यता (देश में)	रु. २५१/-	रु. ३५०/-
४.	आजीवन सदस्यता (विदेश में)	रु. ७५१/-	रु. १,५००/-
५.	त्रिवार्षिक सदस्यता	रु. ५५/-	रु. ८०/-
६.	वार्षिक सदस्यता	रु. २०/-	रु. ३०/-

चेतन्य ढढ्ढा
मंत्री



सबै दिन होत न एक समान

☐ डॉ. प्रेमचन्द रांवका

समग्र संसार परिवर्तनशील है। यह सृष्टि ही परिवर्तनशील है। प्रकृति स्वयं परिवर्तनमयी है। समय भी सदा एक-सा नहीं रहता है। प्रातः, मध्याह्न, सायं, दिन-रात, प्रकाश-अंधकार, ये सब परिवर्तनशील हैं। जब समय और प्रकृति ही स्थायी और एक रूप में नहीं हैं—तो मानव-जीवन कैसे स्थायी हो सकता है? अतः सुख-दुःख भी स्थायी नहीं होते। न सदा सुख और न सदा दुःख। इसीलिये नीतिकारों ने कहा है :—

चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।

कोई पदार्थ सदा एक ही रूप में नहीं रहता। चक्र के समान सुख-दुःख भी परिवर्तन करते रहते हैं। कालक्रम से संसार के परिवर्तनशील होने से मानव की भाग्य रेखा भी चक्र रेखावत् बदलती रहती है। अतः मनुष्य को सुख में अधिक हर्ष और दुःख में विषाद नहीं करना चाहिये। प्रकृति का निर्देश है—कि सूर्य उदय होते समय भी लाल रहता है और अस्त होते समय भी लाल। महान् पुरुष सम्पत्ति-विपत्ति में एक रूप होते हैं।

संसार, परिवर्तन की आधारशिला पर रखा हुआ एक जीता-जागता सृष्टि का अंग है। यहां जन्म-मरण, उत्थान-पतन, संपत्ति-विपत्ति, सुख-दुःख, शैशव, यौवन, वृद्धावस्था—शंकराचार्य के शब्दों में—पुनरपिजननं, पुनरपिमरणं। पुनरपि जननी जठरे शयनं। कविवर कालिदास कहते हैं :—

यात्येकतोऽस्त शिखरं पतिरोषधीनाम्।
आविष्कृतोऽरुण पुरःसर एकतोऽर्कः॥
तेजो द्वयस्य युग पद व्यसनोदयाभ्यां।
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु॥

एक ओर चन्द्रमा अस्ताचल को जा रहा है, दूसरी ओर लालिमायुक्त सूर्य आविष्कृत हो रहा है। दोनों के एक साथ अस्त और उदय होने से ही यह लोक अपनी-अपनी स्थितियों में नियमित किया जाता है। अस्त के बाद उदय होता है। दुःख के बाद सुख की सच्ची अनुभूति होती है। परिवर्तन विकास का कारण है। सब दिन एक समान नहीं होते हैं।

—१९१०, खेजड़े का रास्ता, जयपुर–१ (राज.)

प्रवचनामृत :



संयम और ज्ञान से मन की हिंसा रोकें*

□ आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा.

शास्त्रकार का हृदय माता के समान होता है। जैसे माता अपने छोटे-बड़े विभिन्न बच्चों के लिए उनकी शक्ति और स्थिति को देखकर यथायोग्य भोजन प्रस्तुत करती है—दूध पीने वालों को दूध, अन्न ग्रहण करने वालों को सुस्वादु अन्न और रोगी के लिए पथ्य-हल्का भोजन, रखती है, वीतराग भगवान् भी इसी प्रकार साधक लोगों को ज्ञान की खुराक देते हैं। वे जानते हैं कि मनुष्य रोगी है और उसे रोग के अनुसार ही खुराक उपयुक्त रहेगी। जिसको कर्म रोग प्रबल हो उसे मिथ्यात्व निवारण और शुद्ध दृष्टि की खुराक देते हैं। जो जीवन-सुधार के लिए ज्ञान-विराग के पौष्टिक भोजन को अधिक ग्रहण नहीं कर सकता उसके लिए गृहस्थ धर्म रूपी हल्का-आहार-सुझाया गया है और शक्तिशाली-समर्थ साधकों के लिए पूर्ण त्याग-विराग की खुराक प्रस्तुत की गई है। पूर्ण त्यागी साधक को कमजोरी की शिकायत नहीं रहती।

आनन्द ने स्वेच्छा से अपनी इच्छा रूपी-बेल के विस्तार को सीमित कर लिया। जैसे तार, बाँस या लकड़ी का मण्डप बनाकर बेल का फैलाव सीमित कर दिया जाता है, उसी प्रकार व्रतों और नियमों के द्वारा इच्छाओं को नियन्त्रित कर लिया। द्रव्यों का परिमाण कर लेने से, चाहना की बेल भी उस परिमित स्थान में ही सीमित हो जाती है। आनन्द ने मन की आकुलता को अधिक न बढ़ने देने को, वर्तमान सम्पत्ति के विस्तार में व्रतों के द्वारा रोक लगा दी।

काया की हिंसा की तरह मन की हिंसा में भी नियन्त्रण किया जाना चाहिए। पर मन की हिंसा संयम और ज्ञान द्वारा बचाई जा सकती है। वह दवाव से नहीं मिटती। प्राचीन समय की बात है जबकि महाराज श्रेणिक मगध का शासन कर रहे थे। उस समय वहाँ की राजधानी पाटलिपुत्र में कालसौर नाम का एक कसाई रहता था जो नित्य पांच सौ भैंसे काटता था। इस महा हिंसा को रोकने के लिए महाराज मगधाधिपति प्रयास करने लगे।

---

*आचार्यश्री के प्रवचन [२९ सितम्बर, १९६३, पीपाड़) से संकलित।

भगवान् महावीर स्वामी ने सम्राट् श्रेणिक को बतलाया कि यदि एक दिन भी वह कसाई हिंसा बन्द कर दे तो तुम्हारी नर्क गति बच सकती है। महाराज श्रेणिक ने उस कसाई से एक दिन के लिए कसाईखाना बन्द करने को कहा— तो कसाई ने उत्तर दिया कि—महाराज! यह मेरा धर्म है और यही मेरी आजीविका है। अतएव और जो कुछ भी आप कहें सो कर सकता हूँ पर यह धन्धा एक दिन तो क्या क्षण भर के लिए भी नहीं बन्द कर सकता। अज्ञानता के कारण उसने अपनी टेव या दुर्भाव को ही धर्म समझ रखा था। वह धर्म और अधर्म के मर्म को नहीं समझता था।

जो व्यक्ति धर्म और अधर्म, पाप और पुण्य, बंध और मोक्ष तथा जीव और अजीव में भेद नहीं समझता—वह सचमुच में दयनीय और सोचनीय है। धर्म आत्मा को शान्ति दिलाता है और अधर्म से अशान्ति मिलती है। आत्मा का शुद्ध गुण जिससे दब जाय या मलीन हो जाय, उसे अधर्म कहते हैं। ज्ञान, आनन्द, शुद्धता, शक्ति और निष्कलंकता आदि आत्मा के गुण हैं। जिन विचार, आचार और व्यवहारों से विकार दबे या दूर हों तथा मैले आचार-विचार तथा व्यवहार शुद्ध हों, वे धर्म हैं। पानी गंदला होने पर उसे गरम करके साफ करते हैं। मूल में वह ठंडा है पर जब भट्ठी पर चढ़ा और अग्नि की आंच रूप पर धर्म-अधर्म के साथ उसका संग होने से वह गरम हो गया। पानी ने अपना धर्म ठंडापन छोड़ दिया। गंदे पानी में यदि निर्मली (एक ज़ड़ी विशेष) को डाल दें, तो पानी शुद्ध हो जाता है। निर्मली की सत्संग के कारण गंदे पानी का गंदापन दब गया। ऐसे हवा गर्म पानी के लिए ठंडा बनने का कारण (धर्म) बन गई। इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव क्रोध करना नहीं है, परन्तु कुछ कारण आ जाने से मनुष्य गरम हो जाता है, यह आत्मा का अधर्म है। पुत्र कलत्र को क्रोधावेश में मारना-पीटना आत्मा का अधर्म है। यह तमोगुण का प्रकटीकरण अधर्म है, क्योंकि यह बाहर के कुसंग से आया है।

आँख के मूल में स्वभावतः सफेदी रहती है, किन्तु तमोगुण के प्रसंग उपस्थित होते ही उसमें ललाई छा जाती है। सफेदी की जगह यह रक्तिम परिवर्तन अधर्म है। यदि दुकानदार या महाजन तराजू को लोभवश इधर-उधर करना धर्म समझे तो वह भूल है—अधर्मी है। वह लोभ के कारण अपने स्वभाव में नहीं है। दुकानदार यदि ग्राहक का माथा मूंड कर उसे अर्थ-हीन कर दे तो यह भी अधर्म है। कृषक, स्वार्थ छोड़कर यदि दया करे और जीव को हिंसा से बचावे तो यह धर्म है। व्यवहार में आत्मा को स्वभाव के निकट लाने वाले व्यवहार भी धर्म हैं जैसे—प्रामाणिकता रखना, धोखा न देना धर्म है। सम्यक् दृष्टि से दूसरे को बिना उजाड़े या दूसरे की बिना हानि किए, अपना कार्य बनाना उचित है।

कसाई ने तो अधर्म को ही धर्म समझ रखा था और इसीलिए वह उससे अलग होने को तैयार नहीं हुआ। यदि कोई धर्म की गलत परिभाषा करे, तो यह भी धर्म के साथ अन्याय करना है। महाराज श्रेणिक ने कसाई को काल कोठरी में बन्द करने की आज्ञा सुनाकर सूने कूए में गिरवा दिया। फिर भी कसाई वहां शरीर के मैल से भैंसा बना-बना कर मारने लगा। इस प्रकार उसके द्वारा शरीर से तो हिंसा कार्य बन्द रहा परन्तु मन की संकलपजा हिंसा चालू ही रही। मन की हिंसा ज्ञान से ही बचाई जा सकती है। यदि ज्ञान का प्रकाश न हो, तो मन की हिंसा नहीं बचाई जा सकती।

वासना-लता को सीमित रखने से पाप का भार घटेगा। सुसंगति और सच्चरित्र पाप की प्रवृत्ति को सुधारने के अच्छे साधन हैं। सुसंगति पाकर भी यदि मनुष्य पाप का बोझ न घटा सके तो उसका दुर्भाग्य है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

"कुसंगत में बिगड़ा नहीं, बाँका बड़ा सुभाग।
सुसंगत में सुधरिया नहीं, बाँका बड़ा सुभाग।।

नर श्रेष्ठ स्थूलभद्र एक ऐसे ही आदर्श पुरुष थे जो अतिथि के रूप में रूपकोषा के घर आए परन्तु कुछ काल रूपकोषा के साथ रहने पर उसके संस्कार इन पर डोरे डालने लगे। जन मन मोहिनी उस वेश्या ने स्थूलभद्र को अपने में उसी प्रकार समेट लिया—जैसे कमलिनी भौंरे को अपने अन्दर समेट लेती है। वेश्यागामी पुरुषों में धर्म, धन और शरीर को क्षति पहुँचाने वाले असंख्य लोग मिल सकते हैं, किन्तु गुण के ग्राहक स्थूलभद्र सरीखे दूसरे नहीं मिलेंगे। राजा या महामंत्री के पारिवारिक सदस्यों को आदि से अंत तक प्रसन्न रखना कठिन कार्य है, किन्तु रूपकोषा ने स्थूलभद्र के चित्त को चुराकर स्ववश में कर लिया। वे गणिका के घर मनहरण विद्या सीखने आए थे किन्तु वे अपना परमोद्देश्य भूल गए और रूपकोषा में ही तल्लीन हो गए। मनहरण कला सीखने की जगह स्वयं का मनहरण हो गया। स्थूलभद्र के लालन-पालन के लिए महामंत्री शकटार ने अपना खजाना खोल दिया। रूपकोषा को मुंह मांगा धन मिला और वह स्थूलभद्र की प्रेम पात्रा बन गई। स्थूलभद्र के मन को रूपकोषा ने जीत लिया।

शकटार मन में सोचते थे कि अनेक कलाओं की शिक्षा लेकर उनका पुत्र कुल का दीपक बनेगा और परिवार को सुख पहुँचाएगा। इस तरह सोचते वर्षों बीत गये मगर स्थूलभद्र वापिस नहीं आया तो महामंत्री को चिन्ता हुई। उनके मन में अनेक कुशंकाएँ उठने लगीं। सुसंगति का मतलब यह होता है कि ग्रहण करने योग्य वस्तु लेकर साधक वापिस लौट आवे और निज गुणों को नहीं खोवे। जैसे गोताखोर समुद्र में गोता लगाकर कीचड़, गंदगी और

खारे पानी में जाकर भी रत्न लेकर आता है, उसी प्रकार उच्च कुलवान और सुसंस्कृत व्यक्ति निम्न कुल में, असंस्कृत जनों के बीच जाकर भी कुछ मनचाहा ज्ञान-रत्न लेकर आता है, मगर गँवाता कुछ भी नहीं। महामंत्री शकटार का भी यही उद्देश्य था कि स्थूलभद्र, गणिका रूपकोषा से, जो उस समय की अनिन्द्य सुन्दरी और चतुर थी उससे चातुर्य कला सीखकर यथा शीघ्र घर लौट आवे, किन्तु यहाँ तो स्थिति ही दूसरी हो गई। कहा भी है—"आए थे हरि भजन को ओटन लगे कपास।" स्थूलभद्र की प्रीति अपनी मर्यादा को छोड़कर मोह के रूप में परिणत हो गई। अब उन्हें रूपकोषा का साथ छोड़ना असंभव प्रतीत होता था। उनकी आँखों में हरदम रूपकोषा की मूर्ति नाचती रहती थी। वे अब इस कल्पना से सिहर उठते थे कि कभी रूपकोषा से अलग भी होना पड़ेगा। उन्हें सोते, उठते, बैठते रूपकोषा की याद बनी रहती थी। वस्तुतः रूपकोषा की रूप वारुणी से स्थूलभद्र का तन-मन दीवाना हो गया था।

प्रीति यदि मोह का रूप लेले तो साधक के लिए विकार का कारण बन जाती है। रूपकोषा के साथ जो स्थिति स्थूलभद्र की हुई, वैसी ही कुछ परिस्थिति बिल्वमंगल की भी हुई थीं। बिल्वमंगल का प्रेम जब चिन्तामणि वेश्या से हो गया—तो वह अपना होश हवाश ही गँवा बैठा और तो क्या ? वह अपनी नव विवाहिता पत्नी से भी संभाषण नहीं कर पाया एवं अपने पिता से अंतिम समय भी न मिल सका। पिता के स्वर्गवास हो जाने पर, वेश्या को कहना पड़ा कि जाकर अपने पिता का क्रिया-कर्म तो करो।

किसी तरह अनिच्छा से चिन्तामणि की फटकार पर पितृकर्म के लिए बिल्वमंगल घर गया और जैसे तैसे कर्म समाप्त कर, वर्षा ऋतु की अंधेरी रात में ही वह वेश्या के घर लौट पड़ा। मार्ग में नदी थी, जिसको पार करने के लिए, मुर्दे को नौका समझ कर उस पर सवार हो, वह नदी पार हुआ। भवन के पास पहुँच कर, सर्प को रस्सी समझ कर, उसी के सहारे वह ऊपर चढ़ा। चिन्तामणि बिल्वमंगल के इस दीवानेपन पर स्तब्ध रह गई। उसके मुंह से सहसा निकल पड़ा—

"जैसा चित्त हराम में, वैसे हरिसों होय।
चल्यो जाय बैकुण्ठ में, पलो न पकड़े कोय।।"

बिल्वमंगल ने चिन्तामणि को अपना गुरु माना और उसकी मीठी फटकार से प्रभावित होकर वह हरिभक्त बन गया। यह एक आश्चर्य का विषय है कि एक पथविचलित भक्त, जीवन में मोड़ आने से हरिभक्त के रूप में बदल गया। मोह छूट जाने से ही वह हरिभक्त बन सका। यदि आप सब भी इसी प्रकार मोह का परित्याग करें तो अपना कल्याण कर सकेंगे। □



ज्ञान और आचरण का अनूठा समन्वय

□ श्री चाँदमल लोढ़ा
पूर्व मुख्य न्यायाधीश, राज. हाईकोर्ट

ज्योंही मैं इस महान् आत्मा के विषय में कुछ पंक्तियाँ लिखने बैठा, पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब का चेहरा मेरी आँखों के सामने आ गया—और मेरा सिर आदर व श्रद्धा से उनके पावन चरणों में झुक गया। मेरे हृदय में अथाह प्रेम उमड़ आया—सहसा मेरी कलम रुक गई। ऐसे महान् पुरुष के बारे में कुछ लिख पाऊँ—ऐसी क्षमता मुझ में कहाँ ? जिस महा-पुरुष में ज्ञान और आचरण का ऐसा समन्वय हो, उससे बढ़कर कोई भी आत्मा मनुष्य का देह धारण कर क्या आदर्श मानव समाज के समक्ष उपस्थित कर सकती है। कथनी व करणी का जैसा सामंजस्य इस महान् पुरुष में पाया, वैसा वर्तमान काल में मिलना मुश्किल है। संसार में उपदेश देने वालों की कमी नहीं है न ज्ञानी पुरुषों की कमी है लेकिन ऐसे पुरुष विरले ही हैं जो ज्ञानी हैं व जैसा ज्ञान भरा उपदेश देते हैं वैसा ही खुद आचरण करते हैं। अंग्रेजी में कहावत है "Example is better than precept"—तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने आचरण से अपने वाक्यों की सत्यता प्रदर्शित करे। पूज्य श्री में अनेकानेक गुणों के साथ यह महान् गुण था। वे ज्ञान के भण्डार तो थे ही परन्तु उनकी कथनी व करणी में कोई अन्तर नहीं था। उन्होंने अपने आचरण से उनके सम्पर्क में आने वाले जैन व अजैन भाइयों के सामने एक उच्च कोटि का आदर्श रक्खा।

पूज्य श्री का स्वभाव सरल व करुणामय था। साथ ही वे स्पष्टवादी थे—जो भी उनके दर्शन करने आता, उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होता था। उनमें आकर्षण था जिसे मैं अंग्रेजी भाषा में—'Personal Magnetism' कहना चाहूँगा—उनके व्यक्तित्व में एक जादूसा प्रभाव था जैसे चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींचता है। लोग उनकी उपस्थिति में ऐसा ही अनुभव करते थे—लेकिन मृदु-भाषी होने के साथ-साथ वे स्पष्टवादी भी थे और अपने अनुयायिओं को वात्सल्य के साथ मीठी फटकार भी दे दिया करते थे। मुझे याद है कि एक बार मुझे भी फरमाया "भाई—सांसारिक उन्नति तो तुमने की है, परन्तु परलोक सुधारने के लिए क्या किया है ?" मैंने दबी जुबान में गोल-मोल

(evasive) उत्तर दिया तो प्रभु ने श्रीमुख से फरमाया—"भाई, इस लीपा-पोती से तो काम नहीं चलेगा। कुछ आध्यात्मिक जीवन पर भी ध्यान दो।" ये शब्द आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं।

आचार्य भगवन अपने अथाह ज्ञान से भविष्य की घटना को भी जान लेते थे। एक उदाहरण सहज ही मेरे स्मृति-पटल में खुद के बारे में अंकित हो गया है। सन् १९६० की बात है। मेरी नियुक्ति होईकोर्ट का जज बनने की निश्चय हो चुकी थी। प्रधान मन्त्री व राष्ट्रपति ने अपनी स्वीकृति भी देदी थी। केवल वारण्ट तैयार होकर उस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होने को थे। लोगों को इस बात की जानकारी भी हो गई थी। पूज्य श्री सरदारपुरा में हरकचन्दजी के मकान में बिराजते थे। मैं दर्शन करने जाया ही करता था। जिस समय दर्शन कर रहा था स्वर्गीय श्री दौलतरूपचन्दजी भण्डारी भी मौजूद थे। उन्होंने कह डाला कि ये जज होने वाले हैं। पूज्य श्री ने फरमाया—अभी ठहरो, फिर कभी हो जायेंगे। वही हुआ। कुछ ऐसा वातावरण बना कि वारण्ट पर हस्ताक्षर नहीं हो पाए। कुछ अनपेक्षित व अचानक (Unforeseen and Unexpected) बातें हुई। लेकिन कुछ वर्षों बाद जब मैंने जज बनने का खयाल ही दिमाग से निकाल दिया था कि मेरी नियुक्ति हो गई। यह भी उनकी दिव्य दृष्टि, उनके तप व साधना का असर था। जब आचार्य भगवन का चातुर्मास औरंगाबाद में था तो मुझे वहाँ की समाज ने आमन्त्रित किया। मैं उस समय जयपुर में था। अतः वहीं से सीधा औरंगाबाद चला गया। जब व्याख्यान समाप्त हो गया तो समाज ने कुछ गुणीजनों का अभिनन्दन किया। एक महाराष्ट्र के डॉक्टर थे, एक राजस्थान के समाज-सेवी व उनमें मुझे भी सम्मिलित कर लिया। मैं कुछ संकुचित हुआ तो भगवन ने फरमाया कि यदि समाज तुम्हारा आदर-सत्कार करती है तो संकुचित होने की क्या बात है? धन्यवाद के दो शब्द कह दो। प्रभु के ऐसे वात्सल्यपूर्ण व करुणामय शब्द सुनकर मैं तो अभिभूत हो गया और श्रद्धा से मेरा सिर झुक गया।

प्रभु के बारे में जितना भी लिखा जाये थोड़ा है। उन्होंने 'राग, द्वेष, कामादिक, जीते, सब जग जान लिया और सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।' उन्होंने स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या की। सामायिक, स्वाध्याय व अहिंसा का प्रचार कर जन-जन का उपकार किया।

संसार का परोपकार करने के साथ-साथ आचार्य भगवन ने अपनी आत्मा का तो पूर्ण ही उद्धार कर लिया—सामायिक पाठ (आचार्य अमित गति) का २३वां पद है।

न संस्तरो भद्र, समाधि साधनं, न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।
यतस्तो अध्यात्मरतो भवनिशं, विमुच्य बाह्यवासनाम् सर्व्वामपि ।।

रात-दिन निज आत्मा में प्रभु आप लीन रहे । सब भव रूप वासना को छोड़कर हर प्रकार से अपने में ही लीन हो गए (Absorbed in Thy own self) इसका सबसे बड़ा प्रमाण भगवन के खुद के शब्दों से ही मिलता है ।

मेरे अन्तर भया प्रकाश, नहीं अब मुझे किसी की आश ।
'गजेन्द्र' देखे अलख रूप को, फिर न किसी की आश ।।

ऐसे महान् पुरुष विरले ही इस पृथ्वी पर अवतरित होते हैं—एक अंग्रेजी के चिन्तक की कही हुई बात आचार्य भगवन पर पूरी चरितार्थ होती है—

"His life was gentle, and the elements so mixed him, that Nature might stand up and say to all the world, This was a man."

भगवन आपको किन शब्दों में श्रद्धांजलि के सुमन भेंट करूँ ? सहज ही श्रद्धा व प्रेम के ओत-प्रोत भावों से आँखें गीली हो जाती हैं । इसके सिवाय मेरा सामर्थ्य ही क्या ? 'सामायिक पाठ' का चौथा पद है—

मुनीश लीनानिव कीलिताविव, स्थिरौ निषाताविव बिम्बिताविव ।
पादौ त्वदीयो ममतिष्ठतां सदा, तमोधुनानौ हृदि दीपकाबिव ।।

हे मुनीश । तब ज्ञानमयी चरणों को हिये में ध्याऊँ,
लीन रहे, वे किलित होवें थिर उनको बिठलाऊँ ।
छाया उनकी रहे सदा सब औगुण नष्ट कराऊँ,
मोह अँधेरा दूर करण को, रतन दीप सम भाऊँ ।।

—पावटा बी. रोड, जोधपुर (राज.)

□ □ □



साहित्य और समाज : एक दृष्टि*

☐ प्रवर्तक श्री रमेश मुनि

इस वैज्ञानिक युग में जीवनयापन के छोटे-बड़े आधुनिक-प्राचीन जितने भी साधन-प्रसाधन उपलब्ध हैं, न्यूनाधिक मात्रा में सभी साधनों का वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से तेजी के साथ विकास हुआ, सभी आधुनिकता से जुड़े हैं। सभी साधनों में नवीनता का सर्जन हुआ और निर्माण भी। सभी की उपयोगिता बढ़ी और उपज मात्रा में पूर्वापेक्षा अगणित स्थिति में अभिवृद्धि भी हुई। यह निर्विवाद सत्य है कि—आज एक भी ऐसा भौतिक किंवा अध्यात्म क्षेत्र नहीं बचा जो विकास क्रम से अछूता रहा हो। वे साधन क्षेत्र संरक्षण सर्जनात्मक कार्यकलापों के सहयोगी रहे हों या विध्वंस-विभीषिका के, परन्तु प्रगति की परिधि अवश्य विस्तार-विकास को स्पष्ट परिभाषित कर रही है।

साहित्य जगत् भी इस विकासोन्मेष आलोक से कैसे ओझल रह सकता था। इन दशकों में साहित्य जगत् के उत्थान-विकास की रफ्तार काफी द्रुतगामी रही है। चौमुखी विकास की यह सीमा सर्वोच्च-शिखर छू रही है। यह यथार्थ अभिव्यक्ति है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में साहित्य जगत् के सभी अंग-उपांगों अर्थात् सभी विधाओं और रचनाओं का जैसे—गद्य-पद्य-उपन्यास-एकांकी-नाटक-कहानी-काव्य-कोष-निर्युक्ति-भाष्य-टीका-संगीत-संस्मरण-निबन्ध-छंद-पिंगल-रस-साहित्य आदि भले ही वह धर्म-दर्शन-अध्यात्म-विज्ञान-शिक्षा-संस्कारों से सम्मत हो या भौतिक विज्ञान विचार-पद्धति से सम्बन्धित हो, सचमुच आज सरल-सुबोध सुन्दर शैली के परिवेश में चित्ताकर्षक जीवनोपयोगी साज-सज्जायुक्त सुगम भाव-भाषा में गुम्फित-लिखित पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

सतयुग में शील:स्वभाव की दृष्टि से मानव समाज अत्यधिक ऋजु था, सद्‌विचारी था। तदनुसार उनकी प्रज्ञा भी प्रखर-प्रखरतर थी। वे बेजोड़ पकड़ शक्ति के धनी थे। इसी कारण से उन्हें अधिक समय तक पढ़ने-लिखने-याद करने की और साहित्य संग्रह करने की आवश्यकता नहीं होती थी। वे आत्माएँ

*श्री विजय मुनि द्वारा सम्पादित।

भद्र परिणाम वाली होती थीं। गुरुजनों के मुखारविंद से धर्म-प्रवचन रूप जो भी ज्ञान-विज्ञान से भरी गूढ़तम बातें सुन लेते, उसे वे जल्दी ही समझ लेते साथ ही श्रद्धा भी कर लेते थे और उस ज्ञान-भण्डार को वर्षों तक अपने निर्मल स्मृति कोष में सुरक्षित रखने में सक्षम थे। वे यादें सदैव तरो-ताजा रहती थीं, बिल्कुल ज्यों की त्यों। उनका चिंतन-मनन रूप स्वाध्याय सतत चालू रहता था, भूलने का प्रश्न ही नहीं था। ज्ञान के आदान-प्रदान की यह पावन परम्परा गुरु-शिष्यों के अध्यापक-अध्येताओं के बीच हजारों-लाखों वर्षों तक विद्यमान रही है। यही कारण था कि—जैन और वैदिक धर्म असंख्य वर्षों का प्राचीन होने पर भी आगम-साहित्य एवं वैदिक साहित्य काफी वर्षों के बाद लिखा गया है।

युग अर्थात्—काल चक्र परिवर्तनशील रहा है। काल के प्रभाव से सभी वस्तुएँ प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकतीं। वैसे—आवश्यकता आविष्कारों की जननी है। जैसे-जैसे आवश्यकता बढ़ती गई वैसे-वैसे युगानुकूल नूतन आयाम उद्घाटित होते गये। सर्वप्रथम ब्राह्मी लिपि का उद्भव हुआ। ब्राह्मी लिपि के उद्गाता आद्य प्रणेता भ० ऋषभ देव रहे हैं। ब्राह्मी लिपि का सम्यक् बोध प्रदान करके भ० ऋषभदेव ने सम्पूर्ण मानव समाज को साक्षर बनाने का श्लाघनीय उपक्रम किया।

ब्राह्मी लिपि के विकास के पश्चात् ही साहित्य जगत् के इतिहास का सूत्रपात एवं साहित्य का स्थिर प्रारूप बन सका है। तभी से विद्वज्जगत् द्वारा साहित्य के विविध विधाओं के विकास का क्रम गतिमान हुआ। बीच में उतार-चढ़ाव का सिलसिला बहुत तीव्रता से चला। कभी साहित्य भंडार उत्थान के शिखर को छूने लगा और कभी पतन की ओर अग्रसर हुआ। फिर भी इस विधा की कड़ियाँ विद्वज्जगत् से जुड़ी रहीं।

सु-साहित्य पर सभी आर्य प्राणियों को स्वाभिमान होना स्वाभाविक है, क्योंकि—इसके अन्तःस्थल में महा मनस्वियों के मूल्यवान साधना-आराधना-उपासना से उद्भूत सुदृढ़ विचार निधि-अनुभूतियाँ-सूक्तियाँ एवं संस्कृति-सभ्यता का चिरकालीन संचित परम पावन ऐतिहासिक तथ्य भरा पड़ा है। इसे आर्य संस्कृति-परम्परा की जन्मजात बपौती ही कह सकते हैं। देश-समाज एवं धर्म-शासन की अनुपम-अनूठी धरोहर ही अगर मानी जाय तो वह है—सुसाहित्य की सम्पदा, उप-सम्पदा।

साहित्यिक-विधाओं ने सम्पूर्ण मानव समाज को समय-समय पर सफल नेतृत्व दिया, सम्यक् दिशा-निर्देशन प्रस्तुत किया, परिष्कृत सद्विचार दिये और

समोज्ज्वल आचार-परम्परा देकर आर्यत्व की सुरक्षा की। धर्म-कर्म, निवृत्ति-प्रवृत्ति करने का दिग्-दर्शन भी। यथार्थ तथ्य है कि—साहित्य जगत् ने व्यक्ति जाति-समाज-राष्ट्र के निर्माण में पूर्ण योगदान दिया है। वस्तुतः वर्तमान युग में मानव जीवन में जो यत्किंचित् अच्छाई-सच्चाई, शालीनता-पावनता के दर्शन हो रहे हैं, मेरी दृष्टि में यह देन सत्साहित्य की माननी चाहिए।

साहित्य वह ब्रिज (पुल) है जो अतीत एवं वर्तमान की कड़ियों को जोड़ता है। उस साहित्य रूपदर्पण में अतीत-कालीन प्रचलित सभ्यता-संस्कृति, धार्मिक-सामाजिक, राजनैतिक, रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार-संहिता के ऐतिहासिक बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रतिभासित होते हैं। प्रगतिशील समाज (सामाजिक-प्राणी) जिन्हें पढ़-सुनकर समझकर अतीतकालीन रीतिरिवाजों पर चिंतन-मनन कर सर्वजन हिताय-सुखाय का निर्णय लेता है। और यदि वर्तमान में प्राचीन रीति-रिवाज, आचार्य-परम्परा अनावश्यक प्रतीत हो रही है तो उसमें हठाग्रह-दुराग्रह को बढ़ावा न देकर साहित्य-जगत् तुलनात्मक दृष्टि-कोण प्रदान करता हुआ प्राचीन तथा नवीन कड़ियों में सामंजस्य बिठाने का प्रयास करता है. किंतु खींचातान वाली स्थिति निर्मित नहीं करता। सत्यं-शिवं-सुन्दरम् का प्रतीक है।

जिस प्रकार शरीर के लिए भोजन की महती आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार मानवीय मस्तिष्क को स्वस्थता की सदैव अपेक्षा रही है। इसके लिए सत्साहित्य-रूप भोजन परम प्रौढ़ रस प्रदाता है, बिना भोजन के जैसे—शरीर निःशक्त हो जाता है वैसे ही सत्साहित्य के पठन-चिंतन-मनन के बिना मस्तिष्क खोखला है। सत्साहित्य के पठन से मस्तिष्क अच्छा बनता है। अच्छे मस्तिष्क में विचार अच्छे उभरते हैं और अच्छे विचारों के आचरण से व्यक्ति अच्छा बनता है। अच्छे व्यक्तियों का समूह ही समाज तथा राष्ट्र का आधार और आदर्श होता है। यदि समाज को प्रगतिशील तथा सशक्त बनाना है तो सर्वप्रथम समाज में परिव्याप्त अभद्र साहित्य का बहिष्कार करो। उसके लिए नैतिक विचारों की जरूरत है, क्योंकि—अच्छे विचारों के लिए उदात्त साहित्य ही महत्त्वपूर्ण है। कहा है—

वहाँ अंधकार है, जहाँ आदित्य नहीं।
वह मुर्दा समाज है, जिसमें साहित्य नहीं॥

इस बात को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक समाज तथा प्रत्येक सद्गृहस्थ का सदन सत्साहित्य रूप सरस्वती का मन्दिर बने। जिसमें—सत्य-अहिंसा-अनेकांत-अचौर्य, ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह-समता-एकत-सहिष्णुता-सहअस्तित्व व प्राणी-

मात्र के प्रति सौजन्य भाव ग्रंथित-गुम्फित हो। सर्वधर्म-समभाव सम्मत विचार-कोष हो। जिन्हें यथावकाश परिवार का प्रत्येक सदस्य पढ़े, सुने। "करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।" के अनुसार पढ़ते-पढ़ते विचारों में निखार आएगा। संकीर्ण विचारों की परिधि मिटेगी। सोचने-समझने का तरीका विस्तृत होगा। घरेलू (परिवार के बीच) वातावरण में एकता-प्रेम-स्वच्छता-शालीनता बढ़ेगी। व्यर्थ की लड़ाइयों-बुराइयों को बढ़ने में प्रश्रय नहीं मिलेगा।

जब घरों में अच्छी पुस्तकों का अभाव होता है तब वातावरण और संस्कार अच्छे नहीं मिलते जिससे—हिंसा-हत्या-अत्याचार-अनाचार-बलात्कार-अनधिकृत अतिक्रमण आदि का दौर धड़ल्ले से बढ़ता है। युवक-युवतियाँ, बालक-बालिकाएँ बुराइयों, व्यसनों-दुर्गुणों-कुत्सित व्यवहार-आचार-विचारों के शिकार होते हैं। इसी से सामाजिक वातावरण पर बुरा असर पड़ता है। जीवन का निर्माण नहीं हो पाता। नारकीय वायुमंडल अठखेलियाँ करने लगता है।

ऐसी स्थिति में जिस तरह फैमिली (Family) डॉक्टरों की व्यवस्था रहती है उसी प्रकार प्रत्येक घर में फैमिली-पुस्तकालय की व्यवस्था अनिवार्य होनी चाहिये। सत्साहित्य को डॉक्टर के रूप में समझना चाहिये। फैमिली डॉक्टर शारीरिक स्वस्थता देने में उपयोगी है, ठीक वैसे ही सत्साहित्य मानसिक स्थिति को सुधारता है। दिमागी तनाव कम करता है। उभरी हुई उलझनों-समस्याओं को सुलझाने-समाधान देने में सत्साहित्य रूप डॉक्टर की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

इस संसार रूप विष वृक्ष के केवल दो ही महत्त्वपूर्ण रसप्रद फल हैं—"काव्यामृत रसास्वादः संगमः सज्जनैः सह।" अर्थात्—सत्साहित्य का पठन-पाठन और सज्जन-संत संगति। और भी कहा है—

"पृथिव्यां त्रिणीरत्नानि जलमन्नं सुभाषितम।"

इस पृथ्वी पर तीन ही रत्न सारभूत मान्य किये हैं—अन्न-जल और सुभाषित-सत्साहित्य।

जो पठन-पाठन नहीं करते, साहित्य से सदैव दूर रहते, परहेज करते, गप-शप में समय बर्बाद करते, अच्छी पुस्तकें जिन्हें इष्ट नहीं, उनके लिए आगम में कहा है—

सुवइ य अजगर भूतो, सुयं पि से णासती अमयभूयं।
हो हिति गोणब्भूजो, णट्ठंमि सुए अमय भूये॥
(निशीथ भाष्य-५३०५)

जो अजगर के समान सोया रहता है, उसका अमृत स्वरूप सत्साहित्य (श्रुतज्ञान) नष्ट हो जाता है। अमृत स्वरूप श्रुत के नष्ट हो जाने पर व्यक्ति एक तरह से निरा बैल हो जाता है। नीति में भी यही भाव दर्शाये हैं—

"साहित्य संगीत कला विहीन ।
साक्षात् पशु पुच्छ विसाणहीनः ।।"

जो साहित्य पतनोन्मुखी हो, जिनके पठन से विचारों में नास्तिकता उभरे, दुर्विचार-दुराचार, अनैतिकता-चोरी-डकैती-हिंसा-हत्या-अपहरण-षडयंत्र-तोड़-फोड़-क्रूरता-निर्दयता आदि दानवी वृत्ति-प्रवृत्ति की शिक्षा मिलती है, कु-संस्कारों का विष प्राप्त होता है, विनाश-ह्रास का मार्ग खुलता है। जिस साहित्य के बोलों का आचरण करने पर उत्थान के बदले पतन, प्रकाश के बदले अंधकार, ईमानदारी के बदले बेइमानी, कीर्ति के बदले अपयश पल्ले पड़ता है।' ऐसा साहित्य अपठनीय-अमननीय है। लाभ के बजाय हानि तथा सद्गुणों के बजाय दुर्गुणों की अभिवृद्धि हो ऐसे साहित्य को न पढ़ना ही अच्छा है। जीवन:निर्माण हेतु ऐसे साहित्य से दूर रहना ही श्रेष्ठ है। एक विचारक ने लिखा है—

"गंदी पुस्तकों के साथ मुझे स्वर्ग में रहना मंजूर नहीं, सुसाहित्य के साथ मुझे नरक में रहना मंजूर होगा।"

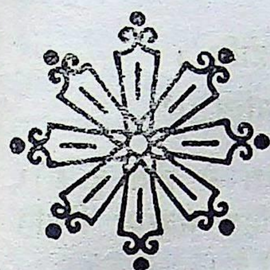
जिस देश-समाज में सुसाहित्य तथा सुसाहित्यकार न हों उस देश-समाज की संस्कृति कैसे सुरक्षित रहेगी? इस प्रश्नचिह्न को महत्त्वपूर्ण समझें और साहित्य भण्डार की सुरक्षा करें। साहित्यकारों का सम्मान करें। प्रज्ञाशील-संस्कार-संयम-धर्म-सम्पन्न बनने के लिए अवश्य साहित्य का पठन व चिंतन-मनन करें।

सांवत्सरिक क्षमायाचना

आत्म-शुद्धि के पावन पर्व संवत्सरी पर हम अपने सभी लेखकों, सदस्यों, पाठकों, विज्ञापनदाताओं एवं हितैषियों से प्रत्यक्ष व परोक्ष में हुई भूलों के लिए मनसा, वाचा, कर्मणा से हार्दिक क्षमायाचना करते हैं।

—'जिनवाणी' परिवार

तत्व-चिन्तन



शुभ भाव से कर्म क्षय होते हैं

□ श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

जैनागम 'कषाय पाहुड़' की 'जयधवला' टीका में श्री वीरसेनाचार्य ने कर्म के बंध व क्षय के कारणों का विवेचन करते हुए कहा है कि शुभ परिणामों से कर्मक्षय होते हैं, यथा—

"सुह-सुद्ध परिणामेहिं कम्मक्खयाभावेतक्खयाणुववत्तीदो। उत्तं च
ओदइयाबंधयरा उवसम-खय-मिस्सया य मोक्खयरा।
भावे दु परिणामिओ करणोभय वज्जिओ होइ ।।१।।"[1]

अर्थात् शुभ और शुद्ध परिणामों से कर्मों का क्षय न माना जाय तो फिर कर्मों का क्षय हो ही नहीं सकता। कहा भी है—औदयिक भावों से कर्म-बंध होता है। औपशमिक, क्षायिक और मिश्र (क्षायोपशमिक) भावों से मोक्ष होता है तथा परिणामिक भाव बंध और मोक्ष इन दोनों के कारण नहीं हैं।

उपर्युक्त उद्धरण में टीकाकार श्री वीरसेनाचार्य ने जोर देकर स्पष्ट शब्दों में कहा है कि क्षायोपशमिक भाव (शुभ, शुद्ध) से कर्म क्षय होते हैं कर्म-बंध नहीं होते हैं। कर्म-बंध का कारण तो एक मात्र उदय भाव ही है। इसे समझने के लिए हमें कर्म-बंध के कारणों का विचार करना होगा।

कर्म बंध चार प्रकार का है—(१) प्रकृति बंध (२) स्थिति बंध (३) अनुभाग बंध और (४) प्रदेश बंध। इनमें मुख्य है, स्थिति बंध। कारण कि अनुभाग बंध निर्भर करता है प्रदेश बंध पर, जैसा कि कहा है—'पदेसेहि विणा अनुभागाणुववत्तीदो[2]

---

१. जयधवला पुस्तक १, पृष्ठ ५।

२. धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २०१।

अर्थात् प्रदेश बंध के बिना अनुभाग बंध नहीं हो सकता तथा प्रकृति और प्रदेश बन्ध स्थिति बन्ध के अभाव में बन्ध संज्ञा को प्राप्त नहीं होते हैं जैसा कि कहा है—

जोगापयडिपदेसा ठिदि अणुभागा कसायदो होंति ।
अपरिणदुच्छिण्णेसु य बन्ध ट्ठिदि कारणं णत्थि ।।[1]

अर्थात् प्रकृति और प्रदेश ये दोनों ही योगों के निमित्त से होते हैं और स्थिति व अनुभाग कषाय के निमित्त से होते हैं। कषाय रहित अवस्था स्थिति बन्ध का कारण नहीं है, इससे कर्म बन्ध का कारण भी नहीं है।

इसी सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है—

"सादा वेदणीयस्स बन्धो अत्थि त्ति चेद । ण, तस्स ट्ठिदि-अणुभागबन्धा-भावेण सुक्ककुड्ड पक्खित्त वालुव मुट्ठिव्व जीव संबंध विदिए समए चेव णिवंदतस्स बंध ववएस विरोहादो ।"[2]

अर्थात् स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध के अभाव में शुष्क भीत पर फेंकी गई मुट्ठी भर बालुका के समान, जीव से सम्बन्ध होने के दूसरे समय में ही पतित हुए सातावेदनीय कर्म को 'बन्ध' संज्ञा देने में विरोध आता है।

तात्पर्य यह है कि स्थिति बंध के अभाव में कर्म ठहरता ही नहीं है, अतः उसे कर्मबंध मानने में विरोध आता है। धवलाकार ने इसे आगे स्पष्ट रूप से समझाया भी है तथा जयधवला पुस्तक १ पृष्ठ ९२-९३ पर भी इसका विशेष स्पष्टीकरण किया है। आशय यह है कि स्थिति बंध होने पर ही प्रकृति, प्रदेश व अनुभाग 'बंध अवस्था' को प्राप्त होते हैं। स्थिति बंध होता है कषाय से। कषाय औदयिक भाव है। अतः औदयिक भाव ही बंध का कारण है। औदयिक भावों में भी गति, जाति आदि सब औदयिक भाव बंध के कारण नहीं हैं, केवल घाती कर्म रूप औदयिक भाव ही बंध के कारण हैं।[3]

दया, दान, अनुकंपा, वात्सल्य, वय्यावृत (सेवा), मैत्री, प्रमोद, करुणा, माध्यस्थ, सरलता, मृदुता आदि समस्त सद्प्रवृत्तियाँ या सद्गुण किसी कर्म के उदय से नहीं होते हैं, ये औदयिक भाव नहीं हैं। अतः इन्हें कर्म बंध का कारण

---

१. गोम्मट्टसार कर्मकाण्ड गाथा २५७, धवला पुस्तक १२, पृष्ठ २८९।
२. धवला पुस्तक १३, पृष्ठ ५४।
३. धवला पुस्तक ७, पृष्ठ ९-१०।

मानना सिद्धांत के विरुद्ध है तथा समस्त सद्‌गुण जीव के स्वभाव रूप होते हैं, विभाव रूप नहीं। विभाव दोष रूप ही होता है, गुण रूप नहीं। स्वभाव से तो कर्म क्षय होते हैं, कर्म बंध नहीं। दया, दान, सेवा, परोपकार, अनुग्रह, कृपा आदि समस्त सद् प्रवृत्तियाँ गुण रूप होने से शुभ रूप ही होती हैं, अतः शुभ कर्म क्षय में ही हेतु है, बंध में नहीं। दोष कभी शुभ नहीं होता अशुभ ही होता है। अतः दोष से, पाप से, कर्म बधते हैं गुण से नहीं। ऊपर कह आए हैं कि स्थिति बंध ही से कर्म 'बंध रूप' को प्राप्त होते हैं। स्थिति बंध होता है कषाय से। अतः कषाय के उदय रूप अशुभ भाव ही कर्म बंध का कारण है, शुभभाव नहीं। कर्म का बंध व क्षय स्थिति बंध पर ही निर्भर करता है। स्थिति के क्षय से ही कर्म का क्षय होता है जैसा कि कहा है—

"पुव्वा संचियस्स कम्मस्स कुदो खओ ? ट्ठिदिक्खयादो।
ट्ठिदि खंडओ कुत्तो ? कसायक्खयादो।"[1]

अर्थात् पूर्व संचित कर्म का क्षय किस कारण से होता है ? उत्तर-स्थिति के क्षय से। स्थिति का क्षय किससे होता है ? कषाय के क्षय से। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि स्थिति के बंध से ही कर्म का बंध होता है व स्थिति के क्षय से ही कर्म का क्षय होता है।

कर्म सिद्धान्त के अनुसार स्थिति बंध ही बंध है और स्थिति का क्षय ही कर्म क्षय है। यह सिद्धान्त पुण्य-पाप प्रकृतियों पर समान रूप से लागू होता है तथा स्थिति बंध कषाय से होता है, अतः स्थिति बंध पाप का हो या पुण्य का, अशुभ ही है, जैसा कि कहा है—"सव्वाण ठिई अशुभा उक्कोसुक्कीसकिलेसेण"[2]

अर्थात् समस्त कर्म प्रकृतियों (तीन आयु को छोड़कर) का उत्कृष्ट स्थिति बंध उत्कृष्ट संक्लेश (कषाय) से बंधता है, अतः स्थिति बंध अशुभ ही है, पाप का द्योतक है। यहाँ तक कि तीर्थंकर नाम कर्म जैसी प्रकृष्ट पुण्य प्रकृति का उत्कृष्ट स्थिति बंध भी उत्कृष्ट संक्लेश से होता है। इसके विपरीत जैसे-जैसे कषाय में कमी आने रूप विशुद्धि बढ़ती जाती है वैसे-वैसे पुण्य का स्थिति बंध घटता जाता है। यही कारण है कि जीव जब अपने भावों में विशेष विशुद्धि होने से सम्यग्दर्शन के सम्मुख होता है उस समय पाप प्रकृतियों के साथ ही पुण्य प्रकृतियों का पहले बंधा स्थिति बंध भी घटकर अंतःकोटा कोटि सागर का रह जाता है अर्थात् पाप प्रकृतियों के समान पुण्य प्रकृतियों में भी कषाय की कमी से स्थिति

---

१. जयधवला पुस्तक १, पृष्ठ ५७।
२. कर्म ग्रन्थ भाग ५ गाथा ५२, गोम्मट्टसार कर्म काण्ड गाथा १३४, तत्त्वार्थ राजवार्तिक अ. ६, सूत्र ३।

बंध में कमी, कषाय की वृद्धि से स्थिति बन्ध में वृद्धि होती है। अतः पाप प्रकृतियों के समान पुण्य प्रकृतियों का स्थिति बंध भी कषाय जन्य होने से अशुभ ही है। ठीक इसके विपरीत सिद्धांत अनुभाग पर लागू होता है अर्थात् विशुद्धि रूप कषाय की कमी से पाप प्रकृतियों का अनुभाग घटता है और पुण्य प्रकृतियों का अनुभाग बढ़ता है। यही कारण है कि जब जीव सम्यग्दर्शन के सम्मुख होता है तब समस्त पाप प्रकृतियों का अनुभाग चतुस्थानिक से घटकर द्विस्थानिक हो जाता है तथा समस्त पुण्य प्रकृतियों का अनुभाग द्विस्थानिक से बढ़कर चतुस्थानिक हो जाता है जो आगे समस्त गुण स्थानकों में चतुःस्थानिक ही रहता है तथा पाप प्रकृतियों का अनुभाग द्विस्थानिक से बढ़ता ही नहीं अतः पुण्य का सम्बन्ध अनुभाग से है, स्थिति बंध से नहीं।[1] और यह नियम है कि शुभ (पुण्य) प्रकृतियों का अनुभाग विशुद्धि से और अशुभ (पाप) प्रकृतियों का अनुभाग संक्लेश से होता है। जैसा कि कहा है—"सुह पयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसेण"[2]। यहाँ 'विशुद्धि' शब्द उदयमान कषाय में कमी होने के अर्थ में आया है। इसका अभिप्राय यह है कि कषाय में जितनी-जितनी कमी होती जाती है उतना-उतना पुण्य प्रकृतियों का अनुभाग बढ़ता जाता है व पुण्य प्रकृतियों की स्थिति घटती जाती है। (साथ ही साथ पाप प्रकृतियों की स्थिति और अनुभाग दोनों भी घटते हैं।) फलतः जब पुण्य प्रकृति का अनुभाग उत्कृष्ट अवस्था में पहुँचता है तो उस का स्थिति बंध घटते-घटते जघन्य अवस्था को प्राप्त होता है और फिर आगे स्थिति बंधना बंद हो जाती है और अनुभाग उत्कृष्ट का उत्कृष्ट ही रहता है—तप-संयम, संवर-निर्जरा रूप किसी भी साधना से पुण्य के उत्कृष्ट अनुभाग में अंश मात्र भी कमी नहीं होती है। यही कारण है कि जब जीव मुक्ति में जाता है तो उस समय पुण्य का उत्कृष्ट अनुभाग ही होता है यहां तक कि वीतराग अवस्था में केवली समुद्घात व योग निरोध से भी पुण्य के उत्कृष्ट अनुभाग में किंचित् भी कमी नहीं होती है, जैसा कि कहा है—

सुहाणं पयडीणं विसोहिदो केवलि समुदग्घादेण जोगणिरोहेण वा अनुभागघादोणत्थि त्ति जाणवेदि। खीण कषाय सजोगीसु ट्ठिदि अणुभाग घादेसु संतेसु वि सुहाणं पयडीणं अणुभाग घादोणत्थि त्ति अत्थावत्तिसिद्धं[3]।

अर्थ—शुभ प्रकृतियों के अनुभाग का घात विशुद्धि, केवलि समुद्घात, व योग निरोध से नहीं होता। क्षीण कषाय व संयोगी गुण स्थानों में स्थिति घात व अनुभाग घात होने पर भी शुभ प्रकृतियों का अनुभाग का घात नहीं होता है।

---

१. तत्त्वार्थ सूत्र अ. ६ सूत्र ३-४ राजवार्तिक टीका।
२. गोम्मट्टसार कर्मकाण्ड गाथा १६३।
३. धवला पुस्तक १२, पृष्ठ १८।

यह सिद्ध होने पर स्थिति व अनुभाग से रहित अयोगी गुण स्थान में शुभ प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग होता है।

अभिप्राय यह है कि वीतराग केवली के सब पुण्य प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग होता है और मुक्ति प्राप्ति के समय तक वह उत्कृष्ट ही रहता है। इसमें लेश भी कमी नहीं होती है। तथा सभी कर्मों की स्थिति के क्षय हो जाने के कारण देह छूट जाने के साथ सर्व पुण्य और उनके फल भी छूट जाते हैं। पुण्य का क्षय किसी भी साधना से कदापि संभव नहीं है। जैसा कि कहा है—सम्मत्तेण सुदेण य विरदीए कसायणिग्गह गुणेहिं जो परिणदो सो पुण्णो।[1] अर्थात् जो सम्यक्त्व, श्रुतज्ञान, विरति (महाव्रत-संयम), कषाय निग्रह रूप गुणों में परिणत होता है वह गुणा है। तात्पर्य यह है कि संयम व चरित्र से भावों की विशुद्धि में वृद्धि होती है जिससे पुण्य के अनुभाग में वृद्धि होती है। यह विशुद्धि साधना के उत्कृष्ट रूप क्षपक श्रेणी में विशेष होती है, अतः चारित्र की क्षपक श्रेणी के समय उत्कृष्ट साधना से पुण्य के उत्कृष्ट अनुभाग का सर्जन होता है। वीतराग अवस्था में जब चारित्र यथाख्यात रूप से पूर्णता को प्राप्त हो जाता है तब पुण्य भी अपनी पूर्णता को, उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त हो जाता है। उत्कृष्ट हो जाने से फिर आगे बढ़ने को गुंजाइश नहीं रहती, अतः वीतराग अवस्था में सदा पुण्य का अनुभाग उत्कृष्ट ही रहता है। यह अटल नियम है कि पुण्य का अनुभाग संयम, तप, चारित्र आदि समस्त साधनाओं की वृद्धि से बढ़ता ही है, अतः पुण्य का अनुभाग किसी भी साधना से क्षय नहीं हो सकता। फिर भी यदि किसी को पुण्य के अनुभाग का क्षय इष्ट ही हो तो उसका एक मात्र उपाय है—संक्लेश भाव। पाप की वृद्धि ही एक मात्र पुण्य के अनुभाग के क्षय का उपाय है, अन्य कोई उपाय मेरी जानकारी में नहीं है। यह नियम है कि शुभ परिणामों की वृद्धि से पुण्य प्रकृतियों के अनुभाग में वृद्धि होती है जिससे पाप प्रकृतियों का स्थिति बंध का अनुभाग बंध व पुण्य प्रकृतियों का स्थिति बंध का क्षय होता है। अतः "शुभ भाव कर्म क्षय के ही कारण हैं, कर्म बंध के नहीं।" यह मान्यता या सिद्धान्त अकेले श्री वीरसेनाचार्य का ही हो सो नहीं है, प्रत्युत् श्वेताम्बर-दिगम्बर सम्प्रदाय के समस्त कर्म-सिद्धान्त विषयक वाङ्मय-भगवतीसूत्र, पन्नवणा, छह कर्मग्रंथ, कम्मपहडि, पंच संग्रह, षट्खंडागम, कषाय पाहुड़, गोम्मटसार कर्मकाण्ड आदि मूल ग्रंथों व इनकी टीकाओं से भी उपर्युक्त सिद्धान्त पूर्ण रूप से मान्य है। इसमें किसी का भी विचार भेद या मतभेद नहीं है। लेख के विस्तार के भय में यहाँ इन सब ग्रन्थों के प्रमाणों को प्रस्तुत नहीं किया गया है।

—साधना भवन, ए–९ महावीर उद्यान पथ,
बजाज नगर, जयपुर (राज.) ३०२०१५

---

१. मूलाचार, गाथा २३४।



प्रमाद-परिहार

□ पं. मुनि श्री उदयचन्दजी म. 'जैन सिद्धान्ताचार्य'

मानव स्वभाव है कि वह प्रति पल प्रमाद करता है, कुछ ज्ञानीजन ही इस विश्व में अप्रमादी होते हैं, अन्यथा सांसारिक व्यक्ति प्रायः प्रमाद करते रहते हैं।

कतिपय व्यक्ति धर्म ध्यान में भी प्रमाद करते हैं। वे प्रमाद के वश पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं, किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं, कभी-कभी तो विपरीत मार्ग का भी अनुसरण करने लगते हैं।

यह सब मन का विषय है, मन बड़ा चंचल है। मन कई बार उचित-अनुचित के विचार किये बिना अधर्म का कार्य भी करने लगता है। प्रायः हम धर्म-ध्यान के समय भी प्रमादवश अतिक्रम, व्यतिक्रम तथा अतिचार, अनाचार का सेवन करने लगते हैं। ऐसे कर्मों के लिए हमें प्रतिक्रमण करना चाहिए। इसी विषय में श्री अमितगत्ति फरमाते हैं—

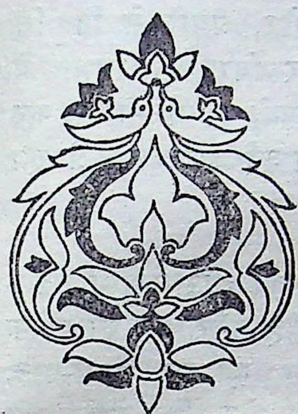
अतिक्रमं यं विमतेर्व्यतिक्रं,
जिनातिचारं सुचरित्रकर्मणः।
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः,
प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ।।८।।

हे जिनेन्द्र ! मैंने ग्रहण किये हुए चारित्र के पालन करने में जो प्रमाद और कुबुद्धिवश अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार किया है, उसकी शुद्धि के लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

रचनाकार कहते हैं कि मैंने प्रमादवश या कुबुद्धि से जो कोई पाप कर्म किये हैं, उनकी शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण करता हूँ। कहा भी गया है—

पम्मादो मच्चुनो परं
प्रमाद से मृत्यु को प्राप्त करता है।
प्रमाद करने वाला जग में पछताता है।
बीता समय न तुम को मिलने वाला है।
प्रमादी जौहरी ने खोया हीरा लालच में पड़कर।
'उदय' साहस के बल पाया, दूसरे ने ज्ञान पाकर।।

□ □ □



पर्वराज पर्युषण और उसकी आराधना

□ श्री अभयकुमार जैन

भारत पर्व और त्यौहारों का देश है। वर्ष में यहाँ अनेक पर्व और त्यौहार मनाये जाते हैं। ये हमारे जीवन में नई स्फूर्ति, नई उमंग, नई चेतना, नया उत्साह और नव-जागरण लाते हैं। त्यौहारों का सामाजिक महत्त्व ज्यादा है। इनका सम्बन्ध खाने-पीने, पहिनने ओढ़ने, आमोद-प्रमोद और बाह्य साज-सज्जा से ही अधिक होता है जबकि पर्वों का सम्बन्ध धार्मिक और आध्यात्मिक क्रियाओं, प्रक्रियाओं एवं अनुष्ठानों से होता है। ये जीवन को सुसंस्कारित कर नया प्रकाश, नई दिशा और नई प्रेरणा देते हैं।

जैन संस्कृति का प्रतीक और सभी जैन पर्वों में श्रेष्ठ पर्युषण/दशलक्षण पर्व जैनों का एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक पर्व है। इसमें आन्तरिक और बाह्य अनुष्ठानों द्वारा कषायादि विकारों को कम/कृश/क्षीण करते हैं और आत्म-ज्योति को जाग्रत कर आत्म-शक्ति को सुदृढ़ करते हैं। आत्मा के पास रहने (परि+वस्+अन् प्रत्यय=पर्युषण) के कारण इसे 'पर्युषण' कहते हैं। आत्मस्वरूप की प्रतीतिपूर्वक चारित्र धर्म के उत्तम क्षमादि १० प्रकार के सद्भावों/गुणों के विकास से सम्बन्धित होने के कारण यह 'दशलक्षण पर्व' भी कहलाता है।

सभी पर्वों में निराले इस महापर्व का सम्बन्ध किसी व्यक्ति, घटना, जाति, वर्ग, सम्प्रदाय, क्षेत्र और काल से नहीं है, अपितु इसकी सम्यक् आराधना कर कोई भी अपना हित कर सकता है। अतः यह सार्वजनिक, शाश्वत, सार्वभौमिक और त्रैकालिक है। क्रोधादि विकारों का परित्याग और उत्तमक्षमादि उदात्त आत्मिक भावों का ग्रहण इस पर्व का मुख्य आधार है। अतः यह आत्मशोधन/आत्म-परिष्कार का विशुद्ध आध्यात्मिक पर्व है। इन दिनों आत्म-निरीक्षण द्वारा अपने को जाँचा-परखा जाता है। दुर्गुणों/दुर्भावों का विसर्जन कर सद्गुणों को

अर्जित किया जाता है। यह पर्व हमें भोगों से योगों की ओर, प्रवृत्ति से निर्वृत्ति की ओर तथा अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाकर विभाव से स्वभाव में प्रतिष्ठापित करता है। हमारे विवेक को जाग्रत और वृत्तियों को परिमार्जित कर उदात्त मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है, जीवन को नई दिशा और प्रेरणा देता है। अत: यह आत्म-जागरण का अनोखा पर्व है।

इस पर्व की यथार्थ उपलब्धियाँ पाने के लिए इसकी आराधना में हृदय-शुद्धि, चित्त-शुद्धि और आत्म-शुद्धि का होना आवश्यक है और यह आन्तरिक एवं बाह्य अनुष्ठानों से ही सम्भव है। व्रत-उपवास, एकासन, पूजा-पाठ, स्वाध्याय, शास्त्र-श्रवण आदि बाह्य अनुष्ठान हैं और राग-द्वेष रहित समता रूप विशुद्ध निर्मल भावों की परिणति आन्तरिक अनुष्ठान है। इस पर्व में इसी से इनका प्राधान्य है। सबसे पहले मन:-शुद्धि वाञ्छनीय है, क्योंकि इसके बिना सारे अनुष्ठान निष्फल और व्यर्थ ठहरते हैं—'मलिने मनसि व्रतशीलानि नावतिष्ठन्ते'। अत: मन-वचन-काय की पूर्ण शुद्धि के साथ ऋजु परिणामों से इस महापर्व की आराधना की जानी चाहिए। तभी इसकी उपलब्धियों को पाया जा सकता है।

यह पर्व हमारे अनादिकालीन पापकर्मों को क्षीणकर धर्म संचय में निमित्त बनता है। अत: पर्वाराधना की सभी क्रियाएँ सात्त्विक और श्रद्धापूर्वक होनी चाहिए, परन्तु खेद है कि इन धार्मिक क्रियाओं में बाह्य आडम्बर और दिखावा ज्यादा आ गया है। इसी से हम पर्व की यथार्थ उपलब्धियों से वंचित रह जाते हैं। प्राय: देखा जाता है कि महान् फलदायी इस पर्व की आराधना कुछ तो रूढ़ि से, कुछ मजबूरी से, कुछ लोकलाजवश और कुछ प्रदर्शन के लिए ही करते हैं। (सच्चे आराधक तो बिरले ही होते हैं) आत्म-निरीक्षण कर कषायों को क्षीण करना, वहिर्मुखी से अन्तर्मुखी होना, जीवन को अत्यन्त सरल, सादा और निर्मल बनाना, विचारों को सुसंस्कारित करना जैसे महान् उद्देश्यों को भूलकर मात्र परम्परा निर्वाह के लिए इस पर्व की आराधना हमें यथार्थ प्रतिफल नहीं दे पाती। बाह्य क्रियाओं और प्रदर्शन से हमारे शरीरादि भले ही प्रभावित हों, परन्तु हमारा अन्तरंग तो अछूता ही बना रहता है। हमारी कषायें क्षीण नहीं होतीं, बैर-वैमनस्य शिथिल नहीं पड़ते और हमारे जीवन में भी कोई बदलाव नहीं आता। वह जैसा अभी तक था, वैसा ही बना रहता है। फिर पर्वाराधना का क्या औचित्य रहा ?

यह भी देखने में आता है कि श्री वीतरागदेव के दरबार में अनेक आधुनिक ललनाएँ अप्सराओं को भी मात करने वाली वेषभूषा में आराधना हेतु पहुँचती हैं, जहां वे धार्मिक क्रियाओं में समय न लगाकर आत्म-प्रदर्शन तथा व्यर्थ

की चर्चा-वार्त्ताओं में ही अपना कीमती समय नष्ट करती हैं और अन्यों की आराधना में व्यवधान डालती हैं। धर्म-स्थानों में तो मन-वचन-काय की पूर्ण शुद्धता के साथ सादी वेषभूषा में ही जाना उचित है और वहां की धार्मिक क्रियाओं/अनुष्ठानों को श्रद्धापूर्वक निष्पन्न करना पर्व की सच्ची आराधना है।

त्रियोग की शुद्धता, शान्त निराकुल परिणाम, एकान्त भाव और पूर्ण जागरूकता के साथ अनाग्रही होकर जब इस पर्व की आराधना की जाती है तभी हमारी कषायें मन्द से मन्दतर होती हैं, परिणाम शान्त व सुस्थिर, आत्मा पवित्र और निर्मल बनती है। जीवन तथा व्यवहार में सादगी, सरलता, सहजता और सात्त्विकता आकर हमारा जीवन सार्थक और मंगलमय होता है। जीवन में शुद्धता, सरलता तथा आत्मा में निर्मलता आये एवं जीवन की दिशा बदले—यही तो इस महापर्व की आराधना का मुख्य उद्देश्य है। अतः यह पर्व सर्वतो भावेन आराधनीय व आचरणीय है।

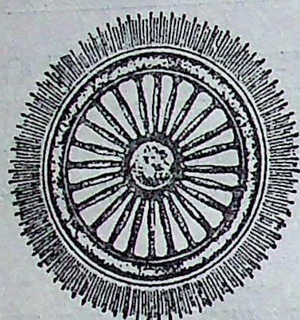
अरे भाई! यह पर्व मात्र प्रदर्शन और परम्परा-निर्वाह का पर्व नहीं है, अपितु त्याग, तपस्या, आत्म-निरीक्षण और आत्म-साधना की शिक्षा तथा प्रेरणा देने वाला पर्व है। इसमें हमें निष्पक्ष भाव से अपने विगत जीवन की समीक्षा कर भावी जीवन के विकास एवं उत्थान हेतु दृढ़संकल्पित, सचेत और सावधान होना चाहिए। सभी पापकार्यों से विरक्त होकर पुण्यानुबन्धी कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिए ताकि हमारे जीवन की दिशा बदले, जीवन में नया मोड़ आये और हम इस महापर्व की उपलब्धियों से वंचित न रहें।

पर्व का अर्थ है 'गांठ'। गांठ दृढ़ता की प्रतीक है। यह पर्व हमें आत्म-शक्ति को दृढ़ करने की प्रेरणा देता है। अतः इसकी आराधना हमें सच्चे हृदय से, सच्चा श्रावक (श्रद्धावान्, विवेकवान् और क्रियावान्) बनकर ही करना चाहिए ताकि हमारी आत्म-शक्ति सुदृढ़ हो, आत्मा उज्ज्वल हो तथा वह ज्ञान-ज्योति से आलोकित हो, जीवन नया मोड़ लेकर मंगलमय और सार्थक बने। यदि ऐसा होता है तो ही इस पर्व की सच्ची आराधना होगी।

—व्याख्याता, कानूनगो वार्ड, बीना (म. प्र.)

□□□

प्रेरक प्रसंग :



उत्सर्ग का पथ

श्री बलवन्तसिंह हाड़ा

सुविधा के भण्डार में से कुछ आराम छोड़ देने का नाम त्याग नहीं है। त्याग नाम है उस पथ का, जिसमें आराम की इच्छा न हो और शूलों की चुभन कष्ट सहन करे हँसते-हँसते।

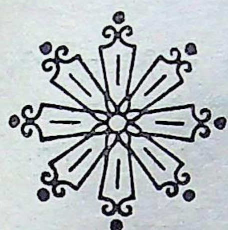
एक दिन देशबन्धु अलीपुर-काण्ड के मुकदमे में क्रांतिकारियों को बचाने के लिए दिन-रात जागकर तैयारी कर रहे थे। उस दिन एक व्यापारी सज्जन उनके पास अपनी दो लाख रुपयों की मांग लेकर आये। यह राशि देशबन्धु ने किसी राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए ली थी। उसी समय एक अन्य व्यापारी अपने किसी मुकदमे के लिए देशबन्धु को पाँच लाख रुपये में अनुबंधित करने का अनुरोध करने आया, परन्तु देशबन्धु का स्पष्ट उत्तर था, "उन महान् देश-भक्तों के जीवन के सम्मुख पाँच लाख तो क्या, आपकी सारी सम्पत्ति भी मेरे लिए नगण्य है, जिनके बचाव के लिए मैं मुकदमे में लगा हूँ।"

इस बात को सुनकर वे व्यापारी जो देशबन्धु से अपने दो लाख रुपये मांगने आये थे, बड़े लज्जित हुए। त्याग के इस देवता के सम्मुख उन्हें अपनी तुच्छता पर घोर ग्लानि हुई। उन्होंने अपनी चेक-बुक निकाली और भाव-विभोर होकर बोले—यह चेक-बुक आपके सामने प्रस्तुत है। मैंने इस पर अपने हस्ताक्षर कर दिए हैं। आप जितनी राशि चाहें इसमें लिख लें, अपनी तुच्छता के लिए क्षमा चाहता हूँ। देश के लिए यह मेरी भी एक छोटी-सी भेंट हो जाय। आपके देश-प्रेम और त्याग की तो समता कोई नहीं कर सकता है।

ऐसा ही होता है सच्चे त्याग का प्रभाव। त्यागी के जीवन में एक आत्म-शक्ति अथवा प्रभा मण्डल बन जाता है जो उसके आसपास के वातावरण में एक उत्सर्ग का आलोक भर देता है। उत्सर्ग-मार्ग विकट है। उत्सर्ग-पथ में उन्हीं पथिकों के पदचिह्न अमिट हैं, जो इस राह पर चलते-चलते स्वयं राह बन गये।

—खाल की हवेली, झालावाड़–३२६ ००१

विमर्श :



निमंत्रण पत्रों में आचार्यों एवं सन्तों के नाम छापना-एक चिन्तन

☐ श्री माणकमल भण्डारी

जैन धर्म निवृत्तिप्रधान धर्म है। इसमें व्यक्ति-पूजा के स्थान पर गुण पूजा पर महत्त्व दिया गया है। व्यक्ति चाहे कितना ही ऊँचा क्यों न हो यदि उसमें गुण नहीं है तो वह पूजनीय नहीं है। यहाँ त्याग की महिमा है और इसलिये जैन साधक पूजनीय हैं क्योंकि उन्होंने पाँच महाव्रतों को जीवन पर्यन्त धारण किया है। अठारह पापों से अपने आपको अलग रखने वाले साधक सभी सांसारिक कार्यों से दूर रहते हैं। उन्होंने तीन करण और तीन योग से सभी पापों का त्याग कर दिया है। वे मन, वचन और कर्म से भी कभी सावद्य क्रिया करते नहीं, कराते नहीं और अनुमोदन भी नहीं करते। वे स्वयं न तो कोई सावद्य क्रिया करते हैं, न दूसरों से कहकर करवाते हैं और न ही सावद्य क्रिया करने वालों को अच्छा कहते हैं। यहाँ तक कि वे इस दिशा में मन से सोचते नहीं, वाणी से इन कार्यों के लिये उपदेश नहीं देते और न स्वयं करते हैं।

आज के भौतिकवादी इस युग में प्रचार और प्रसार अधिक बढ़ गया है। व्यक्ति चाहता है कि उसके प्रत्येक कार्य का अधिक-से-अधिक प्रचार-प्रसार हो, ऐसे में वह यह भी भूल जाता है कि कौन सा कार्य करने योग्य है और कौनसा छोड़ने योग्य। एक सद्गृहस्थ को हिंसक प्रवृत्तियों से सदैव बचना चाहिए। संसार में रहते हुए भी उसे अपने आपको जलकमलवत निर्लिप्त रहना चाहिए। एक सद्गृहस्थ तटस्थ भाव से अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियां निभा सकता है। लेकिन प्रचार-प्रसार की आंधी में व्यक्ति कभी-कभी वह कार्य कर बैठता है जो उसे नहीं करना चाहिए। विवाह, गृह प्रवेश, व्यापार के मुहूर्त आदि अवसरों हेतु छपने वाले निमंत्रण पत्रों पर आचार्यों और संतों के नाम छपवाए जाते हैं। जैन साधक तो सावद्य क्रियाओं का निषेध करते हैं फिर निमंत्रण पत्रों में उनके नाम छपवाना कहाँ तक उचित है? यह गंभीर चिन्तन का विषय है। क्या साधक किसी के विवाह अथवा मुहूर्त आदि की अनुमोदना करते हैं? यदि नहीं तो फिर निमंत्रण पत्रों पर उनके नाम छापने में क्या

औचित्य है ? निमंत्रण पत्र पर उनके नाम छापने से क्या अन्य समाज में यह भ्रान्ति नहीं फैल जायेगी कि जैन साधक सावद्य क्रिया की अनुमोदना करते हैं।

संभव है कि निमंत्रण पत्र पर संतों के नाम छापने के पीछे छपवाने वाले व्यक्ति की उनके प्रति भक्ति और श्रद्धा की भावना रही हो, परन्तु क्या भक्ति और श्रद्धा प्रदर्शन की वस्तु है ? वह तो अन्तर्हृदय की वस्तु है। हमें अपनी भक्ति व श्रद्धा का प्रदर्शन नहीं करना है।

समाज-चिन्तकों को इस विषय पर गहराई से सोचना होगा और इस प्रवृत्ति को बन्द करना होगा। इसके पहले कि यह रोग अधिक व्यापक हो जावे हमें इसे जड़ से मिटाना होगा। समाज में व्याप्त इस प्रकार की अनेक बुराइयों को यदि हम मिटा पाएँ तो समाज-हित में हमारा विशेष योगदान हो सकेगा।

—रावतों का बास, जोधपुर

---

१०१ रुपये में १०८ पुस्तकें प्राप्त करें

अ. भा. जैन विद्वत् परिषद् द्वारा प्रारम्भ की गई "ज्ञान प्रसार पुस्तक-माला" के अन्तर्गत अब तक ७६ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कुल १०८ पुस्तकें प्रकाशित करने की योजना है। प्रत्येक पुस्तक का फुटकर मूल्य दो रुपया है पर जो व्यक्ति या संस्था १०१ रुपये भेजकर ट्रैक्ट साहित्य सदस्य बन जायेंगे, उन्हें १०८ पुस्तकें निःशुल्क प्रदान की जायेंगी। कुछ पुस्तकें अप्राप्त हैं, वे दुबारा प्रकाशित होने पर सदस्यों को भेजी जायेंगी।

तपस्या, विवाह, जयन्ती, पुण्यतिथि पर प्रभावना के रूप में वितरित करने के लिए १०० या अधिक पुस्तकें खरीदने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायेगा।

कृपया १०१ रुपये मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा "अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद्" के नाम सी-२३५ ए, तिलक नगर, जयपुर-३०२००४ के पते पर भेजें।

—डॉ० नरेन्द्र भानावत
सम्पादक-संयोजक

कविता :

पर्युषण का पर्व महान्

□ श्री उत्सवलाल तिवारी 'सुमन'

अज्ञान तिमिर हरने को आता, पर्युषण का पर्व महान् ।
ज्ञान किरण फैलाने आता, पर्युषण का पर्व महान् ।।

[१]

श्रद्धा और विश्वास जगाता, पर्युषण का पावन पर्व,
उत्तम व्रत उपवास कराता, पर्युषण का पावन पर्व ।
आत्म शांति संतोष बढ़ाता, पर्युषण का पावन पर्व,
सबको सबसे मिलवाता है, पर्युषण का पावन पर्व ।।

[२]

पर्युषण पर बढ़े चाव से, होता है अर्चन-वंदन,
ध्यान, धारणा, मनन, अध्ययन, जप, तप और व्रत आराधन ।
यथा शक्ति उपवास परस्पर, पावन खमत 'खमावन',
गुरुजन, गुनीजन विद्वानों से, कथा श्रवण मन भावन ।।

[३]

धर्म लाभ के अवसर लाता, पर्युषण का पावन पर्व,
गुरुओं की आशीष दिलाता, पर्युषण का पावन पर्व ।
आध्यात्मिक सद्व्रत करवाता, पर्युषण का पावन पर्व,
सबको सबका मित्र बनाता, पर्युषण का पावन पर्व ।।

[४]

स्वाध्याय का युग दर्पण है, सर्वसिद्ध पर्युषण पर्व,
भारतीय संस्कृति का सद्गुण, अतिप्रसिद्ध पर्युषण पर्व ।
जैन सभ्यता का रक्षक है, सर्वमान्य पर्युषण पर्व,
नि:स्वार्थ मिलन का केन्द्र बिंदु है, भारत का पर्युषण पर्व ।।

[५]

आध्यात्मिक ऊँचाइयों तक, पहुँचा पाता पर्युषण,
सामाजिक सच्चाइयों का, दर्शन करवाता पर्युषण ।
समता की अच्छाइयों को, सम्मुख लाता पर्युषण,
चिन्तन की गहराइयों को, समझा पाता पर्युषण ।।

[६]

परमार्थ प्रवृत्ति पोषक ज्योति, पुंज पर्युषण पर्व,
लाभ पूर्ण जीवन का बोधक, ज्ञान कुंज पर्युषण पर्व ।
धार्मिक निष्ठाओं का सचमुच, केन्द्र बिंदु पर्युषण पर्व,
भाव भक्ति की मणि मुक्ता का, गहन सिंधु पर्युषण पर्व ।।

२५/१, सुमन कुटीर, सखीपुरा, तिवारी मार्ग, उज्जैन



गुणस्थान*

प्रस्तोता—श्री पी० एम० चौरड़िया

[१]

(१) **प्रश्न**—गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) आत्मा के गुणों के स्थान को गुणस्थान कहते हैं।

(२) आचरण और भावों के द्वारा जीवों की जो स्थिति होती है, उसे गुणस्थान कहते हैं।

(३) गुणों (आत्म-शक्तियों) के स्थानों अर्थात् आत्मा के विकास की क्रमिक अवस्थाओं को गुणस्थान कहते हैं।

(४) आत्मा के ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों की शुद्धि और अशुद्धि, उत्कर्ष एवं अपकर्ष अवस्था को गुणस्थान कहते हैं।

(५) सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप आत्मा के गुणों की तरतमता को तथा कम-अधिक परिमाण वाली अवस्था विशेष को गुणस्थान कहते हैं।

(२) **प्रश्न**—गुणस्थान के स्थान पर जीव स्थान शब्द किस शास्त्र में आया है ?

उत्तर—'समवायांग सूत्र' में।

(३) **प्रश्न**—आत्म विकास में मुख्य बाधक कौन है ?

उत्तर—मोह कर्म की प्रबलता।

[२]

(१) **प्रश्न**—मिथ्यात्व किसे कहते हैं तथा ये कितने होते हैं ?

*श्री एस. एस. जैन युवक संघ, मद्रास द्वारा आयोजित कार्यक्रम जिसमें स्वाध्याय संघ, युवक संघ एवं बालिका मण्डल ने भाग लिया।

—सम्पादक

उत्तर—मोह के कारण तत्त्वार्थ में श्रद्धा नहीं होना या विपरीत श्रद्धा होना मिथ्यात्व है। ये २५ प्रकार के होते हैं।

(२) **प्रश्न**—पहले, दूसरे व तीसरे गुणस्थान में आत्मा की दर्शन व चारित्र-शक्ति का विकास क्यों नहीं होता है?

उत्तर—इन तीनों गुणस्थानों में प्रतिबंधित कारणों की अधिकता रहती है। इन प्रतिबंधक कारणों को कषाय कहते हैं।

(३) **प्रश्न**—अनंतानुबंधी चौक (क्रोध, मान, माया, लोभ) किसे कहते हैं?

उत्तर—जो जीव को अनन्त काल तक संसार में परिभ्रमण कराये, उसे अनंतानुबंधी कहते हैं। इसके उदय से सम्यक्त्व गुण दबा रहता है।

[३]

(१) **प्रश्न**—मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, गुणस्थान किस प्रकार है?

उत्तर—मिथ्यादृष्टि आत्मा जीवादि तत्त्वों में तथा देव-गुरु धर्म में विपरीत श्रद्धा रखती है, फिर भी अहिंसा, सत्य आदि गुणों को उत्तम मानती है, यह उसका गुण है और इसी गुण की अपेक्षा उसको मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कहा है।

(२) **प्रश्न**—चौथे गुणस्थान वाला जीव यदि आयुष्य का बंध करे, तो कौनसा बंध करता है?

उत्तर—वैमानिक देव का आयुष्य या पुरुष वेद बांधता है। यह तिर्यंच एवं मनुष्य भव की अपेक्षा से कहा गया है।

(३) **प्रश्न**—कितनी प्रकृतियों का क्षय आदि होने पर गुणस्थान प्राप्त होता है?

उत्तर—सात प्रकृतियों का क्षयोपशम आदि होने पर चौथा गुणस्थान होता है। सात प्रकृतियाँ निम्न हैं—अनंतानुबंधी क्रोध, अनंतानुबंधी मान, अनंतानुबंधी माया, अनंतानुबंधी लोभ, मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और समकित मोहनीय।

[४]

(१) **प्रश्न**—गुणस्थानों के निर्माण का आधार क्या है?

उत्तर—आत्मा में ५ प्रकार के मालिन्य हैं—मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग। ये आश्रव कहलाते हैं। इन आश्रवों एवं मोहनीय कर्म की प्रबलता और निर्बलता पर ही जीव की चौदह अवस्थाओं का निर्माण होता है। जितना-जितना मालिन्य हटता जाता है, उतनी-उतनी आत्मा की विशुद्धि होती जाती है और इसी विशुद्धि का नाम गुणस्थान है।

(२) **प्रश्न**—मिश्र गुणस्थान का स्वरूप कैसा होता है ?

उत्तर—इस गुणस्थान में जीव की दृष्टि कुछ सम्यक् (शुद्ध) एवं कुछ मिथ्या (अशुद्ध) हो जाती है। इसमें जीव न तो तत्त्वों में रुचि रखता है न एकान्त अरुचि, बल्कि उदासीन (विवेक शून्य) भाव रखता है। तत्त्व-अतत्त्व का वास्तविक विवेक नहीं कर सकता है। इसमें बुद्धि स्वाधीन न होने से संदेहशील हो जाती है।

(३) **प्रश्न**—आत्मा के क्रमिक विकास का वैदिक एवं बौद्धदर्शन में क्या नाम दिया गया है ?

उत्तर—(१) वैदिक दर्शन में भूमिकाओं के नाम से।

(२) बौद्ध दर्शन में अवस्थाओं के नाम से।

[५]

(१) **प्रश्न**—चौथे गुणस्थान में अनुभव भी होता है या अकेली श्रद्धा ही होती है ?

उत्तर—चौथे गुणस्थान में आनन्द के अनुभव सहित श्रद्धान होता है।

(२) **प्रश्न**—गुणस्थानों का लक्ष्य क्या है ?

उत्तर—जीवन को अवगुणों से मोड़ कर गुण-प्राप्ति की ओर उन्मुख किया जावे व जीवन अभी कहाँ चल रहा है, यह जानकर उसको अन्तिम शुद्ध अवस्था में पहुँचाया जावे, यही लक्ष्य इन गुणस्थानों का है।

(३) **प्रश्न**—अविरति सम्यग्दृष्टि किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो जीव सम्यग्दृष्टि होकर भी किसी प्रकार के व्रत धारण नहीं कर सकता, उसे अविरति सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

[६]

(१) **प्रश्न**—गुणस्थान के क्रमशः चौदह भेद के क्रम की क्या विशेषता है ?

उत्तर—गुणस्थानों का चौदह भागों में इस प्रकार वर्गीकरण किया गया है जिससे सभी संसारी जीवों की कर्मबंधादि सम्बन्धी पारिणामिक विशेषता और उनकी योग्यता बनना सहज हो जाता है। जीव की प्रति समय बदलने वाली योग्यता का भी अंकन किसी न किसी विभाग द्वारा किया जा सकता है। इस क्रम से वर्गीकरण करने से यह बताना और समझना सरल हो जाता है कि अमुक प्रकार की आंतरिक शुद्धि या अशुद्धि वाली आत्मा इतनी कर्म प्रकृतियों के बंध आदि की अधिकारी हैं।

(२) **प्रश्न**—उपसम समकित कौन से गुणस्थान में होती है ?

उत्तर—चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक।

(३) **प्रश्न**—अप्रमत्त गुणस्थान में क्या होता है ?

उत्तर—इस गुणस्थान में प्रमाद रहित व्रतों का पालन किया जाता है। इसमें कषाय रहता है।

[७]

(१) **प्रश्न**—निम्नलिखित गुणस्थानों के अन्य नाम बताइये ?

(१) मिश्र गुणस्थान
(२) सर्व विरति गुणस्थान
(३) अपूर्वकरण गुणस्थान
(४) अनिवृत्ति करण गुणस्थान

उत्तर—(१) सम्यग् मिथ्यादृष्टि गुणस्थान
(२) प्रमत्त गुणस्थान
(३) निवृत्तिकरण गुणस्थान
(४) बादर सम्पराय गुणस्थान।

(२) **प्रश्न**—गुणस्थान एवं लेश्या का परस्पर क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर—गुणस्थानों और लेश्याओं का सम्बन्ध गतिमापक यन्त्र से दस, बीस आदि अंकों और घूमती हुई सुई जैसा है। यानी गुणस्थान अंक की तरह स्थिर है और लेश्या-परिणाम सूई के समान प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। ये दूसरे से परस्पर प्रभावित होते रहते हैं।

(३) **प्रश्न**—एक बार जिसने सम्यक्त्व पाकर खो दिया, उसका फल क्या है?

उत्तर—एक बार थोड़े समय के लिए भी जिसने सम्यक्त्व पा लिया और फिर छोड़ दिया वह कृष्ण पक्षी से शुक्ल पक्षी हुआ। उसकी स्थिति उस कर्जदार की तरह हो जाती है जिसने बहुत सारा कर्जा तो चुका दिया लेकिन फिर भी अभी कर्जा चुकाना बाकी है।

[८]

(१) **प्रश्न**— कोहो य माणो य अणिग्गहीया,
माया य लोभो य पवड्ढमाणा।
चत्तारि एए कसिणा कसाया,
सिचंति मूलाइं पुणब्भवस्स॥

अर्थ—अनिगृहीत क्रोध और मान तथा बढ़ते हुए माया और लोभ—ये चारों ही कषाय पुनर्जन्मरूपी वृक्ष की जड़ों को सींचते रहते हैं।

उपर्युक्त ज्ञानयुक्त वाणी कहाँ से ली गई है?

उत्तर—'दशवैकालिक सूत्र' से।

(२) **प्रश्न**—'सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अपमत्तस्स नत्थि भयं।'

अर्थ—जो व्यक्ति प्रमादी-गाफिल है, उसे सर्वत्र भय है। अप्रमत्त और सतर्क रहने वाले के लिए कहीं भी भय नहीं।

उपर्युक्त शास्त्र की वाणी कौन से सूत्र की है?

उत्तर—आचारांग सूत्र की।

(३) **प्रश्न**—नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ॥

अर्थ—साधक ज्ञान से जीवन-तत्त्वों को जानता है, दर्शन से उनका श्रद्धान करता है, चारित्र के द्वारा उन्हें ग्रहण करता है और तप से परिशुद्ध होता है।

उपर्युक्त वीर प्रभु की वाणी का संकलन किस सूत्र में किया गया है ?

उत्तर—'उत्तराध्ययन सूत्र' में।

[९]

(१) **प्रश्न**—उपशान्त मोहनीय गुणस्थान एवं क्षीण मोहनीय गुणस्थान में क्या अन्तर है ?

उत्तर—जिसमें कषायें दबी रहती हैं, उसे उपशान्त मोहनीय गुणस्थान कहते हैं। दूसरी ओर जब मोहनीय कर्म समूल विनष्ट हो जाता है और ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय तथा अन्तराय कर्म होते हैं, वे भी क्षय हो जाते हैं, उसे क्षीण मोहनीय गुणस्थान कहते हैं।

(२) **प्रश्न**—सूक्ष्म संपराय गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस स्थिति में लोभ के सूक्ष्म (छोटे) विभाग दबा दिये जाते हैं या नष्ट कर दिये जाते हैं, उसको सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान कहते हैं।

(३) **प्रश्न**—सयोगी केवली गुणस्थान की क्या विशेषताएँ हैं।

उत्तर—(१) ४ घाती कर्म नहीं होते।
(२) केवलज्ञान, केबलदर्शन प्रगट होता है।
(३) शुभ योगों की प्रवृत्ति रहती है।

[१०]

(१) **प्रश्न**— **गुणस्थानों की मार्गणा के सम्बन्ध में :**

"इण पर जीवडो रे गुणठाणे फिरे.......।।
प्रथम गुणस्थाने रे मारग चार कह्या,
तीन चार पंच सातो रे।
गुण ठाणे दूजे रे मारग एक छै,
पड़तां पैले मिथ्यातो रे।।

गुणस्थानों की मार्गणा के सम्बन्ध में उपर्युक्त पद्य किसने लिखा ?

उत्तर—श्री नेमीचन्दजी म. सा. ने।

(२) प्रश्न— **सिद्धि के सोपान**

(गुणस्थान – क्रमारोहण)

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?
क्यारे थइशु बाह्यान्तर-निर्ग्रन्थ जो ?
सर्व सम्बन्धनु बन्धन तीक्ष्ण छेदी ने,
विचरशु कब महत्पुरुष नें पंथ जो।
अपूर्व अवसर........

एक पराजय करी ने चारित्र मोहनो,
आवु त्यां ज्यां करण अपूर्व भाव जो।
श्रेणीक्षपक तणी करी ने आरूढ़ता,
अनन्य चिन्तन अतिशय शुद्ध स्वभाव जो,
अपूर्व अवसर............

उपर्युक्त गीतिका किसने बनाई ?

उत्तर—श्रीमद राजचन्द्रजी ने।

(३) **प्रश्न— यही है मुक्ति के सोपान**

(तर्ज :—देख तेरे संसार की हालत...........................)

जिन्हें जैन परिभाषा में, कहा जाता है गुणस्थान
यही है मुक्ति के सोपान।
क्रम-क्रम से होता जाता है, जिनमें आतम उत्थान,
यही है मुक्ति के सोपान।

पहिले में अज्ञान सरासर, मोह-मदिरा में भान भूलाकर,
दूसरे में कुछ रहता ऊपर, तीसरे में कुछ नहीं के बराबर।
हेय, गेय और उपादेय में, रहता है अनजान,
यही है मुक्ति के सोपान।

चौथा गुणस्थान जब आता, आत्मा अन्तर मुख बन जाता,
अपूर्व सम्यक्दर्शन पाता, अपूर्वकरण भी यही कहाता,
यही होता है धर्म कर्म का, जड़ चेतन का ज्ञान,
यही है मुक्ति के सोपान।

उपर्युक्त स्तवन के रचयिता कौन हैं ?

उत्तर—उपाध्याय प्रवर श्री केवल मुनिजी म. सा.।

[११]

(१) **प्रश्न**—दर्शन तथा ज्ञान शक्ति का पूर्ण विकास किस गुणस्थान में होता है ?

उत्तर—सयोगी केवली गुणस्थान में (१३वें में)

(२) **प्रश्न**—मुक्त आत्मा कहाँ जाकर स्थिर हो जाती है तथा वह उसके आगे क्यों नहीं जा सकती ?

उत्तर—मुक्त आत्मा लोक के अन्तिम भाग सिद्ध गति, सिद्ध शिला या मोक्ष में जाकर स्थिर हो जाती है। उसके आगे गति नहीं कर सकती क्योंकि धर्मास्तिकाय जो गति में सहायक होता है, उसके आगे नहीं होता।

(३) **प्रश्न**—तीर्थंकर देव (अपने अन्तिम भव में) कौन-कौन से गुण-स्थान फरसते हैं ?

उत्तर—४, ६, ७, ८, ९, १०, १२, १३, १४ गुणस्थान।

[१२]

(१) **प्रश्न**—गुणस्थानों में क्रमशः कर्मों की सत्ता किस प्रकार होती है ?

उत्तर—पहले गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक आठों कर्म की सत्ता, बारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म को छोड़कर ७ कर्म की सत्ता तथा तेरहवें गुणस्थान में ४ कर्म की सत्ता, वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र। १४वें में उक्त ४ कर्मों को क्षय कर मोक्ष पावे।

(२) **प्रश्न**—अभवी किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो अनादि काल से मिथ्यात्वी हैं और अनन्त काल तक मिथ्यात्वी ही रहकर चार गति एवं ८४ लाख योनियों में परिभ्रमण करते रहेंगे। इनमें मुक्ति पाने की योग्यता ही नहीं होती है।

(३) **प्रश्न**—गुणस्थान को Spiritual Meter क्यों कहा गया है ?

उत्तर—जिस प्रकार ज्वर का तापमान थर्मामीटर से लिया जाता है, उसी प्रकार आत्मा का आध्यात्मिक विकास और पतन नापने के लिए गुणस्थान एक प्रकार का Spiritual Meter है।

—89, Audiappa Naicken Street
Sowcarpet, Madras–600 079

कविता :



सामायिक ही

□ श्री राजमल पवैया

सामायिक ही समभावों के, वैभव की उत्पादक है ।
सामायिक ही नींव ध्यान की, केवलज्ञान प्रकाशक है ।।

तू ही हरि, हर, ब्रह्मा, शंकर, जिनवर, बुद्ध आदि शिव रूप,
सर्वोत्तम परमोत्कृष्ट है, त्रिभुवन पति गुरु सिद्ध स्वरूप ।
ऐसा दृढ़ निश्चय कर, सामायिक में तू हो जा तल्लीन,
परमानन्द अतीन्द्रिय सुख की, गूँजेगी अन्तर में बीन ।।

संवर सहित निर्जरा होती, दशा अबंधकदायक है ।
सामायिक ही समभावों के वैभव की उत्पादक है ।।

संशय, अविनय, राग, द्वेष, भय, गर्व, कीर्ति, यश, भाव नहीं,
लाभ-हानि, या जन्म-मरण में, हर्ष, शोक का भाव नहीं ।
स्वाधीनता अमरता आती है, पुलकित होता चिद्रूप,
बढ़ती है चिन्मयता और निराकुलता, क्षण-क्षण सुखरूप ।।

सामायिक की पावन वेला, पूर्णतया आध्यात्मिक है ।
सामायिक ही समभावों के, वैभव की उत्पादक है ।।

अहंकार ममकार आदि पर, पूर्ण नियन्त्रण होता है,
फिर अन्याय अनीति आदि से, विरहित जीवन होता है ।
परिषह उपसर्गों पर जय पाते ही, जिय चिद् घन होता है,
दर्शन ज्ञान चरित्र सहित, जप तप संयम धन होता है ।।

सामायिक का अनुष्ठान सत्चित आनन्द प्रदायक है ।
सामायिक ही समभावों के, वैभव की उत्पादक है ।।

बंध अबंध दशा दोनों में, जब होता है युद्ध प्रबल,
जितना अंश शुद्धि का होता, उतना वीतराग निर्मल ।
जितनी भी अशुद्धि उतनी ही, है सरागता पर निर्बल,
वीतरागता के जगते ही, पाप-पुण्य सब जाते गल ।।

बंधमोक्ष के महायुद्ध में, शुद्धभाव निर्णायक है ।
सामायिक ही समभावों के, वैभव की उत्पादक है ।।

—४४, इब्राहीमपुरा, भोपाल (म० प्र०)



नवकार मंत्र का रहस्य

□ श्री कस्तूरमल सिंघवी

जैन आगम में नवकार मंत्र की अनन्त महिमा है और इस मंत्र को जैन-शासन का सार बताया गया है। मंत्र के पदों व अक्षरों की व्याख्या करते हुए शब्दार्थ और भावार्थ तो सब जगह उपलब्ध है, परन्तु इस 'मंत्रराज' का रहस्य क्या है, इस पर किसी ने प्रकाश नहीं डाला है। सम्भवतया इस विषय पर रिसर्च भी हो रही होगी परन्तु कोई परिणाम सामने नहीं आया है। कारण स्पष्ट है कि यह शोध का विषय न होकर साधना का विषय है। मंत्र की साधना से मोक्ष प्राप्ति के भी संकेत मिलते हैं, पर कैसे ?

जिस प्रकार 'ओ३म्' शब्द प्रणव होने से विज्ञानमय प्रभाव वाला है, उसी प्रकार नवकार मंत्र भी शाब्दिक अर्थ से भिन्न एक विज्ञानमय प्रभाव वाला है। इस मंत्र का अर्थ सरल और सामान्य है। इसके अर्थ में दिव्य जीवन की शिक्षायें और दिशायें पाई जाती हैं। इन्हें समझना भी उचित है। परन्तु मंत्र की शक्ति (Power) इन शिक्षाओं में नहीं है बल्कि मंत्र की शब्द रचना से जुड़ी हुई है। नवकार मन्त्र की संरचना अमुक अक्षरों के एक विशिष्ट क्रम से, शब्द शास्त्र के गूढ़ सिद्धान्तों पर तत्त्वदर्शी सिद्धों द्वारा की गई प्रतीत होती है। नवकार के पदों के मंत्राक्षरों के मानसिक उच्चारण से शक्ति (Energy, Power) का विकास होकर स्पंदन (Vibration) उत्पन्न होता है जिससे सूक्ष्म शरीर प्रभावित होता है। सूक्ष्म शरीर में तीन ग्रन्थियां-कल्पयोनि (Paunse) मूलकंद (Medula) आदि, षट पद्मो (Nuclii) मूलाधार, स्वाधिष्ठान आदि के कुल ५० दल, चौरासी नाड़ियाँ जो पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच सूक्ष्म भूत और मन तथा बुद्धि और विभिन्न नाड़ियों में असंख्यात शिराओं को झंकृत (Vibrate) कर उन्हें जागृत करने में नवकार मन्त्र का उच्चारण क्रम अपना कार्य करता है। जिससे सूक्ष्म मन का विकास होकर ज्ञान स्वरूप जीवात्मा प्रत्यक्ष होकर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त कर लेती है।

इस तथ्य को समझने के लिये शरीरस्थ अन्नमय, मनोमय, ज्ञानमय, विज्ञानमय और आनन्दमय जो जीव के पांच कोष हैं, उनका ज्ञान प्राप्त करना होगा। इन्हीं कोषों के माध्यम से जीव सब प्रकार के कर्म, उपासना, ज्ञानादि व्यवहारों को करता है। मगर इन सब कोष अवस्थाओं से जीव पृथक् है।

ज्ञानमय कोष को भेद कर विज्ञानमय कोष में प्रविष्ट होने पर नवकार मन्त्र का विज्ञानमय प्रभाव अनुभव में आना प्रारम्भ हो जावेगा। ऐसे क्रियायोग की साधना राजयोग से सम्भव है। राजयोग की साधना में यम-नियम का पालन करते हुए कठोर तपश्चर्या का आलम्बन लेना होगा, जो आत्मा की खुराक है। आसन दृढ़ करने के लिए बद्ध पद्मासन का अभ्यास करके ३–४ घण्टे तक स्थिर आसन की क्षमता आने पर मन को अन्तर्मुखी करके संयत करने के लिए उच्छर्दन-प्रच्छर्दन प्राणायाम के द्वारा प्राण को सूक्ष्म करने का अभ्यास कर निरुद्ध अवस्था लानी होगी। इस क्रिया से मानसिक प्रवाह सुषुम्ना के अन्दर से चलने लगेगा।

नवकार मन्त्र के पदों का मानसिक जाप करने पर स्पष्ट ज्ञात होगा कि महामन्त्र के पदों में अरिहंत, सिद्धों की स्तुति से भिन्न वह महाशक्ति (Eternal Power) है जो सूक्ष्म मन के माध्यम से अत्यन्त संवेदनशील अवस्था में विज्ञानमय कोष में प्रवेश कर मेरुदण्ड स्थित सुषुम्ना के भीतर के केन्द्रों के अति सूक्ष्म नाड़ी संस्थानों के तन्तुओं को स्पंदन (Vibrations) द्वारा जाग्रत करती है। सुषुम्ना स्थित पद्मों आदि की असंख्यात नाड़ी संस्थानों के तन्तुओं को प्रभावित व जागृत करने के उद्देश्य से नवकार मन्त्र की रचना इस प्रकार से की गई है कि प्रथम पद 'णमो अरिहंताणं' का मानसिक उच्चारण होते ही स्वाधिष्ठान पद्म के नाड़ी संस्थानों व नाभि प्रदेश को झंकृत कर केन्द्र में स्थित नाड़ी समूह के तन्तुओं को जागृत करेगा और फिर इसी प्रकार 'णमो सिद्धाणं', 'णमो आयरियाणं' आदि के पदों का क्रमशः मानसिक उच्चारण होते ही आगे-आगे के पद्म, मखिपूर, अनाहत आदि के नाड़ी समूह (Nuclii) को झंकृत (Vibrate) करता हुआ इन्हें अधोमुखी से ऊर्ध्वमुखी कर देगा तथा अन्त में 'सव्व साहूणं' के उच्चारण से मूलाधार व आज्ञा चक्र के माध्यम से ऊपर से नीचे के समग्र मार्ग को आलोकित करता हुआ पुनः ऊपर सहस्रार चक्र पर पहुँच कर उस महाशक्ति को जागृत करेगा जो सूक्ष्म मन की सप्तम भूमि है और जहाँ इस महाशक्ति के विकास के फलस्वरूप अनन्त ज्ञान और अनन्त शक्ति जीवात्मा को प्राप्त होते ही अपने निज स्वरूप में लीन होकर चिर स्थायी शान्ति प्राप्त करने में सक्षम हो जायेगी। ऐसे शक्ति पुंज के विकसित होने पर जीवात्मा प्रत्यक्ष हो जायेगी और कर्म रूपी बीज को दग्ध कर कैवल्य प्राप्त कर मोक्ष की अधिकारी बन जायेगी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नवकार महामन्त्र की साधना से आत्मा—जो ज्ञान स्वरूप है और उसके स्मरण आदि विज्ञान रूप गुण हैं, वे स्व संवेदन द्वारा ही प्रत्यक्ष अनुभव में आ सकते हैं तथा इसी से मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

भगवान महावीर की साधना का यही क्रम रहा होगा, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। महावीर उग्र तपस्वी होने के साथ ही सर्वश्रेष्ठ योगी भी थे। यदि कहीं भगवान की नित्य-प्रति साधना—दिनचर्या का वर्णन उपलब्ध हो तो यही तथ्य प्रकट होगा। साधना-आराधना ही व्यक्ति का वह जीवन-क्रम है जिसके द्वारा वह अपनी स्थूल देह के माध्यम से अपने पुरुषार्थ के बल पर स्वयं की अति सूक्ष्म अन्तर्निहित शक्ति का इतना विकास कर सके कि चित्त में प्रतिबिम्बित चैतन्य जो केवल साक्षी के रूप में रहता है, उसको प्रत्यक्ष करके कारण शरीर में विलीन होकर चिरस्थायी शान्ति को प्राप्त हो सके। अतः संक्षेप में यही कि नवकार महामन्त्र की महाशक्ति का रहस्य साधना द्वारा ही ज़ाना जा सकता है, पोथी के ज्ञान से नहीं।

—मेड़ता सिटी (राजस्थान)

उपदेश का ढंग

☐ बलवन्तसिंह हाड़ा

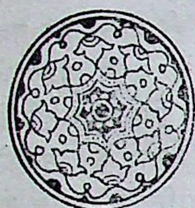
सम्राट् अशोक ने देखा कि राज्य में लोग वैभव का प्रदर्शन अधिक करने लगे हैं, स्त्रियाँ अधिक अलंकरण धारण करने लगी हैं, पुरुष वर्ग हीरे-जवाहरातों की माला, वस्त्र और आभूषणों के रूप में धारण कर वैभव का प्रदर्शन करने में पीछे नहीं हैं। सम्राट् ने राजाज्ञा द्वारा निषेध करवाया कि कोई भी स्त्री या पुरुष सार्वजनिक स्थानों पर जवाहरात या आभूषण न पहनें। सम्राट् ने आदेश की पालना के विपरीत लोगों में आभूषण और भड़कीले पहरावे की ओर ज्यादा उत्सुकता पाई।

सम्राट् ने अपने गुरु से इस समस्या के निवारण हेतु निवेदन किया। उन्होंने अपने आदेश का कोई लाभप्रद परिणाम न निकलने की व्यथा भी बताई। गुरु मुस्करा कर बोले—"तुम्हारे आदेश में व्यावहारिकता-अनुभव का अभाव है।" गुरु ने आदेश को पुनः इस प्रकार प्रसारित किया—"कोई भी स्त्री या पुरुष सार्वजनिक स्थान पर जवाहरात या आभूषण न पहनें, लेकिन भाण्डों और वेश्याओं पर यह आदेश लागू नहीं होगा।"

सचमुच अगले दिन किसी भद्र पुरुष या स्त्री को आभूषणों का प्रदर्शन करते नहीं देखा।

—सी-३७, जवाहर कॉलोनी, झालावाड़–३२६००१

आहार-विवेक :



केवल एक रुपये में पौष्टिक आहार

गये दिनों "दि इंडिपेंडंट" इस अंग्रेजी समाचार पत्र में छपा आहार विशेषज्ञ डॉ० विजया वेंकट से साक्षात्कार एवं स्मरणीय फीचर रहा। महाराष्ट्र राज्य की मुंबई मनपा ने पाठशालाओं में छात्रों को अण्डे देने का प्रस्ताव पारित किया था और उपरान्त में पौष्टिकता का पोल खुल जाने पर यह प्रस्ताव खारिज करना पड़ा था। डॉ० वेंकट ने इस साक्षात्कार में अण्डे की तथाकथित पौष्टिकता के दावे को झूठा ठहराया है।

इस साक्षात्कार में वे कहती हैं कि मानव के लिए अण्डे अच्छे नहीं हैं क्योंकि उनमें बड़े पैमाने पर संपृक्त स्निग्धाम्ल तथा कोलेस्टोरेल होता है, और स्टार्च तथा तन्तुमयता का नामोनिशान नहीं है। इसकी वजह से उसका पाचन आसानी से नहीं होता परिणामवश कब्ज और उपरान्त में कैन्सर भी होने का डर रहता है। "साल्मोनेला" नामक सूक्ष्म जंतु भी अण्डे में होता है, इसकी भी इन्होंने याद दिलायी है।

डॉ० वेंकट कहती हैं, अण्डों में उच्च दर्जे की प्रोटीन्स बड़ी मात्रा में होती है और अगर ऐसा समझा जाय कि तकनीकी ऊर्जा देनेवाली स्निग्धता भी होती है तो भी कोलेस्टेरोल का घातक असर एवं कार्बोहाइड्रेट्स जैसी ऊर्जा की सत्वर पूर्ति करनेवाले स्रोतों की कमी ये बहुत बड़ी त्रुटियाँ हैं। अण्डे खाने से पाचनक्रिया पर भारी बोझ पड़ता है एवं पाचनक्रिया मंद होकर सड़ने की प्रक्रिया शुरू होती है। मनुष्य की काफी ऊर्जाशक्ति अण्डे पचाने के लिए काम आती है, इस ओर भी इस सुप्रसिद्ध आहार विशेषज्ञ ने संकेत किया है।

हमें केवल इससे संतुष्ट नहीं होना चाहिए कि हम जिंदा हैं। योग्य आहार लेकर शरीर के लिए एक "केअर सिस्टम" विकसित करनी है। उस योग्य खाद एवं अन्य अन्न इकाइयों का भी संभरण करना है। पोषकता न केवल खाद से बल्कि वायु, सूर्यप्रकाश, पानी एवं अन्य चीजों से भी सम्बन्ध रखती है। जीवविज्ञान के अनुसार मनुष्य मूलतः 'फ्रुटेरियन" है। सब्जियों एवं फलों को

यह अच्छी तरह से पचा सकता है। और फिर फल तो बच्चों को काफी प्यारे होते हैं। उनमें पाचन के लिए आवश्यक आम्ल, जीवनसत्व, प्रोटिन्स, कार्बोहाइड्रेट्स, खनिज पदार्थ एवं पानी पर्याप्त मात्रा में निहित हैं। बाफ पर पकायी गयी दालमोठ, इडलियां, फलों का रस, पूरे गेहूं का उपमा, लड्डू या घर में बनायी हुई भेलपुरी बच्चों को देनी चाहिए। यह नाश्ता छात्र स्वयं भी बना सकते हैं और साथ ही साथ उन्हें गृहशास्त्र की शिक्षा भी अपने आप मिलेगी, ऐसा विचार रखते हुए डॉ॰ वेंकट ने फल एवं सब्जियाँ अण्डों से भी महँगी पड़ेगी यह डर झूठा है ऐसा सप्रमाण सिद्ध किया है। वे कहती हैं कि फल एवं सब्जियाँ बड़ी मात्रा में खरीदने पर काफी सस्ती पड़ती हैं केवल छात्रों के आरोग्य के लिए कष्ट उठाने की आवश्यकता है, ऐसा प्रतिपादन उन्होंने किया है।

सौ छात्रों को अगर दालमोठ एवं एक फल देने की योजना हो तो हरेक छात्र पर सिर्फ एक रुपया खर्च होगा। ऐसी योजना महाराष्ट्र में पाठशालाओं में शुरू करने का अपना निश्चय जाहिर करते हुए डॉ॰ वेंकट आगे कहती हैं कि छात्रों को शाकाहार देने के लिए मोटी पूंजी लगाने की भी जरूरत नहीं है। बस ! समय, सहनशीलता एवं प्रेम का निवेश जरूरी है।

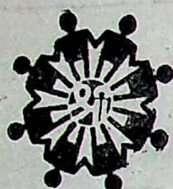
प्रस्तुत साक्षात्कार में पोल्ट्री फार्म्स को वे "मृत्युक्षेत्र" की संज्ञा देती हैं तथा ऐसी सही अपेक्षा करती हैं कि चूंकि इस जगह पशु एवं पर्यावरण सुरक्षा का कानून पांवों तले रौंदा जा रहा हैं, पोल्ट्री फार्म्स की मान्यता खारिज करके नये पोल्ट्री फार्म्स को मान्यता नहीं दी जानी चाहिए।

अण्डे पौष्टिक हैं इस गलतफहमी से कई माता-पिता जोर जबरदस्ती से बच्चों को अण्डे खिलाते रहते हैं। इससे बच्चों की पाचनशक्ति पर बोझ पड़ता है और ये दूध लेने से इन्कार करने लगते हैं। छठवें महीने से बालक को दाल-चावल, उबालकर नरम की गयी फलों की सब्जियाँ देने से बालक सुदृढ़ रहता है।

—प्रेषक : अहिंसा प्रसारक ट्रस्ट
83, बजाज भवन, नरिमन पाइण्ट, बम्बई-२१

□ □ □

समानधर्मी क्षण



☐ श्री जयनारायण गौड़
पूर्व जिलाधीश जयपुर एवं सदस्य राजस्व मण्डल

सन् १९७१–७२ में कनाडा के एडमौंटन स्थित अलबर्टा विश्वविद्यालय में, मैं भारत सरकार की ओर से मनोनीत हो अध्ययन कर रहा था। अक्टूबर, १९७१ की एक सुहावनी सुबह थी। मैं तथा प्रोफेसर पीयर्सन मौंट्रीयाल में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की एक कॉन्फ्रेंस में भाग लेने रवाना हुए। एडमौंटन से मौंट्रीयाल की वायुयान यात्रा कोई ३ घण्टे की थी। दोनों को पास की सीट मिल गई इसलिए बातें करते हुए पता ही नहीं चला कि कब वायुयान सस्कैचवन प्रान्त की राजधानी रैजाइना पर उतरा और कब अपने अगले पड़ाव टोरंटो के लिए उड़ान भर बादलों को चीर आसमानी बुलन्दियों को छूने लगा। एण्डमौंटन से रैजाइना तक हमारी बातचीत सामुदायिक विकास (जिसके लिए मैं कोलम्बो प्लान के अन्तर्गत मनोनीत किया गया था) से जुड़ी रही। मगर रैजाइना से उड़ने के बाद प्रोफेसर पीयर्सन अपनी बिटिया मेरी की याद में खो गए। वह अविवाहित पुत्री उनकी एकमात्र सन्तान थी। वह टोरंटो में टेलीफोन विभाग में कार्यरत थी। फोन पर नियमित रूप से माता-पिता एवं बेटी बात कर लेते थे। मगर एक वर्ष से उससे मिलना नहीं हो पाया था। पीयर्सन अधीरता से वायुयान से टोरंटो उतरने का इन्तजार कर रहे थे, उनकी बेटी जो उनसे वर्ष भर बाद मिलने आने वाली थी। रैजाइना से टोरंटो की यात्रा में डेढ़ घण्टा लगता है। पूरे समय वे विस्तार से अपनी लड़की की विशेषतायें मुझे बताते रहे। बहुत परिश्रमी, मृदुभाषी एवं कक्षाओं में हमेशा प्रथम आने वाली इस सुन्दर लड़की से मिलने के लिए मैं स्वयं भी आतुर हो उठा था उसकी तारीफ सुन-सुनकर।

ठीक वक्त पर वायुयान टोरंटो के हवाई अड्डे पर उतरा। मेरी ने दूर से ही हाथ हिलाकर अपने पिता का स्वागत किया। बुजुर्ग पिता, लम्बे कदमों से लगभग दौड़ते, हाँफते बढ़े और दोनों आलिंगनबद्ध हो गए। बाद में उन्होंने मेरा भी परिचय करवाया। उसके बाद पिता-पुत्री वायुयान पड़ाव के निर्धारित आधे घण्टे के पूर्ण सदुपयोग के लिए बातचीत में ऐसे खोये कि उन्हें यह सुध भी नहीं रही कि उनके साथ कोई और भी बैठा है। कनाडा के परिप्रेक्ष्य में ऐसे बिरले दृश्य को देखकर मैं पुलकित हो रहा था। अन्ततः आधा घण्टा लगभग बीतने को हुआ। विदा होने के लिए पिता भरे मन से उठा ही था कि हवाई अड्डे के ध्वनि-विस्तारक यन्त्र ने सूचित किया कि तकनीकी खराबी

होने के कारण वायुयान आधा घण्टा विलम्ब से उड़ेगा। पीयर्सन की मुखाकृति तब देखने लायक थी। मानो प्यासे को पानी मिल गया। उनकी बाँछें खिल गई। अपने साथ उठ खड़ी पुत्री से उन्होंने मुस्करा कर कहा कि वे किस्मत वाले हैं क्योंकि वायुयान अब देर से उड़ेगा। पिता पुनः बैठने को हुआ और पुत्री ने बड़ी शालीनता मगर दृढ़ता से कहा कि "डैड, बॉय फ्रैण्ड से मेरा एपाइंटमेंट है, अतः मुझे जाना है।"

मेरी अपने पिता को चूम मुस्कराती हुई चली गई।

बुझे मन से पहले तो पिता अदृश्य होती हुई अपनी पुत्री की छाया को अपलक देखते रहे। बाद में उन्होंने ऐसी आहत दृष्टि से मुझे देखा कि उसे याद कर अब भी स्वयं को आहत महसूस करने लगता हूँ। टोरंटो से मौंट्रीयाल तक यह मिलनसार एवं वाकपटु व्यक्ति अपने में ही खोया रहा।

मार्च, १९८८। मैं, त्रिवेन्द्रम एक सेमीनार में गया था। परिवार के लोग मुझे छोड़ने आए थे। हम आधे घण्टे पहले पहुँच गए थे। त्रिवेन्द्रम की फ्लाइट मुझे दिल्ली से दूसरे दिन पकड़नी थी। अतः दिल्ली जाने वाले रात्रि के वायुयान से मैं जयपुर से जा रहा था। यहाँ पर वायुयान का पड़ाव आधा घण्टे का है। विदा होने के लिए मैं उठने को ही था कि ध्वनि विस्तारक यन्त्र ने सूचित किया कि तकनीकी गड़बड़ी के कारण वायुयान आधा घण्टे विलम्ब से उड़ेगा। इसी सूचना के तुरन्त बाद धीरेन्द्र मिश्रा लगभग दौड़ते-हाँफते से तशरीफ लाए। वे मेरे पुराने परिचित हैं। रिटायर होकर वे दिल्ली में बस गए हैं। उनका पुत्र यहाँ उच्च पद पर नियुक्त है। उन्होंने आते ही पूछा—"प्लेन चला तो नहीं गया।"

मेरे उत्तर से उन्होंने राहत की साँस ली। फिर हम बतियाने लगे। लगभग १ वर्ष बाद वे अपने पुत्र से मिलने जयपुर आये थे। मैंने उनके पुत्र प्रदीप के हाल-चाल पूछे तो उन्होंने यह भी बताया—"आज उसके क्लब में कोई समारोह है। इसलिए वह विदा करने नहीं आ सका।"

ये भारतीय पिता खुद ही जब अपने पुत्र की अनुपस्थिति को जायज बताने का प्रयत्न कर रहे थे तो उनकी दयनीयता ने मुझे १७ वर्ष पूर्व की, पीयर्सन के साथ की गई वायुयात्रा की स्मृति हरी कर दी।

मैं सोच उठा क्या स्नेह औपचारिकताओं का भी बंधक रहे या उसका आनन्द लेने, देने के लिए अपनी तात्कालिक और क्षणिक भौतिक सुविधाओं का समर्पण भी आवश्यक है, इन प्रश्नों का समुचित उत्तर मैं स्वयं नहीं दे पाया हूं। पर ये दोनों ही समानधर्मी क्षण अभी भी मुझे झकझोर देते हैं।

—'हेमांचल' सी–६८, राम मार्ग,
तिलक नगर, जयपुर–३०२ ००४

बाल कथामृत* (६१)

□ १८ वर्ष तक के बच्चे इस कहानी को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर १५ दिन में "जिनवाणी" कार्यालय को भेजें। उत्तरदाताओं के नाम पत्रिका में छापे जायेंगे। प्रथम, द्वितीय व तृतीय आने वालों को क्रमशः २५, २० व १५ रुपयों की उपहार राशि मण्डल द्वारा प्रदान की जायेगी। इसके अलावा वर्ष भर के लिए निम्न १३ प्रोत्साहन पुरस्कार भी प्रदान किये जायेंगे। १. श्री राजेन्द्रप्रसादजी जैन एडवोकेट, भवानीमंडी की ओर से उनकी माताजी श्रीमती बसन्तीबाई की पुण्य स्मृति में ११ रुपये का एक पुरस्कार। २. श्री रिखबराजजी कर्णावट, जोधपुर की ओर से उनके पिता श्री पनराजजी कर्णावट की पुण्य स्मृति में १० रुपये का एक पुरस्कार। ३. श्री कैलाशजी बोहरा, भवानीमण्डी की ओर से उनके पिता श्री शान्तिलालजी की स्मृति में ११ रुपये का एक पुरस्कार। ४. जे० एल० जैन ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा ११ रुपये का एक पुरस्कार। ५. ६. ७. ८. श्री रिखबचन्दजी कांकरिया, मद्रास की ओर से उनके पिता श्री मोहनलालजी कांकरिया, माता श्रीमती झणकारबाई कांकरिया की पुण्य स्मृति में तथा पूज्य महासती श्री सरलाजी एवं विमलाजी की दीक्षा स्मृति एवं धर्मपत्नी श्रीमती पिस्तादेवी के दो वर्षी तप करने के उपलक्ष्य में १०-१० रुपये के चार पुरस्कार। ९. श्री रघुदासजी जैन, सवाई माधोपुर की ओर से उनके पिता श्री रामजसजी जैन एवं माता श्रीमती मोत्यादेबी जैन की पुण्य स्मृति में १० रुपये का एक पुरस्कार। १०. ११. श्री विनयचन्दजी जैन, दिल्ली की ओर से ११-११ रुपये के दो पुरस्कार उनके पिता श्री प्रेमचन्दजी जैन एवं माता श्रीमती इन्द्राकुमारी जैन की पुण्य स्मृति में। १२. श्री सुरेश राजेन्द्रकुमारजी मेहता, बम्बई की ओर से ११ रुपये का एक पुरस्कार अपने दादाजी श्री घेवरचन्दजी मेहता की पुण्य स्मृति में। १३. श्री प्रकाशचन्दजी शिशोदिया, रामपुरा की ओर से ११ रुपये का एक पुरस्कार अपनी मातुश्री श्रीमती भँवर बाईजी की स्मृति में।

—सम्पादक



नाम का नहीं, काम का महत्त्व

□ श्री प्रकाशचन्द्र पारख

प्राचीन समय की बात है। तक्षशिला विश्वविद्यालय में पापक नाम का एक विद्यार्थी पढ़ता था। उसके दोस्त जब उसको पापक कहकर पुकारते, तो

*श्री राजीव भानावत द्वारा सम्पादित—परीक्षित स्तम्भ।

वह अपने इस नाम से बहुत लज्जित होता था। एक दिन उसने सोचा कि इस अशुभ नाम के स्थान पर कोई दूसरा अच्छा नाम रख लूं जिससे मेरा गौरव व मान-सम्मान बढ़ जायेगा। वह अपने गुरुदेव से बोला—मुझे अपने इस अशुभ नाम के कारण दूसरों के सामने नीचा होना पड़ता है, इसलिए आप मेरा कोई दूसरा नाम रखदें जिससे मुझे लज्जावश दूसरों के सामने नीचा झुकना न पड़े।

गुरु ने कहा—वत्स, मैं तुम्हारे इस नाम के स्थान पर दूसरा कोई अच्छा नाम रख दूंगा, लेकिन पहले तू आस-पास के गाँवों में जाकर अपने लिए कोई नाम खोज ला।

वह शिष्य (पापक) घूमते-घूमते एक गाँव में पहुँचा। वहां कुछ लोग एक शव को श्मशान-घाट ले जा रहे थे। पापक ने एक से पूछा—क्यों भाई, कौन मरा है?

उसने कहा—अमरपाल मरा है।

पापक ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—क्या अमरपाल होकर भी मर गया?

यह कैसे हो सकता है?

उस आदमी ने कहा—तुम कैसे लड़के हो! क्या अमरपाल नाम होने से भला कोई संसार में अमर हो सकता है?

पापक ने सोचा—ऐसे नाम से क्या लाभ? मुझे कोई सार्थक नाम ढूँढ़ना चाहिए।

वह आगे बढ़ा। कुछ दूर जाने पर एक स्त्री सिर पर गट्ठर ले जाती हुई मिली। उसने उसका नाम पूछा। स्त्री ने अपना नाम लक्ष्मी बताया। इसके बाद पापक ने उसका काम पूछा। स्त्री ने कहा—मैं दरिद्र हूँ, मेहनत-मजदूरी करके पेट पालती हूँ। पापक ने सोचा नाम तो लक्ष्मी और काम कंगाली का। कैसी उलटी बात है? उसने स्त्री से पूछा—आप लक्ष्मी होकर भी निर्धन क्यों हैं?

स्त्री बोली—बेटा, नाम से क्या होता है? तुम उसके धोखे में क्यों पड़ते हो? संसार में कर्म प्रधान है।

पापक निराश होकर दूसरे गाँव में पहुँचा । वहाँ भांति-भांति के लोग मिले । एक चोर को राजा के सिपाही पकड़ कर ले जा रहे थे । पूछने पर उसका नाम धर्मपाल बताया । एक कन्जूस को लोग धिक्कार रहे थे । पापक के पूछने पर उसका नाम धर्मदास बताया । पापक ने मन ही मन सोचा – कैसी विचित्र बात है, नाम तो धर्मदास है लेकिन कन्जूस सबसे बड़ा है । एक भिखारी भीख माँग रहा था । पापक के पूछने पर उसने अपना नाम लखपतिराय बताया । पापक ने सोचा—घर-घर भीख माँगता है और नाम लखपतिराय है । और आगे जाने पर एक आदमी खाट पर बैठा देह खुजला रहा था । उसके पूरे शरीर में दाद हो गई थी । उसने अपना नाम निर्मल बताया । पापक उसकी दशा देखकर बोला—आपका नाम तो निर्मल है फिर भी आप रोगग्रस्त हैं । अरे भाई, तुम्हें कौन निर्मल कहेगा ? नाम से तो बड़ा धोखा हो सकता है ।

इस प्रकार घूमते-घूमते उसे अनुभव हो गया कि केवल नाम से आदमी की महिमा नहीं होती है । वह वापस आचार्य के पास पहुँचा ।

आचार्य ने पूछा—कहो पापक, अपने लिए कौनसा नाम चुना है ?

पापक ने कहा—देव, नाम तो बहुत से मिले परन्तु उसके कारण किसी का गौरव नहीं बढ़ा । जिसका नाम अमरपाल था वह भी मर गया; लक्ष्मी पैसे के लिए दर-दर भटकती, धर्मपाल चोरी करते पकड़ा गया, धर्मदास महा-कन्जूस था, लखपतिराय भीख मांगता था और निर्मल नाम के आदमी को देखकर घृणा होती थी । ऐसी दशा में मैं यह सोचता हूँ कि बड़े अच्छे नाम से किसी को बड़प्पन नहीं मिलता । मनुष्य वास्तव में अपने गुण व चरित्र के आधार पर मान-सम्मान पाता है । अब मैं नाम को महत्त्व नहीं देता ।

आचार्य ने कहा—ठीक है पुत्र, मैंने तुम्हें यही सीखने के लिए भेजा था । मनुष्य को नाम से नहीं, काम से सिद्धि प्राप्त होती है । यदि तुम गुणी व सदाचारी बनकर रहोगे तो केवल पापक के कारण तुम्हें कोई अधम नहीं मान लेगा । अपने काम से नामी बनो । नामी होने का यही रहस्य है ।

—ए-९, साधना भवन, बजाज नगर
जयपुर–३०२ ०१५

अभ्यास के लिए प्रश्न

उपर्युक्त कहानी को पढ़कर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए—

१. पापक अपना नाम क्यों बदलना चाहता था ?

२. पापक ने अपने नाम की खोज में क्या-क्या देखा ?

३. नाम की खोज में घूमते-घूमते पापक किस निष्कर्ष पर पहुँचा ?

४. मनुष्य का बड़प्पन किस बात में है ?

५. 'मनुष्य को नाम से नहीं काम से सिद्धि मिलती है ।' इस कथन का आशय स्पष्ट कीजिए ।

६. 'नाम का नहीं काम का महत्त्व है ।' इस बात को सिद्ध करने वाला कोई प्रसंग लिखिए ।

७. इस कहानी से आपको क्या शिक्षा मिलती है ?

'जिनवाणी' के मार्च, १९९१ के अंक में प्रकाशित **श्री नरेन्द्र सिंघवी** की कहानी **'जायदाद का बंटवारा'** (८९) के उत्तर जिन बाल पाठकों से प्राप्त हुए हैं, उन सभी को बधाई ।

पुरस्कृत उत्तरदाताओं के नाम

प्रथम—श्री अरविन्दकुमार नागौरी द्वारा श्री भँवरलालजी नागौरी **बम्बोरा**–३१३७०६ जिला–उदयपुर (राज०) ।

द्वितीय—श्री प्रकाशचन्द जैन द्वारा श्री लड्डूलाल जैन द्वारा जैन पेपर ट्रेडर्स एण्ड स्टेशनर्स, ई. एस. आई. अस्पताल के सामने, **बजरिया–सवाई-माधोपुर**–३२२००१ ।

तृतीय—श्री सुरेशकुमार राठौर द्वारा श्री लक्ष्मीनारायणजी राठौर, रेलवे फाटक बाहर, पुरानी पुलिस चौकी के पास, **चौमहल्ला** (जि. झालावाड़) ।

प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त उत्तरदाता

१. कु. प्रवीणा मेहता द्वारा श्री धनपतमलजी मेहता, रावतों का बास, **जोधपुर**–३४२००१ ।

२. श्री विमलकुमार जैन द्वारा जैन स्टडी सर्किल, बोथरा हाउसेज, **नागौर**–३४१००१ ।

३. श्री श्रीपाल देशलहरा 'स्वयं सेवक', श्री जैन शिक्षण संस्थान, साधना भवन, ए-६, महावीर उद्यान पथ, बजाज नगर, **जयपुर**-३०२०१५।

४. श्री नवरत्नमल बोथरा द्वारा श्री मुकनमल बस्तीमल बोथरा, बोथरा मेंशन, पो. **नागौर**-३४१०१।

५. श्री सुनीलकुमार सांखला 'जिज्ञासु' द्वारा श्री केवलचन्दजी सांखला मु. पो. **नांदिया कल्ला**, वाया लवेरा बावड़ी (जि. जोधपुर)।

६. कु. रेणुका शर्मा, नील कुंज, शिव मन्दिर के सामने, शक्ति नगर, सुभाष नगर, **अजमेर**-३०५००१।

७. कु. रेखा जैन द्वारा श्री शान्ताप्रसादजी जैन, १२१, इन्द्रा कॉलोनी, मानटाउन, **सवाईमाधोपुर**-३२२००१।

८. कु. शर्मिला बोथरा द्वारा नवीनचन्द्रजी बोथरा, बोथरा मेंशन, पो. **नागौर**-३४१००१।

९. कु. तारा चण्डालिया पो. **भादसोड़ा** (जि. चित्तौड़गढ़)।

१०. कु. ब्रजेशकुमारी भाटी द्वारा श्री लक्ष्मीनारायणजी भाटी, रेलवे फाटक बाहर, चौमहल्ला (राज.)।

११. श्री सुनीलकुमार भाटी द्वारा श्री लक्ष्मीनारायणजी भाटी, रेलवे फाटक बाहर, पूर्व पुलिस चौकी के पास, **चौमहल्ला**-३२६५१५।

१२. कु. रजनी जैन द्वारा महावीरप्रसाद जैन, महावीर पान भण्डार, **बजरिया सवाईमाधोपुर**-३२२००१।

१३. श्री विपिन जैन, कक्षा सात 'ए', आदर्श उच्च प्राथमिक विद्यालय, **भवानीमण्डी** (राज.)।

अन्य उत्तरदाता

खेरलीमण्डी से कु. बबीता जैन, **भवानीमण्डी** से मनीषा श्रीश्रीमाल, राजेश पोरवाल, सपना जैन, सरोज, गणेश जतिया, जनाब बाई, विनोद व्यास, **श्री जैन पाठशाला, भवानीमण्डी** से निर्भयकुमार नागोता, अर्पिताकुमारी नागोता, वैभव जैन, नीना जैन, सपना जैन, श्वेता जैन, विशाल जैन, शिल्पा वीजावत, मोनिका जैन, विकास वीजावत, समता जैन, गौरव मोगरा, महावीर

जैन, सपना भटनागर, नवीना भटनागर, रंजना भटनागर, सुरेन्द्र जैन, **नागौर** से सुरेशकुमार जैन, **जयपुर** से सुजाताकुमारी, **महावीर जैन धार्मिक पाठशाला, बजरिया–सवाईमाधोपुर** से अमित जैन, आशीष जैन, **दुर्ग** से दीप्ति मेहता, **दरीबा** से सोमेश वर्मा, **पचपहाड़** से विनीता जैन, नीताकुमारी बोहरा, निलेशकुमार बोहरा।

पुरस्कृत उत्तरदाताओं के वे घटना-प्रसंग जिसमें स्वयं की मेहनत से कोई ऊँचा उठा हो

[१]

किसी गाँव में एक किसान रहता था। उसके चार पुत्र थे। वे बहुत सुस्त थे। किसान बहुत परिश्रमी था पर वे अपने पिता के काम में सहायता नहीं करते थे। अतः किसान बहुत चिन्तित रहता था। एक बार किसान बीमार पड़ा। वह जानता था कि अब उसका अन्त समय निकट है। उसने अपने चारों लड़कों को अपने पास बुलाया और कहा—हमारे खेत में एक खजाना छिपा हुआ है। मेरे मरने के बाद तुम उस खजाने को निकाल लेना। उससे तुम आरामदायक जीवन बिता सकोगे। लड़कों ने पिता से पूछा कि वह खजाना कहाँ छिपा है। किसान ने निश्चित स्थान के बारे में कुछ नहीं बताया एवं मर गया। लड़के खजाना पाने के लिए बहुत ही उत्सुक थे। उन्होंने खेत को खोदना शुरू किया। उन्होंने धन पाने के जोश में खेत की प्रत्येक इंच जमीन खोद डाली। परन्तु उनको कोई खजाना नहीं मिला। वे बड़े दुःखी हुए। कुछ दिनों बाद बहुत ही अच्छी वर्षा हुई। उनके एक पड़ौसी ने कहा कि तुम इतने दुःखी क्यों हो? तो लड़के बोले कि खेत में कुछ भी नहीं निकला। पड़ौसी बोला अब पछताने से क्या फायदा? मेरी मानो तो खुदाई तो तुमने कर ही ली है। वर्षा भी अच्छी हो गई। अब तुम बीज बो दो। लड़कों को सलाह बहुत ही अच्छी लगी। लड़कों ने ऐसा ही किया। उन्होंने खूब मेहनत की। शीघ्र ही उनको अच्छी फसल प्राप्त हुई। पड़ौसी ने उन्हें बताया। शायद यही खजाना है जो तुम्हारे पिता ने छिपाया था। वे कठिन परिश्रम करके शीघ्र ही धनवान बन गये।

—**अरविन्दकुमार नागौरी, बम्बोरा**

[२]

बचपन में डॉ० जाकिर हुसैन को अनेक पारिवारिक कठिनाइयाँ आईं फिर भी उन्होंने पढ़ना नहीं छोड़ा। इटावा से दसवीं कक्षा पास करने के बाद उन्होंने अलीगढ़ विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। वहाँ वे मेडिकल कॉलेज में प्रवेश लेने की दृष्टि से लखनऊ गये, किन्तु यह सम्भव नहीं हुआ क्योंकि बीमार पड़ गए। उस समय उनकी मानसिक स्थिति भी ठीक नहीं थी, चूँकि एक साथ कई मुसीबतें उन्हें झेलनी पड़ रही थीं। उनके दो भाई टी. बी. से पीड़ित होकर मर चुके थे और उन्हें टाइफाइड हो गया था जिसने बहुत गम्भीर रूप धारण कर लिया था। धीरे-धीरे वे ठीक हो गए किन्तु शिक्षा क्रम बीच में टूट गया और लगातार ६ वर्षों तक अपने गाँव में ही रहे। हिम्मत हारना तो जाकिर हुसैन सीखे ही न थे। उन्होंने फिर से अलीगढ़ विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और वहाँ से बी. ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसके बाद उन्होंने एम. ए. और कानून का अध्ययन किया। वे बहुत बुद्धिमान व मेहनती विद्यार्थी थे। अपनी मेहनत के बल पर एक कुशल वक्ता के रूप में उन्होंने कई वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में विजय प्राप्त की। और छात्र संघ के उपसभापति भी रहे। इस प्रकार डॉ. जाकिर हुसैन अपनी मेहनत के बल पर ऊँचाई पर पहुँचे।

—सुरेशकुमार राठौर, चौमहल्ला

[३]

बात रामानाजुन की है। रामानुजन का जन्म तमिलनाडु में हुआ। रामानुजन के घर की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। परन्तु रामानुजन अत्यधिक परिश्रमी और अपना काम स्वयं अपने हाथ से करने वाले थे। उनकी बचपन से ही संख्याओं में काफी रुचि थी। उन्होंने स्वयं ही बहुत बड़े-बड़े सूत्र निकाले। १९१२ में मद्रास बन्दरगाह पर पोर्टट्रस्ट ऑफिस में रामानुजन क्लर्क बन गए। वे दोपहर में गणित पर कार्य करते रहते थे। एक दिन अंग्रेज अफसर ने उन्हें देख लिया। रामानुजन की इतनी ऊँची गणित देखकर अंग्रेज अफसर चकरा गया। उसने रामानुजन का इंग्लैण्ड जाने का प्रबन्ध कर दिया। इंग्लैण्ड में भी परिश्रमी रामानुजन को महान् विद्वान् के रूप में "रायल सोसायटी" जिसमें कि सर्वश्रेष्ठ विद्वानों को ही सदस्य बनाया जाता है, रामानुजन को सदस्य बनाया गया। १९१८ में रामानुजन को ट्रिनटो कॉलेज में चुना गया जो बड़े सम्मान की बात थी। इसमें भारतीयों को नहीं चुना जाता था, परन्तु रामानुजन के परिश्रम ने यह सब झूठा सिद्ध कर दिया। रामानुजन का बड़े-बड़े विद्वान् लोहा मानने लगे। बड़ी-बड़ी पत्रिकाओं में उनके लेख छपने लगे। उनका नाम प्रसिद्ध हो गया। इस प्रकार रामानुजन परिश्रम द्वारा ऊँचे उठे।

—प्रकाशचन्द जैन, सवाईमाधोपुर

'जिनवाणी' के अप्रेल १६६१ के अंक में प्रकाशित श्री राजेन्द्र प्रसाद जैन की कहानी **'शाही पालकी'** (६०) के उत्तर जिन बाल पाठकों से प्राप्त हुए हैं, उन सभी को बधाई।

पुरस्कृत उत्तरदाताओं के नाम

प्रथम—श्री नवरतनमल बोथरा द्वारा श्री मुकनमल बस्तीमल बोथरा, बोथरा मेन्शन, **पो० नागौर**—३४१ ००१।

द्वितीय—कु० संगीता शर्मा द्वारा श्री सीतारामजी शर्मा, गौतम निवास, **भवानीमंडी** (राज०)।

तृतीय—श्री प्रकाश लोढ़ा द्वारा संजय लोढ़ा मु० पो० **बरवेट**—४५७ ७७५ जिला—झाबुआ (मध्यप्रदेश)।

प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त उत्तरदाता

१. श्री महावीर देशलहरा, श्री जैन रत्न छात्रालय, **भोपालगढ़**—३४२६०३ (जोधपुर)।

२. श्री दिनेश कुमार जैन, ए—६, साधना भवन, महावीर उद्यान पथ, बजाज नगर, **जयपुर**—१५।

३. श्री सुरेशकुमार राठौड़, द्वारा श्री लक्ष्मीनारायणजी राठौड़, रेलवे फाटक बाहर, जिनिंग फैक्ट्री के सामने, **चौमहल्ला** (राज०)।

४. श्री अरविन्द कुमार नागौरी द्वारा श्री भंवरलालजी नागौरी **बम्बोरा**—३१३ ७०६ (उदयपुर)।

५. श्री सुनीलकुमार भाटी द्वारा श्री लक्ष्मीनारायणजी भाटी, रेल्वे फाटक बाहर, पूर्व पुलिस चौकी के पास, **चौमहल्ला** (जिला—झालावाड़)।

६. कु० शर्मिला बोथरा द्वारा श्री नवीनचन्दजी बोथरा, बोथरा मैंशन, पो० **नागौर**—३४१ ००१।

७. श्री रघुनन्दन शर्मा द्वारा श्री सीतारामजी शर्मा, गौतम निवास, **भवानीमंडी**—३२६ ५०२।

८. श्री देवेन्द्र हिरण द्वारा श्री कन्हैयालालजी हिरण, पुलिस थाने के पास, बड़ली वाला बास, **बिलाड़ा**—३४२ ६०२ (जिला—जोधपुर)।

६. श्री श्रीपाल देशलहरा 'स्वयं सेवक', श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान, ए–६, साधना भवन, बजाज नगर, **जयपुर**–३०२ ०१५ ।

१०. श्री सुरेशकुमार जैन द्वारा श्री सम्पतराजजी बोथरा, गांधीवाड़ी पो० **नागौर**–३४१ ००१ ।

११. श्री कोमल नेमीचन्द रांका द्वारा श्री एम. एल. रांका गोलमदाजी की मस्जिद, मोती चौक, **जोधपुर** ।

१२. श्री रामकरण नाहैलिया द्वारा बस्तीराम जोरभ, कागा क्षेत्र, नहर के पास, **जोधपुर**–३४२ ००६ ।

१३. श्री पवन कुमार जैन, जैन पाठशाला, **भवानीमंडी** ।

अन्य उत्तरदाता

श्री महावीर जैन धार्मिक पाठशाला, सवाई माधोपुर से आशीष जैन, अमित जैन, **पचपहाड़** से नीता बोहरा, देवेन्द्रसिंह, कमलेश कुमार, **भवानीमंडी** से अभिसार जैन, मनीषा श्रीश्रीमाल, अब्दुल सलीम अगवान, विपिन जैन, किरणकुमार सिंह, नूर मोहम्मद अगवान, **बिलाड़ा** से अरिष्ट एन. रांका, **जोधपुर** से रीता शांडिल्य, **इन्दौर** से कविता चौधरी, **पचपदरा नगर** से विमला लूंकड़, **छोटी कसरावद** से लब्धिकुमार जैन, **नांदिया कल्ला** से सुनील कुमार सांखला, **कुशतला** से धर्मचन्द जैन ।

पुरस्कृत उत्तरदाताओं के वे घटना-प्रसंग जिसमें गुरु के उपदेश से शिष्य के जीवन में बदलाव आया हो ।

[१]

एक तपस्वी ने अपने गुरुजी से कई दिनों के लम्बे उपवास के बाद पारणे की आज्ञा मांगी । गुरुजी ने कहा—"पतली कर" । शिष्य ने दो दिन तक अनशन करने के बाद पुनः आज्ञा मांगी तो फिर भी वही उत्तर मिला । शिष्य हर दो दिन बाद इसी प्रकार आज्ञा मांगने जाता और हर बार वही उत्तर मिलता । इसी क्रम में छह महीने बीत गये । शरीर बहुत ही शिथिल हो गया । इतने पर भी जब गुरुजी ने पारणे की आज्ञा न देकर "पतली कर" ही कहा तो सहसा

कुपित होकर क्रोध में कहा—"अपनी देह इतनी पतली कर चुका हूँ, फिर भी आपको संतोष नहीं ?"

गुरुजी ने स्पष्ट किया—"बस, इसी क्रोध रूपी कषाय को पतली करने के लिए मैंने कहा था, देह को नहीं। कषाय से मुक्त होना ही मुक्ति है। "कषाय मुक्ति किल मुक्ति रैव।" शिष्य समझ गया। उसने क्रोध का त्याग कर दिया। तत्काल उसे कैवल्य प्राप्त हो गया।

—नवरत्नमल बोथरा, नागौर

[२]

एक आश्रम में एक नया विद्यार्थी आया जो पढ़ाई-लिखाई में बहुत कमजोर था। उसको पढ़ाई-लिखाई में निपुण करने का बीड़ा गुरुजी ने उठाया। उनके आश्रम में संस्कृत विषय को महत्त्वपूर्ण माना जाता था लेकिन विषय उस नये विद्यार्थी को समझ में नहीं आता। वह उसे समझने की कोशिश भी करता पर उसे समझ नहीं पाता। जब गुरुजी ने ऐसा देखा तो उस विद्यार्थी को एक कुए की मुंडेर पर ले गए और कुए से अन्दर-बाहर आती रस्सी से पत्थर कटता हुआ बताया और कहा कि जब यह रस्सी इतने कठोर पत्थर को काट सकती है तो क्या तुम इस विषय को नहीं समझ सकते ? यह बात उस विद्यार्थी के लिए प्रेरणादायक रही। वह आश्रम पर आकर एक बार फिर कड़ी मेहनत और परिश्रम से उस विषय को समझने लगा और उस विषय को समझने में सफल हो गया।

—संगीता शर्मा, भवानीमंडी

[३]

विश्व शांति के अग्रदूत श्री मोहनदास करमचंद गांधी का नाम आज भी बड़े सम्मान पूर्वक लिया जाता है। घटना मगन बाड़ी आश्रम की है। वहाँ पर रहने वाले हर आश्रमवासी को आटा पीसना पड़ता था। एक बार वहाँ आटा समाप्त हो गया। गांधीजी के एक शिष्य में अहम् उत्पन्न हो गया और सोचा कि मैं अकेला ही आटा क्यों पीसूं ? वह सीधा बापू के पास पहुँचा और कहा—बापू ! आज आटा खत्म हो गया है और पीसने वाला कोई नहीं है। अब आप बतायें मैं क्या करूँ ? बापू स्वयं अपना अधूरा कार्य छोड़कर रसोईघर की ओर गए। वहां जाकर स्वयं आटा पीसने बैठ गए और बोले—मानव तो भाई-भाई हैं फिर ये तू-तू, मैं-मैं क्यों ? हमें अपने कार्य से कतराना नहीं चाहिए। गांधीजी को आटा पीसते देख एवं उनकी शिक्षा से वह अत्यधिक प्रभावित हुआ। उसका सिर श्रद्धानत हो गया। अब उसका अहम् खत्म हो चुका था। उसने गांधीजी से कहा—आप जाइए, आटा मैं स्वयं पीस लूंगा। इस तरह गुरु के कारण एक शिष्य को अहम्, आलस्य छोड़कर स्वावलम्बन एवं परोपकार की सीख मिली।

—प्रकाश लोढ़ा, बरवेट

मन - वंदन

□ श्री भगवतीलाल व्यास

(१)

सब पर्वों में श्रेष्ठ पर्व, यह क्षमा पर्व है,
करता मन को निर्मलतर, यह हरता मिथ्या गर्व है।
मानव में जो विनय भाव, यह सहज उसी का अर्चन है,
तन की विकृति से हट कर, यह मन से मन का वन्दन है ।।

(२)

काम-क्रोध-मद-मोह विकारों से अनुबंधित यह जीवन,
इनके वश में कैसे सम्भव, शुद्ध–सकल–आनन्द–सृजन ?
इसीलिए यह नर परवश हो, भव में बंधता जाता है,
साधन के हित-चिन्तन में यह, साध्य-प्राप्ति विसराता है ।।

(३)

साध्य नहीं यह कलुषित काया, साध्य नहीं आकर्षक माया,
साध्य नहीं पद और प्रतिष्ठा, साध्य नहीं वैभव-छाया ।
साध्य नहीं सुत-दारा-भ्राता, कुल-कुटुम्ब का फैला जाल,
भवन-भुवन-वाहन यात्रादिक, सब हैं केवल भ्रम-जंजाल ।।

(४)

इनकी खातिर हम कितनों का करते हैं प्रतिपल अपमान,
सबको तुच्छ समझते निशि-दिन, अहंकार का तान वितान ।
नव संवत्सर के अवसर पर, प्रिय सारी अविनय क्षमा करें,
यही प्रार्थना है प्रभु से अब, मन विवेक में रमा करे ।।

—फतहपुरा, उदयपुर

●

समीक्षार्थ पुस्तक की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है।



साहित्य-समीक्षा

☐ डॉ० नरेन्द्र भानावत

१. **साध्वीरत्न श्री पुष्पवती अभिनन्दन ग्रंथ**—प्रधान सम्पादक श्री दिनेश मुनि, प्र० श्री तारक गुरु जैन ग्रंथालय, शास्त्री सर्किल, उदयपुर-३१३ ००१, पृ० ६८०, मू० १२५ रु०।

उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी की आज्ञानुवर्तिनी शिष्या एवं उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी की संसारपक्षीय बड़ी बहिन विदुषी साध्वी श्री पुष्पवती जी की दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित यह ग्रंथ सात खण्डों में विभक्त है। प्रारम्भ के तीन खण्ड साध्वी श्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्बन्धित हैं। इनमें साध्वी श्री के प्रवचन व उपन्यास साहित्य पर मूल्यात्मक लेख तथा साध्वी श्री के जीवन एवं संयम-साधना से सम्बन्धित विशेष सामग्री संकलित है। चतुर्थ खण्ड में जैन दर्शन, इतिहास और साहित्य सम्बन्धी २० शोध निबन्ध प्रकाशित हैं। पंचम खण्ड में आठ सांस्कृतिक निबन्ध, षष्ठ खण्ड में राष्ट्रोत्थान, विश्व-शांति एवं सांस्कृतिक संरक्षण में नारी के योगदान सम्बन्धी १२ निबन्ध तथा सप्तम खण्ड में कुण्डिलनी योग, चक्र-साधना, नाम-साधना, ध्यान योग, धर्म ध्यान सम्बन्धी विशेष निबन्ध संकलित हैं। यह अभिनन्दन ग्रंथ एक ओर साध्वी श्री के त्याग, शील, संयम और श्रुतज्ञान की गौरव गाथा का प्रतीक है तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति, जैन धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास व साधना का सुरभित मधुकोष है।

२. **कुसुम अभिनन्दन ग्रंथ**—प्रधान सम्पादिका—साध्वी दिव्यप्रभा, प्र० श्री तारक गुरु जैन ग्रंथालय, शास्त्री सर्किल, उदयपुर, पृ० ६३४, मू० १५१ रु०।

संतों की तरह साध्वियों की भी भारतीय जीवन और संस्कृति को उल्लेखनीय देन रही है। साध्वी श्री कुसुमवती जी, उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी की परम विदुषी शिष्या हैं। उनके दीक्षा स्वर्ण जयन्ती पर प्रकाशित प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रंथ भी सात खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड 'श्रद्धार्चना' में गद्य-पद्य में शुभ सन्देश एवं मंगल कामनाएँ संकलित हैं। द्वितीय खण्ड 'ज़ीवन

दर्शन' में डॉ० दिव्यप्रभा ने साध्वी श्री के जन्म, दीक्षा, संयम-साधना एवं व्यक्तित्व पर प्रेरक प्रकाश डाला है। तृतीय खण्ड में १५ निबन्ध हैं जिनमें पदार्थ विज्ञान, कर्मसिद्धान्त, पुद्गल, द्रव्य आदि की जैन मान्यताओं का आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में परीक्षण किया गया है। चतुर्थ खण्ड में केवलज्ञान, केवलदर्शन, प्राचीन भारतीय दण्ड नीति, संस्कृत साहित्य और मुस्लिम शासक जैसे १६ महत्त्वपूर्ण निबन्ध हैं। पंचम खण्ड में परामनोविज्ञान, भूगोल, गणित, नीतिकाव्य, व्रत-उपवास, आदि पर जैन दृष्टि से चिन्तनपूर्ण १२ निबन्ध संकलित हैं। षष्ठ खण्ड में विविध राष्ट्रीय सन्दर्भों में जैन परम्परा की देन पर विचार किया गया है। सप्तम खण्ड में साध्वी कुसुमवती जी के प्रवचन, निबन्ध एवं कहानी साहित्य से चयनित सामग्री संकलित की गई है। इस ग्रंथ में कई ऐसे निबन्ध हैं जो चिन्तन की नई दिशा प्रदान करते हैं और जैन धर्म दर्शन को व्यापक सन्दर्भ में समझने-परखने का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

३. **जैन साहित्य में श्रीकृष्ण-चरित**—श्री राजेन्द्र मुनि शास्त्री, प्र० प्राकृत भारती अकादमी, ३८२६, मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जयपुर-३ तथा श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, पृ० ३००, मू० १०० रु०।

प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा साहित्य महोपाध्याय उपाधि हेतु स्वीकृत शोध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के नौ अध्यायों में मुनि श्री ने प्राकृत जैन आगम, प्राकृत आगमेतर जैन साहित्य, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओं के जैन साहित्य में प्रतिपादित श्रीकृष्ण चरित पर व्यापक रूप में प्रकाश डाला है। श्रीकृष्ण भारतीय साहित्य, संस्कृति और धर्म परम्परा में अत्यन्त लोकप्रिय नायक रहे हैं। वैदिक साहित्य-परम्परा में श्रीकृष्ण का चरित विष्णु के अवतार के रूप में विस्तारपूर्वक वर्णित है। पर जैन परम्परा में श्रीकृष्ण ६३ शलाका पुरुषों में नौ में वासुदेव के रूप में निरूपित है। वैदिक परम्परा में वसुदेव के पुत्र होने के कारण कृष्ण वासुदेव कहलाते हैं। पर जैन परम्परा में वासुदेव एक विशिष्ट उपाधि है, विरद है, जो अत्यन्त महाबली और युद्ध विजेता माना गया है। वासुदेव के द्वारा प्रति वासुदेव का वध होता है। इस दृष्टि से जैन साहित्य में वर्णित कृष्ण वासुदेव मुरलीधर, वंशीधर, नटवर नागर, गोपीनाथ आदि न होकर दीनदुखियों के सहायक, परोपकारी, महानवीर, शान्ति संदेशवाहक, धर्मप्रेरक, और भगवान् अरिष्टनेमि के भक्त-उपासक के रूप में चित्रित किये गये हैं। मुनि श्री का यह ग्रन्थ श्रीकृष्ण चरित के तुलनात्मक अध्ययन में बड़ा उपयोगी, सहायक और मार्गदर्शक है। मुनिश्री ने जो तुलनात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं वे उनके गम्भीर अध्ययन और सूक्ष्म चिन्तन के परिणाम हैं।

□ • □

समाज-दर्शन

अहिंसा इन्टरनेशनल द्वारा संचालित तीन वार्षिक पुरस्कार

दिल्ली—अहिंसा इन्टरनेशनल द्वारा तीन निम्नलिखित वार्षिक पुरस्कारों के लिए पुरस्कृत महानुभावों की घोषणा पुरस्कार चयन समितियों द्वारा कर दी गई है। चयन समितियों की बैठक क्रमशः प्रसिद्ध गाँधीवादी विचारक एवं साहित्यकार श्री यशपाल जैन एवं पूर्व सांसद श्री डालचन्द जैन (सागर) की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई।

१. यशस्वी साहित्यकार डॉ. जगदीशचन्द्र जैन, बम्बई को १५,०००) रु० का "अहिंसा इंटरनेशनल डिप्टीमल जैन स्मृति पुरस्कार"—जैन साहित्य संवर्धन विषयक।

२. प्राणीमित्र श्री पीलारामकृष्ण (गुन्तूर, आन्ध्रप्रदेश) को ११,०००) रु० का "अहिंसा इंटरनेशनल भगवानदास शोभालाल जैन स्मृति पुरस्कार"—शाकाहार एवं पशु कल्याण विषयक।

३. श्री निर्मल जैन (सतना, मध्य प्रदेश) को ५,०००) रु० का "अहिंसा इंटरनेशनल रघुवीरसिंह जैन स्मृति पुरस्कार"—शाकाहार एवं जीवदया लेखन एवं सक्रिय कार्य विषयक।

तीनों पुरस्कार दिनांक १ दिसम्बर, १९९१ को अहिंसा इंटरनेशनल द्वारा आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय पशुकल्याण एवं शाकाहार सम्मेलन के अवसर पर नई दिल्ली में प्रदान किए जाएँगे।

डॉ. संजीव भानावत "कमल पत्र युवा प्रतिभा पुरस्कार" से सम्मानित

जयपुर—जयपुर जूनियर चैम्बर का १९९१ का "कमल पत्र युवा प्रतिभा पुरस्कार" राजस्थान विश्वविद्यालय के कम्यूनिकेशन ब्यूरो के मानद निदेशक डॉ. संजीव भानावत को शिक्षा एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में उनके बहुआयामी योगदान के लिए प्रदान किया गया। श्री संजीव की "सांस्कृतिक चेतना और जैन पत्रकारिता" के अलावा पत्रकारिता के इतिहास, संगठन, प्रबन्ध, संपादन-कला, जनसंचार माध्यम और प्रेस कानून सम्बन्धी ५ अन्य पुस्तकें प्रकाशित हैं।

विविध धार्मिक स्वाध्याय शिक्षण शिविर सम्पन्न

जयपुर—श्री वर्द्धमान स्था० जैन श्रावक संघ के तत्त्वावधान तथा आचार्य श्री नानेश के सुशिष्य पं. र. श्री विजय मुनि, घोर तपस्वी श्री बलभद्र मुनि, मधुर व्याख्यानी श्री अजित मुनि एवं विदुषी साध्वी श्री प्रभावतीजी के सान्निध्य में ४ अगस्त को एक ज्ञान शिविर सम्पन्न हुआ, जिसमें ५५० बालक-बालिकाओं ने भाग लिया। शिविर का संचालन श्री नरेन्द्र कामदार ने किया।

जलगाँव—विदुषी साध्वी श्री मणिप्रभा श्रीजी के सान्निध्य में १८ अगस्त से २३ अगस्त तक स्वाध्याय प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें १४० शिविरार्थियों ने भाग लिया। श्री फूलचन्दजी मेहता, उदयपुर, श्री धर्मचन्दजी जैन, जोधपुर, श्री प्रकाशचन्दजी जैन, जलगाँव व श्री हीरालाल जी मंडलेचा ने अध्यापक के रूप में अपनी सेवाएँ दीं। इस शिविर में २५ नये स्वाध्यायी तैयार हुए। समापन समारोह की अध्यक्षता श्री सुरेश दादा ने की। विशिष्ट अतिथि थे—श्री मोफतराज मुणोत, बम्बई, श्री फकीरचन्द मेहता, इन्दौर, श्री ईश्वरलाल ललवाणी, जलगाँव। सभी स्वाध्यायियों को श्री मुणोत सा० की ओर से १०१) रु० का साहित्य भेंट करने की घोषणा की गई।

छुईखदान—यहाँ २८ जुलाई से ३ अगस्त तक साध्वी श्री ताराकंवरजी, श्रीमती सरोज बालाजी आदि ठाणा ६ के सान्निध्य में छत्तीसगढ़ स्वाध्यायी प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें २७ स्वाध्यायियों ने भाग लिया। संयोजक थे श्री महेश–दिनेश नाहटा।

इन्दौर—मध्यप्रदेश जैन स्वाध्याय संघ के तत्त्वावधान में ६ अगस्त से ११ अगस्त तक आयोजित स्वाध्यायी प्रशिक्षण शिविर में ४० स्वाध्यायियों ने भाग लिया। विदुषी साध्वी श्री आदर्श ज्योतिजी आदि ने उद्‌बोधन दिया। श्री नेमनाथजी जैन ने पुरस्कार वितरण किये।

जयपुर—पं. र. श्री विजय मुनिजी के सान्निध्य में प्रति रविवार को व्याख्यान के बाद जैन धर्म एवं तत्त्वज्ञान से सम्बन्धित २५-३० प्रश्न युवकों को देकर उनसे उत्तर लिखित में लिए जाते हैं। इसमें लगभग १५० छात्र सम्मिलित होते हैं। चातुर्मास की इस प्रवृत्ति की ओर युवकों में विशेष आकर्षण बना है।

विशेष धर्म-जागरण एवं तपस्या

बिलाड़ा—आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म. के आज्ञानुवर्ती पं. र. श्री ज्ञानमुनिजी की प्रेरणा से यहाँ जैन-जैनेतर भाइयों में विशेष धर्म जागृति हुई है। स्व. श्री मांगीलालजी गुजराणी की धर्मपत्नी श्रीमती चांदाबाई ने ७० वर्ष की अवस्था में ३१ दिन की उग्र तपस्या की है। श्री पारसमलजी बोहरा की धर्मपत्नी श्रीमती इच्छ्याबाई ने निर्जल ३५ उपवास कर कीर्तिमान स्थापित किया है। आपने पूर्व में ४१ की तपस्या की है। तपस्वी बहिनों का संघ की ओर से अभिनन्दन किया गया।

जयपुर—यहाँ श्री सरदारमलजी बरड़िया की मातुश्री श्रीमती सूरजदेवी ने ६४ वर्ष की वृद्धावस्था में अप्रमत्तभाव से मासखमण कर अनूठा कीर्तिमान स्थापित किया है। ग्रीन हाउस में मुनि श्री किशनलालजी के सान्निध्य में तपस्विनी बहिन का अभिनन्दन किया गया, जिसकी अध्यक्षता श्री आर० एस० कूमट ने की। मुख्य अतिथि थे न्यायाधिपति श्री सुरेन्द्रनाथ भार्गव। मुनि श्री किशनलालजी एवं अन्य वक्ताओं ने तप के महत्त्व पर विशेष प्रकाश डाला।

सवाईमाधोपुर—आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म. की आज्ञानुवर्तिनी महासती श्री मैनासुन्दरीजी आदि ठाणा के सान्निध्य में तेले की तपस्या की लड़ी चातुर्मास के प्रारम्भ से निरन्तर चल रही है। अठाई, ग्यारह एवं तेरह की तपस्याएँ हुई हैं। अखण्ड जाप, अन्त्याक्षरी, दया, सामायिक, व्रत आदि बड़ी संख्या में नियमित रूप से हो रहे हैं। प्रत्येक रविवार को बाल शिविर लगाये जाते हैं। तपस्वी श्री सागरमलजी म. एवं आचार्य श्री शोभाचन्दजी म. की पुण्य तिथि विशेष तप, त्याग प्रत्याख्यानपूर्वक मनाई गई।

मसूदा—प्रवर्तक श्री सोहनलालजी म. आदि ठाणा ६ की प्रेरणा से श्री न्यालचन्दजी बुरड़ की धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रकान्ता बाई ने ३१ की तपस्या की व सजोड़े शीलव्रत अंगीकार किया। श्री धर्मीचन्दजी छाजेड़ की धर्मपत्नी श्रीमती चांदबाई ने भी ३१ की तपस्या की।

ब्यावर—यहाँ श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, बरेली के नोहरे में आचार्य श्री शोभाचन्दजी म. सा. की ६५वीं पुण्य-तिथि पर ४० के करीब दया हुई।

जयपुर—यहाँ महावीर भवन, आदर्श नगर में आचार्य श्री नानेश की

आज्ञानुवर्तिनी विदुषी साध्वी श्री उर्मिलाकंवरजी ने ४१ की तपस्या कर अनूठा आदर्श प्रस्तुत किया।

संक्षिप्त-समाचार

जयपुर—लाल-भवन में आचार्य श्री नानेश के सुशिष्य पं. र. श्री विजय मुनिजी, घोर तपस्वी श्री बलभद्र मुनिजी, मधुर व्याख्यानी श्री अजितमुनिजी के सान्निध्य में विशेष धर्म-जागृति हो रही है। श्री विजयमुनिजी के सम्यक्-दर्शन, इन्द्रिय-संयम, मनोनिग्रह, प्रार्थना, भाषा-विवेक आदि विषयों पर चातुर्मास से लेकर आज तक विशेष साप्ताहिक प्रवचन हुए हैं। पर्युषण के दिनों में आप श्री ने अष्ट-दिवसीय विशेष प्रवचन दिये। पर्युषण के दिनों में डॉ. नरेन्द्र भानावत ने "युवा-पीढ़ी धर्म से विमुख क्यों?" डॉ. डी. एस. पोखरना ने "शाकाहार और व्यसन मुक्ति", श्री सरदारसिंह डाबरिया "जैन दर्शन और पर्यावरण" तथा श्री उमरावमल चौरड़िया ने "हमारा सामाजिक दायित्व" विषय पर विशेष व्याख्यान दिये। तप, त्याग, प्रत्याख्यान, दया, पौषध बड़ी मात्रा में हुए।

अहमदनगर—श्री त्रिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की विविध परीक्षाएँ ३० अक्टूबर से प्रारम्भ होंगी। ३० सितम्बर तक परीक्षार्थी अपना आवेदन पत्र कार्यालय को भिजवा दें।

मलकापुर—श्री महावीर जैन नवयुवक मण्डल द्वारा शाकाहार-सम्मेलन के अंतर्गत चित्र, निबन्ध, भाषण, भाव-गीत तथा दृष्टि-एकाग्रता प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं।

किशनगढ़—आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म० सा० की आज्ञानुवर्तिनी विदुषी साध्वी तेजकँवरजी आदि ठाणा ३ के सान्निध्य में तपस्वी श्री सागरमलजी म० एवं आचार्य श्री शोभाचन्दजी म० की पुण्य-तिथि तप-त्यागपूर्वक मनाई गई। उपवास से लेकर अठाई तक कई तपस्याएँ व त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

सिकन्दराबाद—विश्व जैन परिषद् के अध्यक्ष श्री हस्तीमलजी मुणोत ने सेनफ्रांसिसको में आयोजित 'विश्व जैन सम्मेलन' में भाग लिया। उनकी प्रेरणा से न्यूयार्क में विश्व जैन परिषद् की शाखा स्थापित की गई। लगभग ५०० जैन भाई उत्तरी अमेरिका में विश्व जैन परिषद् के सदस्य बने।

जयपुर—श्री वीर बालिका सीनियर उच्च माध्यमिक विद्यालय में संस्था के संस्थापक श्री राजरूपजी टांक की स्मृति में १० अगस्त को भक्ति

संगीत प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता श्री बसन्तीलालजी मुकीम ने की।

श्यामपुरा—श्री व० स्था० जैन श्रावक संघ के चुनाव में श्री रमेशचन्द्र जैन अध्यक्ष, श्री राजूलाल जैन उपाध्यक्ष, श्री नरेन्द्रमोहन जैन मन्त्री, श्री अशोककुमार जैन उपमन्त्री व श्री देवीनारायण जैन कोषाध्यक्ष चुने गये।

मद्रास—भगवान महावीर जैन सेवा ट्रस्ट के चुनाव में श्री भँवरलालजी गोठी अध्यक्ष, श्री इन्दरचन्दजी मेहता एवं श्री किशनलालजी बेताला उपाध्यक्ष, श्री सोहनलालजी दुगड़ मंत्री, श्री लूणकरणजी सेठिया सहमन्त्री एवं श्री पुखराजजी बेताला कोषाध्यक्ष चुने गये।

समन्वय, एकता एवं सौहार्द भाव के लिए सद्भाव यात्रा

जयपुर—श्री अ० भा० जैन कान्फ्रेन्स राजस्थान सम्भाग की विज्ञप्ति के अनुसार समन्वय, एकता व सौहार्दपूर्ण वातावरण के निर्माण के लिए ३ से ५ अगस्त तक एक सद्भाव यात्रा का आयोजन किया गया, जिसमें राजस्थान सम्भाग के अध्यक्ष श्री उमरावमल चोरड़िया, श्री भीमसिंह संचेती, श्री लक्ष्मीचन्द तालेड़ा, डॉ० नरेन्द्र भानावत, श्री पारसमल डागा व श्री उत्तमचन्द डागा सम्मिलित थे। इस यात्रा-दल ने मदनगंज में महासती श्री जशकँवरजी, किशनगढ़ में महासती श्री तेजकँवरजी, अजमेर में श्री सहज मुनिजी व राम मुनिजी, महासती श्री पुष्पावतीजी व महासती श्री चन्दनबालाजी, नसीराबाद में महासती श्री शान्ताकँवरजी, गुलाबपुरा में महासती श्री सुगनकँवरजी, चित्तौड़गढ़ में प्रवर्तक श्री अम्बालालजी म० सा०, श्रमण संघीय महामन्त्री श्री सौभाग्य मुनिजी 'कुमुद', डॉ० राजेन्द्र मुनिजी 'रत्नेश', उप-प्रवर्तिनी महासती श्री मानकँवरजी, भीलवाड़ा में महासती श्री शान्ताकँवरजी एवं महासती श्री ज्ञानलताजी आदि ठाणा, मसूदा में प्रवर्तक श्री सोहनलालजी म०, ब्यावर में महासती श्री उमरावकँवरजी 'अर्चना' एवं पीपल्याकलाँ में आचार्य श्री नानेश के दर्शन, प्रवचन-श्रवण का लाभ लिया एवं समन्वय व एकता के सन्दर्भ में उपयोगी विचार-विमर्श किया।

दूसरे चरण की सद्भाव यात्रा ३० अगस्त से १ सितम्बर तक हुई जिसमें श्री उमरावमल चोरड़िया, श्री धर्मीचन्द जैन, श्री भीमसिंह संचेती, श्री लक्ष्मीचन्द तालेड़ा व श्री पारसमल डागा सम्मिलित थे। इस यात्रा-दल ने पीपाड़ में उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी एवं उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी,

जोधपुर में आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म० सा० एवं अनुयोग प्रवर्तक श्री कन्हैयालालजी म० सा० 'कमल', नागौर में प्रवर्तक श्री महेन्द्र मुनि 'कमल', पाली में श्री रूपचन्दजी म० एवं उप-प्रवर्तक श्री सुकुन मुनिजी एवं पं० र० श्री घेवरचन्दजी म०, सांडिया में आचार्य श्री शुभ मुनिजी व पं० र० श्री पारसमलजी म० तथा पीपल्याकलां में आचार्य श्री नानेश व विराजित सन्त-सतियों के दर्शन व प्रवचन-श्रवण का लाभ लिया तथा एकता व समन्वय की दिशा में विचार-विमर्श किया। विभिन्न स्थानों पर आयोजित विचार-गोष्ठियों में समाज के प्रतिनिधियों से समाज-हित विषयक समस्याओं पर विचार-विमर्श किया। इन दोनों सद्भाव यात्राओं से समाज में नये उत्साह का संचार हुआ।

शोक-श्रद्धांजलि

मद्रास—स्व० पूज्य स्वामी श्री हजारीमलजी म० सा० की सुशिष्या एवं श्री आनन्दऋषि म० सा० की आज्ञानुवर्तिनी वयोवृद्ध महासती श्री कानकँवरजी का ४ अगस्त को संथारा सहित पण्डित मरण हो गया। आपकी जन्म व दीक्षा स्थली कुचेरा थी। २२ वर्ष की अल्पायु में दीक्षा लेकर ६० वर्ष तक आपने शुद्ध चारित्र का पालन किया। आप ज्ञान, ध्यान, तप-जप व स्वाध्याय में हमेशा लीन रहती थीं। दया, समता, सरलता एवं सेवा-भावना की आप प्रतिमूर्ति थीं। आत्म-कल्याण के साथ-साथ हजारों भाई-बहिनों को आपने आत्म-जागृति एवं नैतिक उत्थान का सन्देश दिया।

देवलाली (नासिक)—अध्यात्म-योगिनी महासती श्री सुशीलाकँवरजी (माताजी महाराज) का १८ अगस्त को देवलोक हो गया। आप सरलता, करुणा, दया एवं सेवा की प्रतिमूर्ति थीं। अहर्निश चिन्तन-मनन एवं स्वाध्याय में आप निमग्न रहती थीं। आपके परिवार से १३ दीक्षाएँ हुई हैं, जिनमें विदुषी महासती श्री प्रीतिसुधाजी आदि प्रमुख हैं।



दुर्ग—श्री जैन श्वे. श्रीसंघ के पूर्व अध्यक्ष स्व० श्री भँवरलालजी बोथरा की धर्मपत्नी श्रीमती गुलाबबाई का ६६ वर्ष की आयु में सामायिक पारने के कुछ क्षणों बाद हृदय गति रुक जाने से २५ अगस्त को निधन हो गया। आप सरल-स्वभावी, मधुर भाषी, उदारचेता महिला थीं। आपको अपने परिवार की ६ पीढ़ी देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आचार्य श्रीनानेश के प्रति आपकी अगाध श्रद्धा-भक्ति थी।



रोबर्टसन पेठ—के. जी. एफ.—यहाँ के प्रतिष्ठित श्रावक श्री हीराचन्दजी बोहरा की धर्मपत्नी श्रीमती सरदारबाई का ६३ वर्ष की आयु में ३१ जुलाई को असामयिक निधन हो गया। आप सरल स्वभावी, धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं।

गजेन्द्रगढ़—श्री परशराम अप्पा सोमपुरजी का २५ अगस्त को हृदय-गति रुक जाने से ५५ वर्ष की आयु में आकस्मिक निधन हो गया। आप बड़े ही सरल स्वभावी, मिलनसार और धर्मनिष्ठ थे। आचार्य श्री हीराचन्दजी म० सा० के आज्ञानुवर्ती श्री हरीश मुनिजी के आप सांसारिक पिताश्री थे। आपने अपने सुयोग्य ज्येष्ठ पुत्र-रत्न को सानन्द जिन शासन में आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० की सेवा में सुपुर्द कर अपने आपको धन्य माना।

कानोड़—यहाँ के प्रतिष्ठित श्रावक वयोवृद्ध श्री सुखलालजी उदावत का लगभग ८० वर्ष की आयु में ३ सितम्बर को निधन हो गया। आप स्वतन्त्रता सेनानी, समाज-सुधारक एवं सेवा-भावी थे।

उदयपुर—यहाँ के प्रमुख समाज-सेवी एवं प्रसिद्ध उद्योगपति श्री पी० एस० मुरड़िया के इकलौते सुपुत्र श्री धीरज मुरड़िया का ३४ वर्ष की अल्पायु में एक सड़क दुर्घटना में दुःखद निधन हो गया। श्री धीरज कर्मठ सामाजिक कार्यकर्ता, मेधावी एवं विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न स्नेहशील युवक थे।

जयपुर—खाद्य एवं रसद विभाग के उपायुक्त श्री सवाईसिंहजी सिंघवी के सुपुत्र एवं मालवीय रीजनल इंजीनियरिंग कॉलेज के सहायक प्रोफेसर श्री पंकज सिंघवी की ५ सितम्बर को कॉलेज परिसर में अज्ञात व्यक्तियों द्वारा गोली मार कर नृशंस हत्या कर दी गई। श्री पंकज विलक्षण प्रतिभा के धनी, होनहार मेधावी युवक थे। I. A. S. परीक्षा की योग्यता सूची में आपने सातवाँ स्थान प्राप्त किया था और प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए मसूरी जाने वाले ही थे कि यह अनहोनी घटित हुई।

रुड़की—दिगम्बर जैन समाज के मूर्धन्य विद्वान् पं० फूलचन्दजी शास्त्री सिद्धान्ताचार्य का ९० वर्ष की आयु में ३१ अगस्त को यहाँ निधन हो गया। आप जैन धर्म दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित थे। षट्खण्डागम का सम्पादन कर आपने जैन तत्त्व-चिन्तन की महान् सेवा की। आप पण्डित परम्परा के आदर्श थे। आपका जन्म सन् १९०१ में बुन्देलखण्ड के सिलावन गाँव जिला ललितपुर में हुआ। आपने स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया और जेल भी गये। आप समाज-सुधारक और क्रांतिकारी निर्भीक व्यक्तित्व के धनी थे। 'खानियां तत्त्वचर्चा' आपकी अन्य प्रसिद्ध कृति है।

उपर्युक्त दिवंगत आत्माओं के प्रति हम सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल, 'जिनवाणी' एवं अ० भा० जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ की ओर से हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए शोक-विह्वल परिवार-जनों के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं।

—सम्पादक



साभार प्राप्ति स्वीकार

२५१) रु. "जिनवाणी" की आजीवन सदस्यता हेतु प्रत्येक

२८२१. श्री एल. कपूरचन्द जी महावीरचन्द जी सिंघवी, अरवी
२८२२. श्री प्रशान्त जी कोठारी, गुलबर्गा
२८२३. श्री चंचलचन्द जी गिडिया, जोधपुर
२८२४. श्री मोहनलाल जी सुरेन्द्रकुमार जी डोसी, जोधपुर
२८२५. श्री अशोककुमार जी, कलिजरा
२८२६. श्री इन्दरमल जी प्रमोदकुमार जी जैन, पाली-मारवाड़
२८२७. श्री मिश्रीमल जी जैन, जयपुर
२८२८. श्री शान्तिचन्द जी सुधीरचन्द जी हीरावत, जयपुर
२८२९. श्री राजेलाल नरेशचन्द जैन, कान्धला
२८३०. श्री नेमीचन्द रमेशचन्द संचेती, इचलकरंजी
२८३१. श्रीमती कान्ताबाई कान्तिलाल जी गुगलीया, कटनी
२८३२. श्री स्थानकवासी जैन संघ, बागरोट
२८३३. श्री पुखराज जी बोथरा, जगदलपुर
२८३४. श्री मोहनलाल जी भँवरलाल जी भण्डारी, बिलाड़ा
२८३५. श्री मोहनलाल जी जैन मूथा, बिलाड़ा
२८३६. श्री नगराज जी तातेड़, बिलाड़ा
२८३७. श्री बाबूलाल जी सुराना, बिलाड़ा
२८३८. श्री कन्हैयालाल जी देवेन्द्रकुमार जी हिरण, बिलाड़ा
२८३९. श्री नेमीचंद जी सुरेशचंद जी कटारिया, बिलाड़ा
२८४०. श्री फूलचन्द जी कन्हैयालाल जी कांकरिया, अहमदनगर
२८४१. डॉ० सुशील भण्डारी, जोधपुर
२८४२. श्री नथमल जी फतेहचन्द जी बागरेचा, जोधपुर
२८४३. श्री पदमचन्द जी मेहता, जोधपुर
२८४४. श्री सुल्तानमल जी सुराना, जोधपुर
२८४५. श्री प्यारेलाल जी मूथा, पीपाड़ सिटी
२८४६. श्री मानकचन्द जी भागचन्द जी नाहर, नगरवाड़ा
२८४७. महावीर भवन ट्रस्ट, जोधपुर
२८४८. श्री अजीतकुमार जी डोसी, जोधपुर
२८४९. श्री मगतूरमल जी सा० गांग, जोधपुर

२८५०. श्री प्रेममल जी भण्डारी, जोधपुर
२८५१. श्री दिनेश जैन, रातानाडा (जोधपुर)
२८५२. श्री उम्मेदमल जी गाँधी, जोधपुर
२८५३. श्री ग्रानन्दप्रकाश जैन, जोधपुर
२८५४. श्री सम्पतराज जी भण्डारी, जोधपुर
२८५५. श्री पी० पदमचन्द जैन, मद्रास
२८५६. मैसर्स कमलचन्द त्रिलोकचन्द, मूसल जयपुर
२८५७. श्री तखतमल जी भण्डारी, जोधपुर
२८५८. श्री चन्द्रेश भण्डारी, जोधपुर
२८५९. श्री जी. ग्रार. जैन, जोधपुर
२८६०. श्री पी. शान्तिलाल जैन, मैसूर
२८६१. श्री किशोर (पींचा) जैन, कोरबा (म. प्र.)
२८६२. श्री रतनलाल जी रांका, जयपुर
२८६३. श्री सुभाष जी लोढ़ा, जयपुर
२८६४. श्री प्रकाशचन्द जी जैन, भरतपुर
२८६५. श्री प्रकाशचन्द जी कोठारी, जयपुर
२८६६. श्री हरकचन्द जी जैन, जयपुर
२८६७. श्री प्रकाश बी. बुरड, ग्रहमदाबाद

'जिनवाणी' को सहायतार्थ भेंट

२०००/– मैसर्स तेजमल जी उच्छबलाल जी जैन, देई
पूज्य ग्राचार्य १००८ श्री हस्तीमल जी म. सा के संथारे के साथ दर्शन करने के उपलक्ष्य में भेंट।

५००/– श्री प्रकानचन्द जी कोठारी, जयपुर
ग्रपनी धर्मपत्नी के मासखमण के उपलक्ष्य में भेंट।

२०१/– डॉ० मोहनराज जी भण्डारी, जयपुर
ग्रपने पौत्र जय के जन्म के उपलक्ष्य में भेंट।

२०१/– श्री प्रेमराज जी बेताला, इन्दौर
पुत्रवधू श्रीमती प्रणीला के अठाई की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट।

२०१/– श्री गुमानमल जी देवीचन्द जी कवाड़, जोधपुर
श्री भँवरलाल जी चौपड़ा की सुपुत्री सुश्री शारदा चौपड़ा के ग्रठाई तप के उपलक्ष्य में भेंट।

१५१/– श्री जवाहरलाल जी बाघमार, मद्रास
धर्मपत्नी श्रीमती शांताकँवर जी के अठाई तप के उपलक्ष्य में भेंट।

१५१/– श्री मानमल जी 'खूटवाला', देई
धर्मपत्नी श्रीमती सीताबाई की पुण्य स्मृति में भेंट।

१०१/– श्री मोहनलाल जी सुमेरमल जी पारख, पल्लीराज हरा
चि० राजेश के विवाहोपलक्ष्य में भेंट।

१०१/– श्री बदलचन्द जी शान्तिलाल जी कांकरिया, बैंगलोर
श्रीमती विमलादेवी कांकरिया के ३८ दिन के उपवास की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट।

१०१/– श्री माँगीलाल जी कटारिया, पीपाड़ सिटी
अपनी धर्मपत्नी के ३१ दिन की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट।

१०१/– श्री अशोककुमार जी भंसाली, पाली-मारवाड़
आचार्य श्री हीराचन्द जी म. सा. के जोधपुर चातुर्मास करने की खुशी में भेंट।

१०१/– श्री मोहनलाल जी बोगावत, आदिलाबाद
आचार्य श्री हीराचन्द जी म. सा. के दर्शन करने की खुशी में भेंट।

१०१/– श्री सुभाषचन्द जी कटारिया, पीपाड़ सिटी
श्रीमती घीसीदेवी की पुण्य स्मृति में भेंट।

१०१/– श्री श्रीलाल जी कावड़िया, अजमेर
श्रीमती मैनाकँवर जी के ८ उपवास एवं पर्युषण पर्व की खुशी में भेंट।

१०१/– श्री बजरंगलाल जी जैन सर्राफ, सवाई माधोपुर
धर्मपत्नी श्रीमती सूरजदेवी की पुण्य स्मृति में भेंट।

१०१/– श्री दिलीपकुमार जी चरणकुमार जी, मद्रास
अपने पिताजी चम्पालाल जी कांकरिया की पुण्य स्मृति में भेंट।

१०१/– श्री बी. लूणचन्द जी घेवरचन्द जी कुम्भट, मद्रास
अपने बहनोई श्री चम्पालाल जी कांकरिया की पुण्य स्मृति में भेंट।

१००/– श्री सी. एस. हीराचन्द जी, राबर्टसन पेठ
श्रीमती सरदारबाई की पुण्य स्मृति में भेंट।

५१/– श्री रेखचन्द जी गौतमचन्द जी सांखला, खैरागढ़
सौ. कां. संगीता के विवाह के उपलक्ष्य में भेंट ।

५१/– श्री राणीदान जी बोथरा, दुर्ग
श्रीमती गुलाबबाई बोथरा की पुण्य स्मृति में भेंट ।

५१/– श्री नेमीचन्द जी जैन, जयपुर
अपने पुत्र, पौत्र एवं नवासे की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट ।

५१/– श्री रतनलाल जी जैन, चौथ का बरवाड़ा
पर्युषण पर्व के उपलक्ष्य में भेंट ।

२१/– श्री हरकचन्द जी जैन, जरखोदा
अपनी सुपौत्री सौ. कां. शोभा जैन के विवाह के उपलक्ष्य में भेंट ।

२१/– श्री धर्मीचन्द जी हीरालाल जी नाहर, कोसाणा
श्री गौतमचन्द जी के आचार्य श्री हीराचन्द जी म. सा. के दर्शन करने की खुशी में भेंट ।

२१/– श्री उगमराज जी सुराणा, बिलाड़ा
अपनी मातुश्री श्रीमती चाँदाबाई के ३१ उपवास सम्पन्न होने के उपलक्ष्य में भेंट ।

२१/– श्री पारसमल जी बोहरा, बिलाड़ा
धर्मपत्नी श्रीमती इच्छियाबाई के ३५ उपवास सम्पन्न होने के उपलक्ष्य में भेंट ।

२१/– श्री कस्तूरचन्द जी जैन, हिण्डौन सिटी
धर्मपत्नी श्रीमती अंगूरीदेवी की अठाई की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट ।

११/– श्री शान्ताप्रसाद जी जैन, बजरिया
सुपुत्री कु० ज्योति जैन के ६ उपवास की खुशी में भेंट ।

११/– श्री हंसराज जी परमानन्द जी जैन, सवाईमाधोपुर
श्रीमती इन्द्रा जैन धर्मपत्नी धनसुरेश जैन के तेले की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट ।

११/– श्री बाबूलाल जी जैन, भवानीमण्डी
अहिंसा प्रचार समिति का वार्षिक उत्सव सम्पन्न होने के उपलक्ष्य में भेंट ।

११/– श्री रामकरण जी जैन, सवाईमाधोपुर
श्रीमती कमलादेवी जैन के ९ दिन की तपस्या के उपलक्ष्य में भेंट।

सरल स्वभावी महासती जी श्री शान्तिकँवर जी म. सा., श्री सोहनकँवर जी म. सा. की अठाई का पारणा सुख-शान्तिपूर्वक सम्पन्न होने के उपलक्ष्य में भेंट

२५१/– श्री हस्तीमल जी की धर्मपत्नी श्रीमती सुन्दरबाई की तरफ से
१०१/– श्री केवलचन्द जी कर्णावट
५१/– श्री सज्जनराज जी कांकरिया
५१/– श्री मदनलाल जी बाफणा
५१/– सुश्री सुदर्शना विरक्ता बहन
५१/– श्री मांगीलाल जी बाफणा
५१/– श्री धर्मीचन्द जी कांकरिया
५१/– श्री सम्पतराज जी रांका
५१/– श्री किशनलाल जी ओस्तवाल
५१/– श्री राजेन्द्रकुमार जी बाफणा
४०/– गुप्त सहायता
३१/– श्री आनन्दराज जी बाफणा
३१/– श्री प्यारालाल जी बाफणा
३१/– श्री भँवरलाल जी पींचा
३१/– श्री जवरीलाल जी कांकरिया
२१/– श्री लूणकरण जी चौरड़िया
२१/– श्री पुखराज जी कर्णावट
२१/– श्री मिलापचन्द जी बाफणा
२१/– श्री मूलचन्द जी बाफणा
२१/– श्री कल्याणचन्द जी बाफणा
२१/– श्री दलीचन्द जी कांकरिया
२१/– श्री किशोरमल जी रांका
२१/– श्री माणकचन्द जी लोढ़ा (नारसड़)
२१/– श्री सुमेरमल जी कांकरिया
२१/– श्री सुगनचन्द जी कांकरिया
२१/– श्री कपूरचन्द जी कांकरिया
२१/– श्री गौतमचन्द जी चौरड़िया
२१/– श्री फतेहराज जी बाफणा

२१/- श्री गौतमचन्द जी कांकरिया
२१/- श्री मकतूरमल जी भण्डारी
२१/- श्री रमेशचन्द जी मूथा
२१/- श्री पदमचन्द जी बाफणा
२१/- श्री चम्पालाल जी पींचा
२१/- श्री गौतमचन्द जी छाजेड़
२१/- श्री भूरचन्द जी पगारिया } श्री प्रमोदकुमार जी के प्रथम उपवास के
२१/- श्री मदनलाल जी कांकरिया } उपलक्ष्य में भेंट।
१५/- श्री शान्तिलाल जी कांकरिया
११/- श्री अनराज जी बैद
११/- श्री भँवरलाल जी बैद
११/- श्री रतनलाल जी सुराणा
११/- श्री सोहनलाल जी सुराणा
११/- श्री जंवरलाल जी मुणोत
११/- श्री महावीरचन्द जी कांकरिया
११/- श्री बादलचन्द जी लोढ़ा
११/- श्री सागरमल जी कुन्दन बोहरा
११/- श्री सम्पतराज जी पारख
११/- श्री जवरीलाल जी हिंगड़ (पाली वाले)
१०/- श्री बाबूलाल जी नाई
५/- श्री भँवरलाल जी कर्णावट

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर को भेंट

५०००/- मैसर्स तेजमल जी उच्छबलाल जी जैन, देई
पूज्य आचार्य १००८ श्री हस्तीमल जी म. सा. के संथारा के समय दर्शन करने के उपलक्ष्य में भेंट।

श्री अ० भा० जैन विद्वत् परिषद् को भेंट

२०००/- मैसर्स तेजमल जी उच्छबलाल जी जैन देई (बून्दी)
आचार्य श्री के संथारा के समय दर्शन करने के उपलक्ष्य में भेंट।

५०१/- साहित्य प्रकाशन की आजीवन सदस्यता हेतु

४०४. श्री बिरदीचन्द जी कुचेरिया, लातूर
४०५. श्री जैन रत्न पुस्तकालय, जोधपुर
४०६. श्री रतनलाल जी रांका, जयपुर
४०७. श्री प्रकाशचन्द जी कोठारी, जयपुर

यह शरीर नौका रूप है, जीवात्मा उसका नाविक है और संसार समुद्र है। महर्षि इस देह रूपी नौका के द्वारा संसार-सागर को तैर जाते हैं। उत्तराध्ययन २३/७३

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, बापू बाजार, जयपुर

आपके लिए उपयोगी साहित्य जो उपलब्ध है

क्र.सं.	नाम पुस्तक		लेखक/सम्पादक/अनुवादक	मूल्य
१.	गजेन्द्र व्याख्यान माला भाग–३	:	,,	५.००
२.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग-१-२-३	:	,,	१५.००, ३५.०० व २५.००
३.	व्रत प्रवचन संग्रह	:	आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म.	४.००
४.	जैन संस्कृति और राजस्थान	:	डॉ. नरेन्द्र भानावत	२५.००
५.	पर्युषण पर्वाराधन	:	महासती मैनासुन्दरीजी	७.००
६.	सप्त चरित्र संग्रह भाग–२	:		५.००
७.	Samayik Sutra (अंग्रेजी में)	:		One Samayik a day
८.	सामायिक सूत्र	:		१.००
९.	आध्यात्मिक पाठावली	:	पं० शशिकान्त झा	१.००
१०.	दीक्षा कुमारी का प्रवास	:	अनु० लालचन्द्र जैन	१५.००
११.	आध्यात्मिक आलोक	:	पं० शशिकान्त झा	३०.००
१२.	जैनदर्शन : आधुनिक दृष्टि	:	डॉ० नरेन्द्र भानावत	२०.००
१३.	जैन विवाह विधि	:	जशकरण डागा	१.००
१४.	कर्म सिद्धान्त	:	डॉ. नरेन्द्र भानावत	४०.००
१५.	कर्म ग्रन्थ	:	सं. केवलमल लोढ़ा	८.००
१६.	उपमिति भवप्रपंच कथा	:	सिद्धर्षिगणि	१५०.००
१७.	श्रमण आवश्यक सूत्र	:	पार्श्वकुमार मेहता	२.००
१८.	स्वाध्याय शिक्षा (भाग १ से १८)	:	ज्ञान वृद्धि हेतु	—
१९.	निर्ग्रन्थ भजनावली	:	गजसिह राठौर	२०.००
२०.	अन्तगड दसा सुतं	:	श्री धर्मचन्द जैन	२०.००
२१.	सामायिक सूत्र एवं प्रवेशिका पाठ्यक्रम	:		२.००
२२.	जैन तमिल साहित्य और तिरुक्कुरल	:	डॉ. इन्दरराज वैद	२०.००
२३.	अपरिग्रह : विचार और व्यवहार	:	डॉ. नरेन्द्र भानावत	५०.००
२४.	श्रावक धर्म और समाज	:	,,	१५.००
२५.	जैन बाल शिक्षा	:	कन्हैयालाल लोढ़ा	१.००
२६.	ज्ञान-प्रसार पुस्तकमाला (ट्रेक्ट साहित्य) भाग ३१ से ७७	:	विविध लेखक प्रत्येक का मूल्य	२.००
२७.	गृहस्थ साधक टीप	:		०.५०
२८.	पर्युषण-सन्देश	:	जशकरण डागा	११.००
२९.	जैन तत्त्व प्रश्नोत्तरी	:	कन्हैयालाल लोढ़ा	५.००
३०.	दुःख मुक्ति:सुख प्राप्ति	:	कन्हैयालाल लोढ़ा	३०.००
३१.	आत्म-चिन्तन	:	भँवरलाल बोथरा	५.००

Life is not a "brief candle". It is a splendid torch that I want to make burn as brightly as possible before handing it on to future generation.

—Bernard Shaw

(Regd. No. R. J. 2529
Licenced to post without prepayment. Licence No. 6)

अपनां घर

शरीर को अपना घर माना और उसमें रहा। किन्तु वह अपना नहीं था। आँसू बहाते विवशता से एक दिन उसे खाली करना पड़ा। यदि वह अपना होता तो उसे खाली न करना पड़ता। अनन्त जन्मों में हर बार ऐसा हुआ। फिर भी आँखें नहीं खुली। कितनी रोमांचक है जीवन की कहानी ! खैर, अब भी आँखें खुल जाएं तो अतीत घटनाचक्र प्रेरक बन जाएगा।

—संत अमिताभ

NORTH S

AMOUNT PAPER

. AREA PHASE-I, PANCHKULA-134

elhi Office-433-N. Rama Paper Market, Chawri Bazar, Delhi Telephone : 3268019

CREAM WOVB

LOT NO. ....

47 ....

FINISHER NO. ....

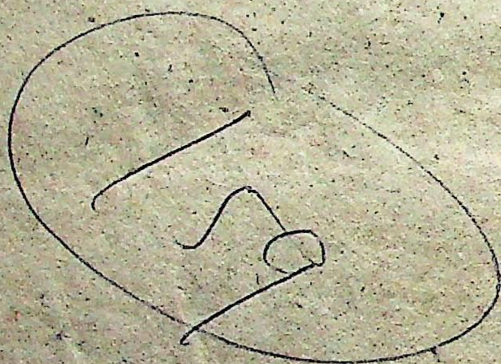
39 X63 .... CMS.

SHEETS 5

5.8

MFD. ON ....




159

